विचार और कर्तव्य



अनुक्रमणिका

विचार और कर्त्तव्य

राजस्थान सरकार द्वारा पुरस्कृत पुस्तक

लेखक

प्रहलादराय व्यास

साहित्य सुधाकर
राजस्थान सरकार द्वारा पुरस्कृत लेखक

प्रकाशक

अरिहंत प्रकाशन

चौड़ा रास्ता, जयपुर

विचार और कर्त्तव्य

विचार और कर्त्तव्य पर विचार करने से पूर्व यह विचारना आवश्यक है कि विचारों की उत्पत्ति कैसे होती है ? इससे भी पूर्व यह विचार कर लेना है कि संसार की और हमारी उत्पत्ति कैसे हुई है तो इसका उत्तर है कि हिरण्यगर्भ जिसे स्पन्दनशक्ति भी कहते हैं द्वारा इस महत्वपूर्ण अत्यन्त समुज्जवल अपरिमित सत्यबीजभूत अनन्त ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई है जिसमें जड-चेतन के विकास की अपार शक्ति है। इसी स्पन्दनशक्ति से हमारी उत्पत्ति हुई है याने हमारे शरीर में भी वही सत्ता जो सत् चित आनन्द कहलाती है रोम रोम में व्याप्त है जिसे हम दूसरे शब्दों में चेतना "चित्तशक्ति" कह सकते हैं। यह प्रत्यक्ष सिद्ध है अन्यथा विचार स्फुरण से महाचित्तशक्ति का जड शरीर से भास नहीं होता और न ही हम जीवित रह सकते हैं।

ब्रह्माण्ड में तथा शरीर के प्रत्येक तत्व में आन्दोलन होता रहता है। दृश्य पदार्थों के अन्तस्तल में तरंगे उठती रहती हैं। इन तरंगों का मूल कारण विद्युत् है जिसे अंग्रेजी भाषा में इलेक्ट्रोन्स (Electrons) कहते हैं। इलेक्ट्रोन्स तत्वों में आदान प्रदानात्मक संघटन पैदा करते हैं तब पूर्व प्रस्तावित विचार स्फुरण से तरंगित होते हैं जिसका हमें अनुभव होने लगता है, उसको हम ज्ञान कहते हैं। उस स्फुरण का जब कार्यरूप में परिवर्तित कर दिया जाता है तो हम उसे कर्त्तव्य कहते हैं। इस प्रकार विचार की उत्पत्ति का कारण हमारे अन्तःस्तल में स्फुरण होता है। विचार का आदि स्फुरण कारण होता है उसी को इच्छा कहते हैं। इच्छा जागृत होते ही विचार का अनुभव या बोध होने लगता है। बोध ज्ञानात्मक है। इच्छा और ज्ञान प्रेरणा देकर कार्यरूप में स्थूल में परिणीत हो जाती है। इस होने के क्रम को क्रिया कहते हैं। इस प्रकार इच्छा, ज्ञान और क्रिया की उत्पत्ति होती है और यही सृष्टि की उत्पत्ति का मूल कारण है।

मूलधर्म को निभाते हुए विचार शक्ति तरंगित होती है और ज्ञान और क्रिया का कारण बनती है। तो उसका सुखमय, शान्तिमय, आनन्दमय अवस्था मानते हैं इसके विपरीत मूल धर्म से दूर जड प्रकृति से उलझा हुआ विचार तरंगों का प्रभाव दुःख मूलक होता है उसमें शान्ति समता तथा आनन्द नहीं

होता। इसका वर्णन उर्दू साहित्य मे इस प्रकार है —

इश्क हू इश्क के कूचे मे लुटा जाता हू।
खोफेतग है श्रो मेरे मौजे ह्विबावो दरिया।
मुझसे ही उठते है और मे ही बहा जाता हू॥
अपनी ही आग मे आप ही जला जाता हू।

इससे यह स्पष्ट है कि मानव स्वय से ही उठने वाले सकल्प विकल्पो मे डूबता है अत एक विदेशी विद्वान का कथन है कि मनुष्य स्वय ही अपना भाग्य नक्षत्र है। एक ईमानदार और पूर्ण पुरुष की आत्मा सत्य की ओर ही उसे प्रेरित करेगी। उसके जीवन मे आने वाला फल तथा प्रभाव उसके लिए कभी भी समय से पूर्व नही आते। हमारे कर्म ही हमारे देवदूत है। वे शुभ हो अथवा अशुभ भाग्य का साया हमारे साथ सदा बना रहता है। अत यह स्पष्ट है कि जैसा व्यवहार जगत मे हम करेंगे वैसा ही हमे वह अनुभव मे आयेगा। बुरे विचार और व्यवहार का फल बुरा ही प्राप्त होता है इसके लिए प्राय लोग एक कहावत भी कहते पाये जाते है कि "बोये पेड बबूल के तो आम कहा से खाय" ? वस्तुत यह सत्य है क्योकि विचारो की शक्ति बडी चमत्कारी है। विचारो का सम्बन्ध आकाश तत्व से होता है। यह आकाश मार्ग से चलते है। एक गुरु ने अपने शिष्य से एक बार एक प्रश्न किया था कि शक्ति विचार मे है या कर्म मे ? शिष्य ने शीघ्र उत्तर दिया कि कर्म मे। तब गुरु ने उससे कहा मानो तुम बाजार मे खडे हो तुम्हारे दिमाग मे विचार आया किसी की जेब काटने का और तुमने वैसा ही किया फलस्वरूप तुम्हे जेल हो गई। अब बताओ कि विचार मे शक्ति है अथवा कर्म मे ? शिष्य निरुत्तर था। एक बार स्वामी रामतीर्थ अपने शिष्यो सहित हिमालय की ओर जा रहे थे। खूब तेजी से बर्फ गिर रही थी शिष्यो से चला नही जा रहा था। सबने उनसे प्रार्थना की वापिस लौटने को। उन्होने गिरती हुई बर्फ से कहा, "रुक जाओ"। हिमपात होना बन्द हो गया। शिष्यो ने इसका कारण पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया कि विचार मे महानशक्ति होती है। विचार वायुमण्डल मे मिश्रित हो महान शक्ति लेकर वापिस आते हैं और अपना प्रभाव दिखाते हैं। मेजिनी जो कि इटली का भाग्य निर्माता था ने कहा है "एक्शन इज दी एन्ड आफ थोट" अर्थात क्रिया विचार की समाप्ति है।

हम अपना भविष्य बुरे या अच्छे विचारो के चिन्तन से बनाते हैं तथा इसे नही जान पाते। यद्यपि विश्व मे अपने ही विचारो का दूसरा नाम भाग्य

है सम्भवत बर्नाडशा ने इसीलिए कहा है कि मनुष्य अपने भाग्य का विधाता स्वय है, वह चाहे तो चोर भी बन सकता है और शहशाह भी। अत अपने भाग्य का चुनाव स्वय करे क्योकि विदेशी विद्वान हैजलिट का कथन है कि जब महान विचार कर्त्तव्य मे परिणत हो जाते है तो महान कार्य बन जाते है। इससे स्वत प्रमाणित है कि सर्व प्रथम किसी कार्य को प्रारम्भ करने से पूर्व इस बात का विचार करे कि आपका इरादा सही व बुद्धिमता पूर्ण है इस निश्चय के बाद निश्चित होकर ठोसरूप से उस कार्य के पीछे पड जाय। अपने ग्रह के कारण अपने शुभ लक्ष्य के प्रति जो आपने इरादा बनाया है उसके क्रियान्वन से कभी पीछे न हठे। इस क्रिया को विचार दृढीकरण कहते हैं जिसका दूसरा नाम सकल्प है। विचार को कर्त्तव्य मे परिणीत करने के पूर्व शुभाशुभ विचार विनिमय कर विचार को दृढ बनाना चाहिए उससे फिर पीछे हटना उचित नही चाहे कितने ही विघ्न आवें, सबको सहकर आगे बढना ही श्रेयस्कर रहता है तभी दृढ सकल्प के समक्ष इतिहास काप उठता है। विश्व विजेता नेपोलियन मे इसी बात की विशेषता थी। परिश्रमी पुरुषार्थी पुरुष निश्चय और उत्तम विचार धारा के आश्रय से कर्म करते है। उनमे भय, आलस्य, निराशा- सगठन हीनता और कर्त्तव्य विमुखता नही होती और ऐसे ही कर्मवीर सफलता प्राप्त करते है अपितु दूसरे प्रकार का आदमी भय तथा निराशा से कर्मविमुख होकर दुःख पाता है और उसके हृदय मे खटकता है "किया सो बिना विचारे"। विचार शक्ति के तीव्र वेग सस्कारात्मक, द्रव्यात्मक, गुणात्मक, होकर भावनात्मक सवेदनात्मक एव क्रियात्मक होते ही चित्त पर आते है। वावे नार्गीज का भी मत है कि सारे विचार हृदय से उत्पन्न होते है। विचार तरग सजातीय विचारो का आकर्षण करती है। वह जानकर हो अथवा अनजाने पर सम्मिलित होते अवश्य है। वह सबल बनकर कर्मरूप देते है और निर्बल बनकर कर्म विमुखता। कर्म विमुखता अन्य विचारो के सन्तुलन पर आश्रित है। अधिक विछिन्न भावो मे विचार स्थिर नही बन पाते, वही नष्ट हो जाते हैं। अत विचार एकीकरण मे ही शक्ति है न कि विचार विकेन्द्रीकरण मे और इसीलिए स्वेटशीन नामक विद्वान का कथन है कि विचार पुष्पो के समान है और सोचना उनको सुन्दर माला मे गुम्फित करने के समान है तथा इसीलिए हमारे वेद हमे कहते है कि :—

आ नो भद्रा क्रतवोयन्तु विश्वत

अर्थात "चारो ओर से सुन्दर विचार हमारे पास आने दो"

विचार रहित होना

गीता के प्रथम श्लोक मे धृतराष्ट्र सजय से कहता है कि धर्मक्षेत्र-कुरक्षेत्र मे मेरे और पान्डवो के पुत्रो ने क्या किया है ? महाभारत का युद्ध पाडवो और कौरवो के मध्य कुरुक्षेत्र मे हुआ था। यहा यह समझना जरूरी है कि धर्मक्षेत्र-कुरुक्षेत्र क्या है तथा पान्डव और कौरव क्या है ? गीता एक योग शास्त्र है जिसमे भक्ति, ज्ञान और कर्म के पालन का पाठ पढाया गया है। जीवन रूपी यात्रा की पथ प्रदर्शिनी पुस्तक 'भगवतामृत' गीता है जो महान रहस्य पूर्ण है। गहन विचार करने पर स्पष्ट होता है कि गीता के प्रथम श्लोक का अर्थ यह है कि हमारा मस्तिष्क ही कुरुक्षेत्र है जहा अच्छे विचार जिन्हे पाण्डव कहते है तथा बुरे विचार जिन्हे कौरव कहते है तथा जो हरदम कलरव एव कोलाहल करते रहते है अत जहा तक सम्भव हो सके बुरे विचारो तथा अनावश्यक विचारो को दिमाग से निकाल देना चाहिये। इसके लिए गीता मे ही जप योग आदि मानव को बताया गया है जप की परिभाषा है "जकारो जन्म विच्छेद पकारो पाप नाशक " अर्थात जप जन्म विच्छेद करता है मुक्ति प्रदान करता है। यहा एक प्रश्न और उठता है कि जन्म क्या है ? तो इसके दो उत्तर हमारे भारतीय दर्शन मे मिलते हैं। पहिला माता के गर्भ से उत्पन्न होना जन्म कहलाता है तथा दूसरा अनावश्यक विचारो का मस्तिष्क मे उठना जन्म कहलाता है। जप इन दोनो ही जन्मो का निवारण करता है इसीलिए गीता मे भगवान कृष्ण ने स्पष्ट कहा है कि सब यज्ञो मे जप यज्ञ मैं हू जिसका तात्पर्य है कि जप के माध्यम से अथवा अन्य किसी माध्यम से आदमी को विचार रहित होना चाहिए। इस बात को विदेशी विद्वानो ने भी स्वीकार किया है। एक विदेशी विद्वान मिल्टन का कथन है कि यदि तू मस्तिष्क को शान्त रख सकता है तो तू विश्व पर विजयी होगा। मस्तिष्क का अपना विशेष स्थान है और वह स्वत ही स्वर्ग को नरक और नर्क को स्वर्ग मे परिणत कर सकता है। अब यह स्पष्ट है कि अनावश्यक विचार तथा विकृत विचार हानिकारक होते हैं तथा रोगो की जड होते है अत विकृत विचारो एव व्यर्थ के विचारो से बचने के लिए मानव का विचार रहित होना परमावश्यक है क्योकि विचारो के कारण ही मनुष्य का एव ससार का सारा कार्य चलता है। विचारन की शक्ति हमारे मस्तिष्क मे निवास करती है। प्रत्येक

मानव के जीवन मे ऐसे अवसर आते है जब वह किसी गम्भीर समस्या मे फस जाता है और मनन करता है कि समस्या का समाधान कैसे किया जाय । इस मनन करने की क्रिया को ही विचारना कहते है । यह मानव की मानसिक शक्ति पर निर्भर करता है कि वह कितना अच्छा और शीघ्र विचार व मनन कर समस्या का समाधान ढूढ सकता है । जिस क्रिया से हम विकासोन्मुख होते है उसे व्यायाम कहते है । शरीर के व्यायाम से शरीर की शक्ति की वृद्धि होती है उसी प्रकार मानसिक व्यायाम मे विचार शक्ति की भी वृद्धि होती है । आवश्यकतानुसार विचारने और विचार रहित होने स तथा अभ्यास करने से विचार शक्ति बढाई जा सकती है । महर्षि अरविन्द का कथन है कि 'Where there is a Vacume, there is a fulfilment' अर्थात स्वय को विचार रहित होने से मानव शक्ति अर्जित कर सकता है । पौष्टिक और सात्विक भोजन का विचारो पर गहरा प्रभाव पडता है जैसा अन्न हम खाते है वैसा ही मन हो जाता है अत बौद्धिक कार्य करने वालो को पौष्टिक एव सात्विक भोजन करना चाहिए । विचार शक्ति बढाने के लिए यह आवश्यक है कि जब हम किसी बात पर विचार कर तो हमारा सारा ध्यान विचार पर ही होना चाहिए । जब हम विचार करके किसी निर्णय पर पहुच जाय तो उस विचार को एकदम भूल जाना चाहिए क्योकि दिमाग हमारे शरीर की सबसे बडी मशीन है । यदि हम इसका दुरुपयोग करेगे, अनावश्यक विचार करेंगे तो यह खराब हो जायेगी और हमे बीमार बना देगी । स्वामी विवेकानन्द ने कहा है कि मनुष्य की एक स्वाभाविक आदत होती है कि वह अनावश्यक बात अधिक करता है । व्यर्थ के वाद-विवाद मे शक्ति का ह्रास होता है अत मनुष्य को कमसे कम आधा घण्टा सुबह आधा घण्टा शाम एकान्त स्थान मे विचारहीन होकर आखें बन्द करके दोनो भौओ के बीच अपने ध्यान को केन्द्रित कर नियमित रूपसे बैठना चाहिए जिससे वह शक्ति प्राप्त कर सके क्योकि विचार रहित होकर बैठने से मस्तिष्क को आराम मिलता है । अनावश्यक पढने विचारने सिनेमा के गाने सुनने से हमारे अन्दर एक कम्पन पैदा होती है जिससे हमारे शरीर एव दिमाग के स्नायु कमजोर होते है । योग की भाषा मे दिमाग को सहस्त्र दल कमल तथा सहस्राशु कहते हैं जिसका अर्थ यह है कि हमारे दिमाग मे एक हजार सैल्स (cells) हैं तथा प्रत्येक सैल (cell) मे इतनी शक्ति है कि एक विषयको आदि से अत तक अपने अन्दर समाहित कर लेता है । ये सैल प्रत्येक बात को ग्रहण करने की अपार शक्ति रखते है अत इनका सदुपयोग करना ही मानव का परम कर्त्तव्य है । विदेशो मे लोगो के मकान इतने शान्त रहते हैं कि पता भी नही चल पाता कि पडौस मे कोई रहता भी

है । जिसका सही नतीजा यह है कि वहा जितना वृद्ध आदमी होता जाता है उतना ही अधिक उत्तरदायित्व सम्भालने की शक्ति अधिक उसमे आती जाती है और हम जितने वृद्ध होते जाते है उतनी ही हमारी विचार शक्ति का ह्रास होता जाता है । वहाँ बूढा आदमी समाज का, राष्ट्र का भार सम्भालता है और यहा बूढा होकर समाज मे दकियानूसी विचार फैलाता है, स्वय को कर्त्तव्य हीन बनाकर एक बोझ बनकर मानव बैठ जाता है । कई तो अपने दिमाग का सन्तुलन खोकर परिवार और समाज मे ऐसी बिना सीग पूछ की बाते करते है कि बच्चे भी उसे फटकारते और कहते पाये जाते है कि "थारी बरस पचासा माय साठी बुध नाठी रे ' अर्थात् हे मानव तू पच्चास वर्ष की आयु मे ही अपना विवेक खो बैठा ताज्जुब है अत यह स्वय सिद्ध है कि विचारो को नियन्त्रित रखने एव विचार रहित होने से ही मानव विकास शील हो सकता है । साधारण योग की उपासना अथवा कन्सन्ट्रेशन की क्रिया से हम ऐसा कर सकते हैं । मौन के अभ्यास से भी हम विचार रहित हो सकते हैं । जिससे हमारे विचार पवित्र भी हो जाते है और पवित्र हिरदय वाले व्यक्ति के विचार वह काम कर सकते है जो अपवित्र हिरदय वालो के शरीर भी कभी नही कर सकते । पर इसके लिए वाणी के सयम की आवश्यकता है तथा मन वचन एव कर्म से सयम का पालन करने की जरूरत है ।



विचार परिवर्तन

मानव के जीवन मे उसके स्वय के विचारो के कारण उसका भविष्य निर्माण होता है। मनुष्य जैसा अपने हिरदय मे सोचता है वैसा ही वह बन जाता है क्योंकि विचार कर्त्तव्य को जन्म देते है। यदि जीवन मे सद् माता, पिता, सत्यगुरू सत्सगति एव सत् विद्या सौभाग्य से प्राप्त हो जाय तो जीवन सुन्दर बन जाता है। सत्संस्कार डालने मे माता-पिता का बडा भारी हाथ होता है। माता-पिता के जैसे विचार होते हैं वही अभिधान सस्कार क्रिया के माध्यम से बालक मे गर्भ मे ही प्रवेश कर जाते हैं। बालक बडा होकर यदि सत्सगति मे रहता है तो उसका भविष्य उज्जवल हो जाता है। व्यक्ति के विचार ही उसके स्वभाव के रूप मे परिवर्तित हो जाते हैं मनोवैज्ञानिको के मतानुसार भी शरीर विचार का अनुगमन करता है। जब विचारो मे इतनी प्रबल एव विलक्षण शक्ति है तो फिर हमारा यह परम् कर्त्तव्य हो जाता है कि हम हमारे विचारो का पूर्णत सदुपयोग करें। विचारो का सदुपयोग करने वाले महात्मा गांधी थे। वे सर्वदा अपनी विचार शक्ति ही वायु मडल में फैंका करते थे। जब अग्रेजो ने अपना दमन चक्र खूब चलाया तो पूज्य बापू ने एक विचार शस्त्र फैंका, अग्रेजो भारत छोडो, यह विचार इतनी द्रुतगति से सर्वत्र फैला कि भारत का कण कण गू ज-गू ज कर कहने लगा, "अग्रेजो भारत छोडो", जिसके फलस्वरूप अग्रेजो को भागना पडा भारत भूमि छोडकर।

विचारो से अधिक से अधिक लाभ उठाने के लिये ध्यान और मनन के माध्यम से हम विचार शक्ति बढा सकते है। इसके लिये यह आवश्यक है कि हम अपना आत्म निरीक्षण करके प्रथम अपना कोई दोष ढू ढ लें। थोडी देर के लिये यह मान लीजिये कि आपको क्रोध जल्दी आता है तो अब आप इसके विपरीत गुण ढू ढिये और वह है शान्ति धैर्य। अब आप अपने क्रोध को छोडने के लिए प्रात काल दस मिनट तक आखें बन्द करके शान्ति और धैर्य की महिमा पर विचार करिये साथ ही यह भी कल्पना करिये कि इन सद्-गुणो की शक्ति मेरे हिरदय मे प्रवेश कर रही है। और मे धैर्यवान बन रहा हू, शान्ति प्राप्त कर रहा हू फिर पाच मिनट बाद यह विचार करिये कि अब यदि क्रोध आया तो किस प्रकार मैं शान्ति रखू गा तो आपकी आत्मा आपको उत्तर देगी कि मौन रख लेना तो क्रोध नही आयेगा। इस क्रिया को ध्यान

योग कहते है और ऐसा करते समय मन इधर उधर अवश्य भागेगा परन्तु आप उसे खीचकर अपने विचार केन्द्र पर ले आइये इसे योग की क्रिया मे प्रत्याहार करना कहते है। इस प्रकार दृढ सकल्प से आप यह निर्णय ले कि मै आज दिन भर मे कही भी क्रोध युक्त प्रदर्शन नही करू गा। थोडे दिनो के अभ्यास के बाद आपकी क्रोधी प्रवृत्ति नष्ट हो जायेगी। इस प्रकार धीरे-धीरे अपने अवगुणो का निवारण कर लीजिये। इस प्रकार करने से आपका मन शुद्ध हो जायगा और फिर आप अपने विचारो से दूसरो की सहायता करने मे समर्थ हो सकगे। सयम के साथ रहकर मन शुद्ध करके वायुमण्डल मे हम ऐसे विचार फैला सकते है जिससे हमारा, हमारे मित्रो का समाज का कल्याण हो सकता है क्योकि सत्य और उत्कृष्ट विचार ही लोगो को लाभान्वित करते है। माता-पिता और गुरु के आशीर्वाद विचार रूप मे ही हमे मिलते हैं और हमारा कल्याण करते है। यदि हम हमारे किसी मित्र को जो सैकडो मील दूर बैठा हो को विचारो से याद करते है तो विचार फौरन उसके पास पहुच कर हमारी याद उसे दिला देते है। फलस्वरूप शीघ्र ही उसकी सूचना पत्र के रूप मे हमारे पास आ जाया करती है। यदि हम किसी के प्रति बुरे विचार रखते है तो वे वायुमण्डल मे मिश्रित हो उस व्यक्ति के पास पहुचकर हमारा ही नुकसान करवा देते है। दुष्ट विषयो एव विचारो से भरा मस्तिष्क एक ऐसा चुम्बक बन जाता है जो दूसरो मे भी दुष्ट विचार पैदा कर देता है। बुरा विचार रखना बुराई करने की ओर प्रथम कदम है जो एक अपराध से कम नही। बुरे विचार का परिणाम बुरा ही होता है जो हमारे जीवन मे समाज व राष्ट्र मे विषमता पैदा कर देता है। हमारे कलुषित विचारो का ही परिणाम है कि आज हम भयकर परिस्थितियो म से गुजर रहे है। हमारे स्वार्थी विचार, हीन विचार, बेईमानी के विचार ही हमे गर्त की ओर ढकेल रहे है अत अपने विचारो को बदल कर सर्वप्रथम हम यह विचार शक्ति पैदा करनी है कि हम सब एक है। अत हमारा और हमारे देश का कल्याण अवश्य होगा। हमारा देश विश्व मे एक महान देश हो हम सब के लिए हैं और सब मेरे लिए हैं। यदि इस तरह के विचार प्रत्येक व्यक्ति नित्य प्रति रखेगा और वायुमण्डल मे सुन्दर विचार धारा फैलेगा तो देश का अवश्यमेव कल्याण होगा इसमे किञ्चित भी सशय नही है। भगवान देश एव देश के प्रत्येक प्राणी का कल्याण करे यही प्रार्थना है।

हीन भावना

अज्ञान विचार परम्परा से ही हम अपना भला या बुरा भविष्य बना लेते हैं। विचार ही से जगत की उत्पत्ति है और विचार ही से हमारी जन्म, स्थिति और मरण है अत हमारे हृदय मे कभी हीन विचार एव हीन भावना नही आने देनी चाहिए। मानव पाशवी, मानवी और दैवी शक्ति का मिश्रण है। हीन भावना पाशवी शक्ति है जो हमारे व्यक्ति का विकास नही होने देती, हमे प्रगति पथ पर अग्रसर नही होने देती। यदि हमारे हृदय मे हीन भावना भरी रहेगी तो हम हमेशा दीन हीन ही बने रहेगे क्योकि हमारे हृदय के भाव जैसे होगे वैसे हम विचार रखेंगे वैसे ही हम बनेंगे। इसीलिए भगवान् श्री कृष्ण ने हमारे हृदय मे हीन भावना न रखकर सुन्दर भाव रखने हेतु कहा है कि—

न देवो विद्यते काष्ठे न पाषाणे न मृण्मये ।
भावोहि विद्यते देव तस्माद्भावोहि कारणम् ।।

अर्थात देव न काष्ठ मे, न पाषाण मे, न मिट्टी मे रहते हैं, भाव ही देव है, भाव से ही प्राप्त होते है अत भाव ही कारण है। भगवान् ने इस कथन मे हीन भावना न रखना ही मानव का कर्त्तव्य बताया है।

हीन भावना हमारे हृदय को कुण्ठित कर हमे हमारा विशाल व्यक्तित्व विकसित नही करने देती। दृढ सकल्प शक्तिवान व्यक्ति किसी कार्य के करने की इच्छा होने पर उसके योग्यायोग्य, साध्यासाध्य, कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विचार कर हीन भावनाओ का परित्याग कर प्रगतिपथ पर आरुढ हो जाता है तो नया इतिहास बना देता है। शेरशाह सूरी यदि इस हीन भावना को फटकने देता तो वह जिन्दगी भर फरीद खा ही बना रहता किन्तु वह तो भारत का सम्राट बनना चाहता था अत हीन भावना की जडे अपने हृदय से उखाड फेंकना अपना नितान्त आवश्यक कर्त्तव्य समझा। यदि वह हीन भावना को अपने हृदय मे रहने देता तो कभी भी इतनी महान प्रगति नही कर सकता था। स्वामी विवेकानन्द ने इसीलिए कहा है, "हम जो बनना चाहते हैं, बन सकते हैं। वह बात मन ही मे न लाओ जिसे तुम व्यक्त नही करना चाहते।

यदि तुम स्वास्थ्य चाहते हो तो स्वस्थ्य विचार मन मे भरो स्वास्थ्य तुम्हे मिलेगा। अगर तुम सुख समृद्धि चाहते हो तो वैसे ही भाव मन मे धारण करो।"

पाश्चात्य पडित सेट पाल ने भी कहा है, "जो चीजें पवित्र हैं, प्यारी, सुन्दर, सत्य और ईमानदार प्रतीत होती है, हम केवल उन्ही पर अपना ध्यान केन्द्रित करें तो मन की सोची बात निश्चित पूरी होगी।"

हमारे आन्तरिक जगत मे (हृदय मे) भावनाओ का मूर्तिकार निवास करता है। वह मूर्तिकार जानता है कि उसके दिमाग मे जो माडल है, अन्त मे वही उसकी कलाकृति बनेगी। वह यह भी जानता है कि अगर माडल मे कोई कमी हुई तो उसकी मूर्ति भी दोषपूर्ण होगी अत हमे भी मूर्तिकार की भाति अपने मन को, अपनी भावनाओ के चित्रकार को पूर्ण माडल की तलाश मे बनाना चाहिए। जैसे मूर्तिकार सगमरमर की शिला मे अपनी कलाकृति की परछाई देखता है हम भी अपने भीतर छिपे विराट रूप को देखे—तभी वह बाहर लाया जा सकेगा क्योकि विचारो के चित्रो मे कल्पना के चित्र विचित्र रग भरे हुए है उनम प्रेम का सवेदन, कोप का निर्वेदन, मधुरता का द्योतन भरा हुआ है। चित्रो मे अनेक भावनाओ की चित्र रेखायें अकित होती हैं, विराम पाती है और विलीन होती है, वे प्रत्यक्ष होते है और अपना भाव प्रकट करते हैं।

अपने भीतर छिपे विराट रूप को पहिचाने हेतु एव हीन भावना का परीत्याग करने हेतु हमे हमारे महर्षियो ने स्वय हेतु विचार द्योतन करने के लिए मार्ग बताया है कि सोऽह (So am I) अर्थात् मैं और ईश्वर एक हूँ। मैं परब्रह्म परमात्मा परमेश्वर का अ श हूँ। उसके और मेरे अस्तित्व मे कुछ भी भेद नही। मैं सर्वत्र प्रकाशमान परिपूर्ण हूँ। मैं नित्य हू, आत्माराम हूँ, सुखमय हूँ अनिर्वेद हूँ, उत्साह पूर्ण हू और सर्वत्र शान्त हूँ। मैं उन्नत हूँ और सबको उन्नत करता हूँ। सब पर प्रेम कर रहा हूं। मैं "पापोऽह पापत्माऽह नही हू" अपितु "दिव्योऽह दिव्यात्माऽह" अर्थात मैं दिव्य हूँ दिव्यात्मा हूँ।"

अत यह स्वय सिद्ध है हमे कि हीन भावना नही रखनी चाहिए क्योकि जहाँ हमे हीन भावना का हमारे हृदय मे प्रवेश हुआ कि हमारा मार्ग चाहे वह इह लौकिक है अथवा पारलौकिक, अवरुद्ध हो जायेगा और हीन भावना हमे ऊर्ध्व गामी नही होने देगी। अत इसके पहले कि हीन भावना हम पर हावी हो आक्रमण करे, हम अपने मन को साहस

एवं उत्साह की मदद से ऐसी मजबूती से किले बंदी करदें कि जिससे हीन भावना का छोटा अंश भी उसमें प्रवेश न कर पावे। महान शायर इकबाल ने हीन भावना से ग्रसित मानव को झकझोरते हुए कहा है—

खुदी को कर बुलन्द इतना, कि हर तहरीर से पहले।
खुदा बन्दे से खुद पूछे, बता तेरी रजा क्या है।

तात्पर्य यह है कि हमें हीन विचार-हीन भावना को हृदय से समूल उखाड़ फेंकना है और उसके स्थान पर शुद्ध पवित्र उत्साहित सुविचारी बनना हमारा कर्तव्य है। हीन भावना आसुरी शक्ति को नष्ट करने के लिए ॐ, 'राम', "हू अल्लाह् हू" "आमिन" अपने अपने धर्मानुसार जपना है और यह विचारना है कि हम अपनी दृष्टि में सदैव अपना भव्य चित्र बनावें। अपने को साहसी महत्वाकांक्षी और दूसरों के काम आने वाला व्यक्ति समझें। अपना दूषित विकृत पहलू एक पल के लिए भी नजर के सामने न आने दें। इसका यह तात्पर्य नहीं कि हम अपना आत्म निरीक्षण न करें अपितु आत्म-निरीक्षण कर हीन भावना को नष्ट कर हमारे भीतर की चिद्शक्ति जो एक महान शक्ति है जागृत करें और उसका आभास प्राप्त करें। हम अब तक जो कुछ थे, वह गौण बन गया है और आगे जो हम बनना चाहते है वही लक्ष्य हमारे जीवन का लक्ष्य बने।

प्रत्येक दिन हमारे समक्ष नित्य नूतन स्वच्छ सुन्दर संगमरमर की शिला सदृश आता है। चाहें तो हम उसमें से नयनाभिराम मूर्ति तराश ले और चाहे तो उसे खण्ड-खण्ड करदें। संगमरमर प्रातःकाल हमारी प्रतीक्षा करता है। यह निर्णय सिर्फ हमें करना कि उसका क्या बनायेंगे? क्योंकि विचार से अपना भला बुरा भविष्य हम बना लेते हैं विचार ही दैव है तो फिर हीन भावना को त्याग कर उस दैव का नियमन करना मानव का परम कर्त्तव्य है।

यदि तुम स्वास्थ्य चाहते हो तो स्वस्थ्य विचार मन मे भरो स्वास्थ्य तुम्हे मिलेगा। अगर तुम सुख समृद्धि चाहते हो तो वैसे ही भाव मन मे धारण करो।"

पाश्चात्य पडित सेंट पाल ने भी कहा है, "जो चीजें पवित्र हैं, प्यारी, सुन्दर, सत्य और ईमानदार प्रतीत होती हैं, हम केवल उन्ही पर अपना ध्यान केन्द्रित करें तो मन की सोची बात निश्चित पूरी होगी।"

हमारे आन्तरिक जगत मे (हृदय मे) भावनाओ का मूर्तिकार निवास करता है। वह मूर्तिकार जानता है कि उसके दिमाग मे जो माडल है, अन्त मे वही उसकी कलाकृति बनेगी। वह यह भी जानता है कि अगर माडल मे कोई कमी हुई तो उसकी मूर्ति भी दोषपूर्ण होगी अत हमे भी मूर्तिकार की भाति अपने मन को, अपनी भावनाओ के चित्रकार को पूर्ण माडल की तलाश मे बनाना चाहिए। जैसे मूर्तिकार सगमरमर की शिला मे अपनी कलाकृति की परछाई देखता है हम भी अपने भीतर छिपे विराट रूप को देखें—तभी वह बाहर लाया जा सकेगा क्योकि विचारो के चित्रो मे कल्पना के चित्र विचित्र रग भरे हुए हैं उनमे प्रेम का सवेदन, कोप का निर्वेदन, मधुरता का द्योतन भरा हुआ है। चित्रा मे अनेक भावनाओ की चित्र रेखायें अकित होती है, विराम पाती है और विलीन होती हैं, वे प्रत्यक्ष होते हैं और अपना भाव प्रकट करते है।

अपने भीतर छिपे विराट रूप को पहिचानें हेतु एव हीन भावना का परीत्याग करने हेतु हमे हमारे महर्षियो ने स्वय हेतु विचार द्योतन करने के लिए मार्ग बताया है कि सोऽह (So am I) अर्थात् मैं और ईश्वर एक हूँ। मैं परब्रह्म परमात्मा परमेश्वर का अश हूँ। उसके और मेरे अस्तित्व मे कुछ भी भेद नही। मैं सर्वत्र प्रकाशमान परिपूर्ण हूँ। मैं नित्य हू, आत्माराम हूँ, सुखमय हूँ अनिर्वेद हूँ, उत्साह पूर्ण हू सौर सर्वत्र शान्त हूँ। मैं उन्नत हूँ और सबको उन्नत करता हूँ। सब पर प्रेम कर रहा हूँ। मैं 'पापोऽह पापत्माऽह नही हू' अपितु 'दिव्योऽह दिव्यात्माऽह" अर्थात मै दिव्य हूँ दिव्यात्मा हूँ।"

अत यह स्वय सिद्ध है हमे कि हीन भावना नही रखनी चाहिए क्योकि जहाँ हमे हीन भावना का हमारे हृदय मे प्रवेश हुआ कि हमारा मार्ग चाहे वह इह लौकिक है अथवा पारलौकिक, अवरुद्ध हो जायेगा और हीन भावना हमे ऊर्ध्व गामी नही होने देगी। अत इसके पहले कि हीन भावना हम पर हावी हो आक्रमण करे, हम अपने मन को साहस

एवं उत्साह की मदद से ऐसी मजबूती से किले बंदी करदें कि जिससे हीन भावना का छोटा अंश भी उसमें प्रवेश न कर पावे। महान शायर इकबाल ने हीन भावना से ग्रसित मानव को झकझोरते हुए कहा है—

खुदी को कर बुलन्द इतना, कि हर तहरीर से पहले।
खुदा बन्दे से खुद पूछे, बता तेरी रजा क्या है।

तात्पर्य यह है कि हमें हीन विचार-हीन भावना को हृदय से समूल उखाड़ फेंकना है और उसके स्थान पर शुद्ध पवित्र उत्साहित सुविचारी बनना हमारा कर्त्तव्य है। हीन भावना आसुरी शक्ति को नष्ट करने के लिए ॐ, 'राम', "हू अल्लाह हू" "आमिन" अपने अपने धर्मानुसार जपना है और यह विचारना है कि हम अपनी दृष्टि में सदैव अपना भव्य चित्र बनावें। अपने को साहसी महत्वाकांक्षी और दूसरों के काम आने वाला व्यक्ति समझें। अपना दूषित विकृत पहलू एक पल के लिए भी नजर के सामने न आने दें। इसका यह तात्पर्य नही कि हम अपना आत्म निरीक्षण न करें अपितु आत्म-निरीक्षण कर हीन भावना को नष्ट कर हमारे भीतर की चिद्शक्ति जो एक महान शक्ति है जागृत करे और उसका आभास प्राप्त करें। हम अब तक जो कुछ थे, वह गौण बन गया है और आगे जो हम बनना चाहते है वही लक्ष्य हमारे जीवन का लक्ष्य बने।

प्रत्येक दिन हमारे समक्ष नित्य नूतन स्वच्छ सुन्दर संगमरमर की शिला सदृश आता है। चाहे तो हम उसमें से नयनाभिराम मूर्ति तराश लें और चाहे तो उसे खण्ड-खण्ड करदें। संगमरमर प्रात:काल हमारी प्रतीक्षा करता है यह निर्णय सिर्फ हमें करना कि उसका क्या बनायेंगे? क्योंकि विचार अपना भला बुरा भविष्य हम बना लेते है विचार ही दैव है तो फिर हीन भावना को त्याग कर उस दैव का नियमन करना मानव का परम कर्त्तव्य है।

उत्साह

उत्साह हमारे समस्त कार्यों का प्राण है। बिना उत्साह के किसी कार्य को करना जेल की सजा काटने तुल्य है। यदि हमारे अन्दर उत्साह नही है तो मानो हम अपने काम को अपूर्ण सा कर रहे है, उसके सम्पादन मे हमारा योग नही उसकी सफल समाप्ति मे हमारी आस्था नही, हार्दिक दिलचस्पी नही। ऐसी दशा मे वह कार्य हमारे लिए बोझ बन जाएगा और उसकी रचना मे, निर्माण मे आनन्द नही बल्कि एक बोझ की विवशता की अनुभूति रहेगी। उत्साह हीन कार्य सम्पादन करने हेतु एक राजस्थानी लोक कहावत है कि 'खोडी बहु बासीदो करे सात जगा वी की टाग सम्भाले" अर्थात बिना उत्साह के कोई कार्य किया जाय तो वह अच्छा नही होता और उसमे अनेक त्रुटिया रह जाती है अत आशाहीनता अथवा उत्साहीनता श्रेय कर्म का हेतु नहो।

आशा मे एक प्रकार की ऐसी कार्य परिणत कराने की शक्ति है, जिससे मरे हुए मन मे भी कुछ क्षण के लिए चेतना आजाती है। आशा मानव जीवन रूपी दीपक का आवरण है। जिस तरह प्रचण्ड पवन के झकोर से दीपक बिना ढकने के स्थिर नही रहता है उसी प्रकार बाह्य दुख और जीवन की उतार चढाव भरी आधियो से रक्षा करने वाली यह आशा है जो दुख के पहाडो को चूर्ण चूर्ण कर देती है। भीम की गदा से घायल हुए मृत्यु शैया पर पडे दुर्योधन का अश्वत्थामा को सेनापति बना कर सोये हुए पाण्डवों के नाश हेतु शिविर मे भेजना आशा की प्रेरणा नही तो और क्या थी ?

आशा ही परम सुख की दात्री है। आशा एक सशक्त चुम्बक है, जो अभ्यास से प्राप्त की जा सकती है। हम अपनी मानसिक शक्ति से आशा को घटा बढा सकते है। मित्र हमे छोड दे, सम्बन्धी सकट काल मे हमारा परित्याग कर दे। धन दौलत के द्वार बन्द होकर हमे दरिद्र बना दें, पर अगर आशा ने हमारा साथ नही छोडा तो वह अन्त मे हमारी सबसे बडी पूजी प्रमाणित होगी। सिडनी स्मिथ का कथन है कि यदि ससार मे हम कोई काम करना चाहते हैं तो हमे ससार रुपी समुद्र के किनारे खडे होकर भय से कापना नही चाहिए, किन्तु उसमे कूद पडना चाहिए और यथा साध्य चेप्टा कर,

उसके पार जाना चाहिए क्योंकि आशा वह कप्तान है जो हमारे जीवन रुपी जहाज को सबसे आखिर मे तूफान के हवाले करता है। आशारुपी शक्ति के अभाव मे हमारा शरीर जो शिव है—शव के समान है इसीलिए उर्दू के एक शायर ने कहा है—

ना उमीदी उसकी देखा चाहिए।
मुनहसर मरने मे हो जिसकी उमीद ।।

किसी कार्य मे अपने को भूल जाना, उसमें समस्त चित्त-वृत्ति लगाकर केन्द्रित हो जाना, उसमे अपनी सम्पूर्ण शक्तियों का विनियोग ही उत्साह है। जब तक हम किसी कार्य को अधूरे, शिथिल मन, उनमने, उदासीन होकर करते है तब तक हम उसे करते नही, उल्टे उससे दूर भागते है। कार्य करने मे तो वास्तविक आनन्द तो तभी आएगा जब हम उसी कार्य से भरे हो, हमारे मन-प्राण मे वही कार्य बसा हो, हमारे हृदय मे उत्साह की बाढ आई हुई हो। पाश्चात्य विद्वान गाथ का कथन है कि यदि उत्साह चला गया तो सब कुछ चला गया। इससे तो यही अच्छा होता कि तुम उत्पन्न ही न हुए होते।

विश्व विजेता नेपोलियन की सम्पूर्ण सफलताओ का यही रहस्य था कि न केवल वह स्वय उत्साह से भरा रहता था, वरन अपने सैनिको को भी उत्साह से भर देता था। उसके मन के उत्साह की अग्नि सब मे फैल जाती थी। नेपोलियन को युद्ध क्षेत्र मे अपने बीच देखकर सिपाही यों महसूस करते थे जैसे उनकी मदद हेतु कुमक (सहायता) पहुच गई हो।

यदि बाबर इब्राहम लोदी की विशाल सेना देख कर भयभीत होगया होता और अपने सैनिको की हिम्मत बढाने के बजाय उन्हे उत्साह-हीन करता, तो कदापि न तो वह पानीपत की लडाई ही जीत सकता और न ही भारत मे मुगल साम्राज्य की नीव ही पडती। जो जनरल (सेनापति) खुद ही उत्साह खो दे, वह कभी विजय श्री प्राप्त नही कर सकता।

यह तो चेहरा देख कर ही बताया जा सकता है कि कौन उन्नति के मार्ग पर अग्रसर है और किसने जीवन सग्राम मे हिम्मत हार दी है? लटका हुआ उदास चेहरा स्वय बता देता है कि यह व्यक्ति जीवन की लडाई मे खो चुका है। उत्साह का पता समूची मुखमुद्रा, आखो की चमक, व कधो के उभार से उसका पता चल जाता है। किन्तु यह कितने खेद की बात है कि हम सिर्फ

इसलिए हिम्मत हार बैठे है कि परिस्थितिया हमारे अनुकूल नही रही । हम यह क्यो नही सोचते कि "कांटो भरी है ये जीवन राहे" और जीवन यात्रा मे अनेक उतार-चढाव हैं जिन्हे हमे उत्साह से पार करना है ।

उत्साह ने कई बार विगडते काम बनाए हैं । परास्त हुई सेनाओ को पल भर मे विजय श्री प्राप्त करादी है । सिंहगढ के मुंह मे जब मराठो की हार सामने दृष्टिगोचर हो रही थी, तभी एक युवक नायक ने देखा कि बहुत से सिपाही एक सीढी से किले के दूसरी ओर सुरक्षित स्थान पर जा रहे है । उसने उस सीढी को उठाकर फेंक दिया और ललकार कर बोला—उधर कहा जाते हो? सीढी तो मैं फेंक चुका हूँ । अब लडने के सिवाय और कोई चारा नहीं है । इसके साथ ही वह मुट्ठी भर सेना मरक के उत्साह से भर गई और युद्ध में विजय प्राप्त की । राजस्थान के राजपूतो का इतिहास तो ऐसी घटनाओ से रगा पडा है जब चद वीर युवको ने जान हथेली पर रखकर सहस्रो शत्रुओ के दांत खट्टे कर दिए । कैम्पबेल का वचन है कि कष्ट का सहना ही अपने भाग्य को जीतना है अत निरुपाय दशा मे भी उत्साह युक्त सावधान रहो, कष्ट रूपी रात के बीतने पर सुख रूपी प्रभात का प्रकाश होगा ।

उत्साह शील आशावान मन कभी विचलित नही होता । सर्वार्थ सिद्धि दात्री आशा है और सर्वार्थ नाशक उसकी दूसरी बहिन निराशा है । आशा आत्मा का पाव है, निराशा आत्महीनता की द्योतक । कोई भी कार्य हम करे, उसे पूरी लगन से करे, उसके पीछे उत्साह से इतने दीवाने हो जाय कि दीवाना यह कहदे कि यह है दीवाना । उमग और उत्साहपूर्ण कर्त्तव्य पालन करने मे वह आनन्द आएगा जो आजन्म हमे अपनी मधुर स्मृति से झकृत करता जाएगा ।



दृढ़ निश्चय

यदि ससार मे कोई व्यक्ति जीवन सुन्दर ढग से बिताना चाहता है तो उसके लिए चार बातें आवश्यक है यथा दान, मैत्रीभाव, दया और मधुर वचन । इन चारो वस्तुओ से मानव जीवन सफल होता है । इनमे मधुर वचन परमावश्यक है क्योकि

फितरत को नापसन्द है, सख्ती जबान मे ।
पैदा हुई न इसलिए हड्डी जबान मे ।।

कटुवचनो के प्रयोग के कारण ही महाभारत हुआ था । द्रोपदी ने दुर्योधन को सिर्फ मजाक मे इतना ही कहा था कि अधो के अधे ही पैदा होते है । इसी जरासी कटुवाणी ने भयकर युद्ध करवा दिया । वस्तुत मृत्यु के कारण चार है पहला स्वजन विरोध दूसरा अनुचित कार्यारम्भ तीसरा अपने से ज्यादा शक्तिशाली से शत्रुता और चौथा दुष्टो से मैत्री । जो व्यक्ति इन चारो बातो का अनुसरण करता है उसकी मृत्यु अवश्यम्भावी होती है । इसी प्रकार जो व्यक्ति आध्यात्म विद्या मे अभिरूची रखते हैं और जो जिज्ञासु आत्मा का साक्षात्कार करना चाहते है उनके लिए भी चार बातो की आवश्यकता है । वो है सन्तोष यादे सेल्फ कन्टेन्टमेन्ट, दूसरा सत्सग याने कोन्स्टेन्ट प्रेक्टिस तीसरा विचार दृढता याने फर्म डिटरमीनेशन तथा चौथी है शमदम याने इन्द्रियो तथा विचारो पर नियन्त्रण क्योकि शक्ति की प्राप्ति विचारो के एकीकरण मे है । बन्धन व मोक्ष का कारण मन है । बुद्धि की स्थिरता और सद्‌बुद्धि तथा विवेक ही मानव को प्रगति पथ पर अग्रसर करते हैं । बुद्धि तीन प्रकार की है । पहली सायत बुद्धि जो कि स्कूली ज्ञान कहा जा सकता है । तथा जो दूसरो की बुद्धि होती है दूसरी सचिवायत बुद्धि है जो स्वय के विचार एकीकरण से प्राप्त होती है क्योकि आत्मा सदा मानव का सही मार्गदर्शन करती है अत जो मानव सोच विचार कर चलता है वह सुख पाता है अन्यथा —खटकत है जिय माहिं कियो जो बिना विचारे और जग मे उस व्यक्ति की हसी उडती है । तीसरी बुद्धि है स्वआत्म बुद्धि जिसका विकास मस्तिष्क एव मन को एकाग्रता याने कनसनट्रेशन से उपासना के माध्यम से होती है क्योकि "काशी शरीर क्षेत्र च त्रिभुवन व्यापिनी ज्ञान गगा' अर्थात् मानव का भौतिक शरीर ही काशी (प्रकाश-ज्ञान) है तथा त्रिभुवन मे जो व्याप्त ज्ञान है वही गगा है ।

काशी प्रकाश को कहते है अत उपसना के द्वारा योग अथवा भक्ति के द्वारा जो मानव को स्वानुभूति होती है वही स्वआत्म बुद्धि है। बुद्धि को स्थिर करने के लिए ध्यान याने कन्सन्ट्रेशन करना आवश्यक है। 'धी' नाम बुद्धि का है यान' का अर्थ नियन्त्रण है अत ध्यान अर्थ बुद्धि को ठीक करना है, स्मरण शक्ति तीव्र करना है। उपासना करने अर्थात भगवान के नजदीक दृढचित होकर बैठने से स्वआत्म बुद्धि प्राप्त होती है। जिनका प्रकृति विनाश करना चाहती है उनकी बुद्धि का हरण कर लेती है। सभी महर्षि तुलसी का यह दोहा जानते है —

जाको प्रभु दारूण देहिं ताकि मति पहिले हर लेहिं ।।

दृढ आत्म विश्वास बिना बुद्धि ठीक नही रहती। हृदय मे राग-द्वेष रहने से विषयो का ध्यान रखने से, कुसग से, स्मरण शक्ति नष्ट होती है। सगति से कामना की उत्पत्ति होती है और कामना की सन्तुष्टि नही होने पर क्रोध व्यापता है। क्रोध से मोह पैदा करता है और समोह से विस्मृति नष्ट होती है। विस्मृति के नाश से बुद्धि का नाश होता है जो मानव के पूर्णविनाश का कारण है।

दृढ निश्चयात्मिका बुद्धि की सकटकालीन परिस्थितियो मे परमावश्यकता होती है। अमेरिका मे जब क्रान्ति हुई तो लिंकन नाम के एक व्यक्ति ने दृढ निश्चयात्मिका बुद्धि रख कर अभावत तूफानो से डटकर मुकाबला किया, फलस्वरूप वह अमेरिका का राष्ट्रपति बना जो कि एक लकडहारे का बेटा था और आज भी वह अजर अमर है। फ्रान्स मे जब क्रान्ति हुई तो सारे सैनिक हताश हो गये तब जोन यार्ड नामक की एक महिला ने अपनी निश्चयात्मिका बुद्धि के कारण विजय प्राप्त की और इतिहास के पृष्ठो पर उसका नाम स्वर्णाक्षरो मे लिखा गया। पूज्य बापू जब उत्कल गये तो उन्हे एक निर्धन महिला मिली जिसके कपडे इतने गदे थे कि बदबू आती थी उनमे से। बापू ने कहा कि बहिन इन कपडो को तुम धो क्यो नही लेती तो उसने उत्तर दिया कि मेरे पास और कपडे नही है जिन्हे पहिनकर मै इन्हे धो सकू। यह उत्तर सुनकर परम सत गान्धी जी का हृदय करूणा से भर उठा और उन्होने दृढ निश्चियात्मिका बुद्धि करके प्रतिज्ञा की कि मै जब तक भारत को स्वतत्र नही करा लू गा वस्त्र नही पहिनू गा, उन्होने लगोटी लगाली और भगा दिया भारत भूमि से अ ग्रेजो को। नेपोलियन के मार्ग मे जब आल्पस पर्वत श्रेणी

आगई तो वह एकदम कह उठा था "देयर शैल वी नो आल्प्स" याने मैं आल्प्स पर्वतों को तोडकर अपना मार्ग बनाऊ गा। दृढ निश्चयात्मिका बुद्धि के कारण ही उसने विजय प्राप्त की। पाकिस्तान के आक्रमण पर अमर वीर अब्दुल हमीद एव भारतीय अय्यूब की दृढनिंश्चयात्मिक् बुद्धि ने ही अमेरिकन टैंको को नष्ट किया और मातृभूमि की रक्षाहित अपने प्राणो की बाजी लगादी। उन भारतीय वीरो की वीरता को भारत का इतिहास कभी नही भुला सकेगा। आज सकटकालीन अवस्था मे हमे अर्जुन की तरह "सीदन्ती मम गर्नाणि" का भाव न रख कर मन मे क्लीवता, नपु सकता न लाकर दृढचित दृढ सकल्प, धैर्य उत्साह युक्त होकर प्रफुल्लित भुजाओ वाला खडे हुए रोमाचो वाला योद्धा बनकर विजय प्राप्त करनी होगी और बचानी होगी जननी जन्म भूमि मा की सीमा शत्रुओ के पजे से क्योकि बापू ने कहा था कि आजादी की रक्षा के लिए मैं भारत मे एक भी नपु सक देखना पसद नही करू गा।



गणतन्त्र शासन

शासन की अनेक प्रणालिया होती हैं जैसे राजतत्र, कुलीन तत्र, एक तत्र, डिक्टेटरशिप एव गणतत्र, इन सबमें गणतत्र शासन प्रणाली ही सर्वश्रेष्ठ है यही कारण है कि वर्तमान मे विश्व के विभिन्न देशो मे गणतन्त्र शासन प्रणाली ही प्रचलित है क्योकि गणतन्त्र शासन प्रणाली मे राज्य सत्ता जनता के हाथो मे रहती है तथा प्रत्येक नागरिक को अपनी शक्ति एव सामर्थ्य के अनुसार देश के प्रति अपना उत्तरदायित्व सभालने का सुअवसर मिलता है अत अब्राहम लिंकन के शब्दो मे गणतन्त्र शासन जनता का वह राज्य हैजो जनता द्वारा जनता के लिए होता है हमारे देश भारत मे आजादी के बाद गणतन्त्र शासन प्रणाली पुन प्रारम्भ हुई है, गणतन्त्र शासन हमारे लिए कोई नया शासन नही है प्राचीन भारत मे शासन की व्यवस्था गणतन्त्र प्रजातन्त्र पद्धति से ही थी, हमारे यजुर्वेद मे इसका प्रमाण है

(३४) गणानां त्वा गणपति ँ हवामहे
प्रियाणां त्वा प्रियपति ँ हवामहे
निधीनां त्वा निधिपति ँ हवामहे
वसो मम
आहम जनि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम"

यह गणपति का मन्त्र है जिसे अभी तक भी शुभ कार्यों के प्रारम्भ मे ब्राह्मण एव विद्वान लोग बोलते हैं, गणपति को हम आज की भाषा मे प्रधान (पचायत समिति) कहते है, गणो (नेताओ) का जो पति हो गणपति कहलाता है हमारा सर्वश्रेष्ठ गणपति आजकल राष्ट्रपति कहलाता है अब यह स्पष्ट है कि गणतन्त्र शासन प्रणाली हमारे देश मे प्राचीन काल से थी परन्तु यह प्रणाली तब तक ही रही जब तक कि हम वैदिक सस्कृति एव आर्यसस्कृति पर चलते रहे हमारे अन्दर एकता रही क्योकि वेद नाम ज्ञान का है ऋगवेद ने हमे आदि से यही शिक्षा दी है कि "तुम्हारे अभिप्रायो मे, हृदयो मे और मनो मे एकता की भावना रहे जिससे तुम्हारी सघशक्ति और सामुदायिक

शक्ति का विकास हो, तुम सब मिलकर रहो, तुम अपने धर्म मे निरत रहो, सब एक साथ बोलो, एक चित होकर जीवन यापन करो, परन्तु जब से हमने हमारे वेद सूक्तो की अवहेलना शुरु की तब से विदेशियो ने हमारे देश पर आक्रमण शुरु किया और हमने दासता की बेडिया पहिनी, अग्रेजो के शासन काल मे, सामन्तशाही मे, राजाओ के शासन काल मे हमारी दशा दयनीय थी, हम बोल नही सकते थे, हमारे जीवन का कोई मूल्य नही था, हमे किसी प्रकार की स्वतन्त्रता और अधिकार नही था यदि हम बोल जाते थे तो हुक्म हो जाता था कि तुम को कत्ल करेंगे और इस पर है कि ताकीद कि तुम कहना न किसी से, अत ईश्वर ने एक महात्मा भेजा जिसने हमारी इस दयनीय दशा को अपना दुःख समझा और अपना सर्वस्व त्याग कर सबको फिर एकता के सूत्र मे बाँध कर दुशासनो (अग्रेजो) को अहिंसा के अस्त्र से भारत भूमि से भगा दिया और उस पूज्य बापू गांधी की कृपा से हमने अपना खोया हुआ गणराज्य पुन स्थापित किया, बापू ने हमे सामन्तशाही के चुगल से शोषण एव गुलामी के चगुल से छुडाकर स्वतन्त्र वायुमण्डल मे रहने का सौभाग्य प्रदान कराया अत हम उस महापुरुष से आजीवन उऋण नही हो सकते उनके प्रति कृत्य-कृत्य हुए बिना नही रह सकते, जिसने हमे हमारी खोई हुई सम्पदा लौटाकर हमारा अपना राज्य गणराज्य स्थापित किया, क्योकि उपर्युक्त अन्य शासन पद्धतियों मे से गणराज्य सर्वश्रेष्ठ शासन प्रणाली इसलिए है कि यह शासन प्रणाली जनता के प्रतिनिधियो द्वारा चलाई जाती है जो हमेशा जनता के नियन्त्रण मे रहते हैं तथा इसमे सबके प्रति एक ही नीति व्यवहार मे लाई जाती है एव इस प्रणाली मे सामन्तशाही, निरकुशता एव कुलीनता तन्त्र के दोष नही रहते, साथ ही निर्धन से निर्धन व्यक्ति अपनी योग्यता से उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर पहुंच सकता है चाहे वह किसी भी जाति का क्यो न हो, गणराज्य मे ही प्रत्येक नागरिक को देश की बातें समझ कर देश भक्ति एव समाज कल्याण के लिए नि स्वार्थ कर्मयोगी बन कर त्याग एव बलिदान करने की शिक्षा एव सुअवसर मिलता है अत स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हमने हमारे लिए खोलदिए है, हमे अपने साथ मौलिक अधिकार प्रदान किये है 1 समता 2 स्वतन्त्रता 3 अशोषण 4 धर्म स्वतन्त्रता 5 संस्कृति रक्षा एव शिक्षा स्वातन्त्र्य 6 सम्पत्ति परिग्रह एव 7 संवैधानिक उपचारो का प्रयोग ।

वस्तुत गणराज्य की स्थापना के बाद एव भारत के संविधान मे भारतीय नागरिक को मौलिक अधिकार प्रदान कर देने के पश्चात भारतीय नाग-

रिक के जीवन के मापदण्ड मे पर्याप्त परिवर्तन हो गया है, आज भारतीय नागरिक के जीवन के मूल्यो मे पर्याप्त परिवर्तन है आज हमारे जीवन के सामाजिक, आर्थिक एव राजनैतिक मूल्यो मे जमीन आसमान सा अन्तर पूर्व की अपेक्षा दृष्टिगोचर होता है, आज हमे विचार स्वातन्त्र्य एव अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता है परन्तु पूर्व मे ऐसा नही था जैसा कि ऊपर बताया गया है। सामन्तशाही एव अ ग्रेजो के शासनकाल मे हमारे जीवन का मूल्य कुछ भी नही था परन्तु आज हमे वोट देने का अधिकार है, आज कोई भी व्यक्ति भारत का प्रधान मन्त्री बन सकता है, राष्ट्रपति बन सकता है जबकि अ ग्रेजो के शासन मे कोई भी भारतीय नागरिक किसी उच्च पद पर नौकरी नही कर सकता था, राज्यपाल नही बन सकता था वाइसराय नही बन सकता था, आज किसी भी जाति का धर्म का व किसी लिंग सेक्स का भारतीय नागरिक किसी भी पद प्राप्ति का इच्छुक होकर अपनी योग्यता के बल पर उस तक पहुच सकता है। आज धर्म जाति व लिंग (No Cast no creed, no religion no sex) की विशेषता शेष नही है, नारी जाति को ही देखिये गणराज्य की स्थापना के पूर्व भारतीय नारी का कोई अस्तित्व नही था परन्तु आज नारिया दफ्तरो मे बाबू है, अफसर है, आई ए एस एव आर ए, एस अधिकारी, जिलाधीश है और यहा तक कि भारत की प्रधान मन्त्री एक भारतीय नारी है और सम्भव है भविष्य मे भारत की राष्ट्रपति भी नारी बन सकती है परन्तु क्या यह पूर्व सम्भव था ? सचमुच मे हमारा गणराज्य एव सविधान मानव को सब सिद्धिया दे रहा है, अ ग्रेजो के काल मे भारतीय नागरिक का सामाजिक मूल्य केवल दफ्तर का बाबू बन जाना मात्र था परन्तु आज राजनैतिक सामाजिक एव सवैधानिक व्यवस्थाए प्रत्येक भारतीय नागरिक के जीवन के श्रेष्ठतम मूल्यो को प्राप्त करने मे सहयोग देने के लिए तत्पर है परन्तु भगवान किसी के द्वार पर स्वय खडा हो जाय और कोई सुषुप्तावस्था मे पडा मानव उसके दर्शनो से लाभान्वित न होना चाहे तो इसमे किसका दोष है ?

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात जहा मानव का परम कर्तव्य जाग्रातिजागृतावस्था मे आकर उत्तरदायित्वो को सम्भालने के लिये कर्तव्यपथ पर आडटना था के बजाय हमने अधिकारो की चाहना अधिक की है आजादी को मनमानी करने का बाना बना लिया है अधिकारो की माग हित हिंसात्मक प्रदर्शन करना ही अपना लक्ष्य समझ बैठे है जबकि हिंसा कभी भी अधिकार प्राप्ति का साधन नही बन सकता, यदि ऐसा नही होता तो गांधीजी अहिंसा

का मार्ग न चुन कर हिंसा अपनाते, शत्रु को रणक्षेत्र मे परास्त करना हिंसा नही कहलाती योजनाबद्ध कार्यक्रम किसी को नुकसान पहुचाने हेतु बना कर उसे क्रियान्वित करना हिंसा कहलाती है, परन्तु आज हम अपना ही घर जलाते है, प्रत्येक कार्य हेतु सरकार पर निर्भर रहना हमारी प्रवृत्ति बन गई है, स्वावलम्बन का पाठ हम भूल चुके है, "योग कर्मसुकौशलम को सुनना पसन्द ही कहाँ करते तो फिर —

करेंगे क्या रफू वो चाके गरेबा को।
जिन्हे अपना फटा दामन अभी सीना नही आता ।।

परिणाम यह हुआ है कि आज हम दैवी धरोहर स्वतन्त्रता सम्पदा की, अपने गणराज्य की रक्षा करने जहा सगठित होकर आगे बढना चाहिए वहा अनेक दल अनेक मत हो सगठन हीन हो रहे है जबकि हमारा दर्शन हमे दर्शाता है चरैवेति चरैवेति अर्थात बढे चलो बढे चलो, वस्तुत आजयुग नारे लगाने वालो को नही चाहता, आज गांधी व नेहरु के नारे दोहराने वालों की जरूरत नहीं है बल्कि मातृभूमि को जरूरत है उन नवयुवको की उन नागरिको की कि जो गाधी व नेहरु के नारो को व उनके स्वप्नो को साकार करदें आज सबै शक्ति कलियुगे या केवल नारा लगाने की जरूरत नही बल्कि इस नारे को जीवन मे ढालने की आवश्यकता है, अपनी स्वार्थसिद्धि मे है न डूब कर त्याग की आवश्यकता है और आवश्यकता है कोमल किसलय के झुरमुट मे अदृश्य पुष्प सदृश वायुमण्डल को सुरभित करके माँ भारती के पावन चरणो मे अपना सर्वस्व समर्पित कर देने की क्योंकि —

निगाहे जिनकी जम जाती है मुस्तकबिल के चेहरे पर।
उन्हे माजी की वेहरमी का दोहराना नही आता ।।

अर्थात जो भविष्य का निर्माण करना चाहते हैं वे बीति ताहि बिसार औ आगे की सुध लेते हैं, यदि अब भी हम सुव्यवस्था मे ही रहेगे तो सम्भवत राजस्थानी के उस अज्ञात कवि की कही ये पक्तिया चरितार्थ न हो जाय कि

अमल छता उघरी नही मु दी रही अठयाम ।
अखिया अमल तगीर की अब उघरी किही काम ।।

अर्थात जब हम सामर्थ्यवान थे युद्ध करने करने को समर्थ थे तो सुषुप्त प रहे अब "सब कुछ लुटाके होश म आये तो क्या किया" और सम्भवत इस

रिक के जीवन के मापदण्ड मे पर्याप्त परिवर्तन हो गया है, आज भारतीय नागरिक के जीवन के मूल्यो मे पर्याप्त परिवर्तन है आज हमारे जीवन के सामाजिक, आर्थिक एव राजनैतिक मूल्यो मे जमीन आसमान सा अन्तर पूर्व की अपेक्षा दृष्टिगोचर होता है, आज हमे विचार स्वातन्त्रय एव अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता है परन्तु पूर्व मे ऐसा नही था जैसा कि ऊपर बताया गया है। सामन्तशाही एव अ ग्रेजो के शासनकाल मे हमारे जीवन का मूल्य कुछ भी नही था परन्तु आज हमे वोट देने का अधिकार है, आज कोई भी व्यक्ति भारत का प्रधान मन्त्री बन सकता है, राष्ट्रपति बन सकता है जबकि अ ग्रेजो के शासन मे कोई भी भारतीय नागरिक किसी उच्च पद पर नौकरी नही कर सकता था, राज्यपाल नही बन सकता था वाइसराय नही बन सकता था, आज किसी भी जाति का धर्म का व किसी लिग सेक्स का भारतीय नागरिक किसी भी पद प्राप्ति का इच्छुक होकर अपनी योग्यता के बल पर उस तक पहुच सकता है। आज धर्म जाति व लिग (No Cast, no creed, no religion no sex) की विशेषता शेष नही है, नारी जाति को ही देखिये गणराज्य की स्थापना के पूर्व भारतीय नारी का कोई अस्तित्व नही था परन्तु आज नारिया दफ्तरो मे बाबू है, अफसर है, आई ए एस एव आर ए, एस अधिकारी, जिलाधीश है और यहा तक कि भारत की प्रधान मन्त्री एक भारतीय नारी है और सम्भव है भविष्य मे भारत की राष्ट्रपति भी नारी बन सकती है परन्तु क्या यह पूर्व सम्भव था ? सचमुच मे हमारा गणराज्य एव सविधान मानव को सब सिद्धिया दे रहा है, अ ग्रेजो के काल मे भारतीय नागरिक का सामाजिक मूल्य केवल दफ्तर का बाबू बन जाना मात्र था परन्तु आज राजनैतिक सामाजिक एव सवैधानिक व्यवस्थाए प्रत्येक भारतीय नागरिक के जीवन के श्रेष्ठतम मूल्यो को प्राप्त करने मे सहयोग देने के लिए तत्पर है परन्तु भगवान किसी के द्वार पर स्वय खडा हो जाय और कोई सुपुप्तावस्था मे पडा मानव उसके दर्शनो से लाभान्वित न होना चाहे तो इसमे किसका दोष है ?

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात जहा मानव का परम कर्तव्य जाग्रातिजागृतावस्था मे आकर उत्तरदायित्वो को सम्भालने के लिये कर्तव्यपथ पर आडटना था के बजाय हमने अधिकारो की चाहना अधिक की है आजादी को मनमानी करने का बाना बना लिया है अधिकारो की माग हित हिंसात्मक प्रदर्शन करना ही अपना लक्ष्य समझ बैठे हैं जबकि हिंसा कभी भी अधिकार प्राप्ति का साधन नही बन सकता, यदि ऐसा नही होता तो गांधीजी अहिंसा

का मार्ग न चुन कर हिंसा अपनाते, शत्रु को रणक्षेत्र मे परास्त करना हिंसा नही कहलाती योजनाबद्ध कार्यक्रम किसी को नुकसान पहु चाने हेतु बना कर उसे क्रियान्वित करना हिंसा कहलाती है, परन्तु आज हम अपना ही घर जलाते है, प्रत्येक कार्य हेतु सरकार पर निर्भर रहना हमारी प्रवृत्ति बन गई है, स्वावलम्बन का पाठ हम भूल चुके है, "योग कर्मसुकौशलम को सुनना पसन्द ही कही करते तो फिरः—

करेंगे क्या रफू वो चाके गरेबा को ।
जिन्हें अपना फटा दामन अभी सीना नही आता ।।

परिणाम यह हुआ है कि आज हम देवी धरोहर स्वतन्त्रता सम्पदा की, अपने गणराज्य की रक्षा करने जहा सगठित होकर आगे बढना चाहिए वहा अनेक दल अनेक मत हो सगठन हीन हो रहे है जबकि हमारा दर्शन हमे दर्शाता है चरैवेति चरैवेति अर्थात बढे चलो बढे चलो, वस्तुत आजयुग नारे लगाते वालो को नही चाहता, आज गाधी व नेहरु के नारे दोहराने वालो की जरूरत नही है बल्कि मातृभूमि को जरूरत है उन नवयुवको की उन नागरिको की कि जो गाधी व नेहरु के नारो को व उनके स्वप्नो को साकार करदे, आज सघे शक्ति कलियुगे या केवल नारा लगाने की जरूरत नही बल्कि इस नारे को जीवन मे ढालने की आवश्यकता है, अपनी स्वार्थसिद्धि मे हे न डूब कर त्याग की आवश्यकता है और आवश्यकता है कोमल किसलय के झुरमुट मे अव्यय पुष्प सदृश वायुमण्डल को सुरभित करके माँ भ रती के पावन चरणो मे अपना सर्वस्व समर्पित कर देने की क्योकि —

निगाहें जिनकी जम जाती है मुस्तकबिल के चेहरे पर ।
उन्हें माजी की बेहरमी का दोहराना नही आता ।।

अर्थात जो भविष्य का निर्माण करना चाहते है वे बीति ताहि बिसार और आगे की सुध लेते हैं, यदि अब भी हम सुव्यवस्था मे ही रहेगे तो सम्भवत राजस्थानी के उस अज्ञात कवि की कही ये पक्तियां चरितार्थ न हो जाय कि —

अमल छता उधरी नही मु दी रही अठयाम ।
अखिया अमल तगीर की अब उधरी किही काम ।।

अर्थात जब हम सामर्थ्यवान थे युद्ध करने करने को समर्थ थे तो सुषुप्त पडे रहे अब "सब कुछ लुटा के होश मे आये तो क्या किया" और सम्भवत इसी

लिए अब्राहम लिंकन ने कहा है कि जो नागरिक अधिकारों की पूर्ति में डूबे रहे हैं एव कर्त्तव्य का पालन नही करते थे गणराज्य के अधिकारी नही, ऐसे लोग अपनी आजादी की हिफाजत नही कर सकते और ईश्वर की दृष्टि सृष्टि से वे अधिक दिन तक अपनी स्वतन्त्रता कायम नही रख सकते अत हमें उत्तिष्ठ जागृत प्राप्य वरानी बोधत अर्थात उठो जागो और लक्ष्य को प्राप्त करो के महामन्त्र को आदि कर धर्म पथ पर दृढ निश्चयात्मक बुद्धि से अग्रसर होना ही अपना परमकर्त्तव्य समझना चाहिए तभी हम हमारी रक्षा एव कल्याण कर सकेंगे क्योंकि गणराज्य शासन की नीव तभी सुदृढ रहती है जबकि नागरिकों के अन्त करण मे सन्तोष, धैर्य, साहस, त्याग, बलिदान, सगठन, सहयोग एव एकता की भावना हो तथा साधारण मनुष्य मे असाधारण एव महान कार्य करने की लगन हो क्योंकि गणराज्य की रक्षा अपनी शक्ति से की जा सकती है दूसरो की मदद से नही और विदेशी विद्वान वुडरो विल्सन का भी मत है कि मैं प्रजातन्त्र मे इसलिए विश्वास करता हू क्योंकि यह प्रत्येक मानव की शक्ति को उन्मुक्त करता है।

जागृति

प्रत्येक व्यक्ति मे चार अवस्थाए होती है पहली जागृत, दूसरी सुषुप्त तीसरी स्वप्न और चौथी तुरीय। मानव मे जो स्थित चेतना है उसके साथ जब वह अपना सम्पर्क (योग) रखता है तो वह जागृतावस्था मे रहता है। विषयो मे मोहित स्वप्नावस्था है। अत्यन्त घोर अवस्था सुषुप्ति है। योगाभ्यास मे निर्विकल्प समाधि तुरीय अवस्था है जिसमे किसी प्रकार का सकल्प-विकल्प नही रहता। तुरीयातीत अवस्था जीवित समाधि लेने को कहते है। तथा निर्विकल्प समाधि को भी।

इन अवस्थाओ की भी उप अवस्थाये है। उदाहरणार्थ जब मनुष्य निद्रा से उठकर जागता है तो वह उसकी जागृत अवस्था है और जब जाग्रति-जागृत अवस्था मे आ जाता है तो वह बहुत जोशीला हो जाता है जिसके कारण वह नवीन महान कार्य करता है। इस अवस्था मे मानव फना की हालत मे होता है और उसके मन मे यह भाव रहता है कि मिटादें अपनी हस्ती को अगर कुछ मर्तबा चाहे। जिसके फलस्वरूप वह क्रान्ति पैदा कर सकता है। युद्ध क्षेत्र में शत्रु को परास्त कर सकता है। प्राय सैनिक रणक्षेत्र मे इसी अवस्था मे रहते हैं और तभी वे शत्रु से लोहा ले पाते है। इसके विपरीत जब मानव जागृत स्वप्नावस्था मे होता है तो वह केवल खयाली पुल बाधता है, योजनाएं बनाता है पर उन्हे नियान्वित नही कर पाता। जागृत तुरीय अवस्था मे मनुष्य जागते हुए भी सोया रहता है यद्यपि वह खाता है पीता है चलता है फिरता है और अपने जीवन यापन का कार्य भी करता है परन्तु फिर भी वह बेहोशी मे रहता है। इस अवस्था मे मनुष्य प्रमादी आलसी होता है। यह अवस्था प्राय लक्ष्यहीन व्यक्तियो की होती है। स्वप्न जागृति अवस्था वह है जिसमे मनुष्य कोई स्वप्न देखे वह स्वप्न सत्य हो जाय। स्वप्न मे स्वप्न देखना अथवा स्वप्न मे कही जाकर सो जाना वह स्वप्न तुरीयावस्था है। सुषुप्ति स्वप्न अत्यन्त घोर अवस्था को कहते है जैसे कु मकर्ण की निद्रा। इसे ही दूसरे शब्दो मे सुषुप्तातिसुषुप्ति कहते है।

अग्रेजो के समय मे अ ग्रेजो की देन दीनता, हीनता, मलीनता और पराधीनता ने घर घर मे घर कर रखा था। अ ग्रेजो के अत्याचारो से भारतवासियो की आत्माए भयभीत होकर सुषुप्तावस्था मे चली गई थी। मानव

बड़े व उज्जवल भविष्य के लिए युद्ध करें। पीछे की ओर मत देखो, नही कदापि नही, चाहे उस ओर से अपने सबसे प्रिय एवं निकट सम्बन्धी ही की करूण पुकार क्यो न आती हो। पीछे की ओर न देखकर आगे की ओर देखो।

सत्य है जब तक हम हमारे महापुरुषो के वचनों का पालन न करेंगे उससे प्रेरणा लेकर अपने अन्तरात्मा मे जाग्रति-जागृत नही करेंगे तथा अकर्मण्य बनकर प्रमादयुक्त पड़े रहेंगे तो हम न तो विकास ही कर पायेंगे और न ही उस परम संत गाधी की देवी धरोहर स्वतन्त्रता सम्पदा की रक्षा ही हमसे हो सकेगी जो कि हमारी परीक्षा लेने को हमें सौंपी गई है। आओ हम प्रतिज्ञा करें कि मा भारती की रक्षा अपने प्राण प्रसूनो से करेंगे।

त्याग

आत्मा की शाति के लिये त्याग की परमावश्यकता होती है। त्याग वह पवित्र वस्तु है जिसके धारण करने से मनुष्य अपने पापो का नाश करके समाज मे आदरणीय हो जाता है एक उर्दू के शायर ने कहा है —

अपने मजे के खातिर जब गुल छोड ही दिये सब ।
सारे जहां के गुलशन अपने ही हो गये तब ।।

सचमुच मे जब मानव त्यागी हो जाता है तो उसकी विश्वमैत्री हो जाती है। प्रत्येक प्राणी चाहे व पुरुष हो पशु हो अथवा पक्षी उससे प्यार करने लगते हैं। जिसने त्याग का अर्थ समझ लिया भव ससार सागर से तर जाता है और भ्रमरूपी भवर मे नही फसता। त्याग वह धर्म है जो मनुष्य के लिये मुक्ति के द्वार खोलता है और उसे दिव्यता प्रदान करता है। आज तक ऐसा कोई धर्म नही जिसने त्याग की महत्ता पर प्रकाश न डाला हो। सभी धर्म सिद्धातो मे त्याग को उच्च स्थान मिला है। त्याग का अर्थ कामनाओ का नाश करना व मन मे उपरति धारण कर ससार की प्रत्येक वस्तु को नश्वर समझ कर इन्द्रियो व मन को जीतना है, त्याग का आत्मिक उत्थान का परम साधन है इसीलिए हमारे ऋषियो ने कहा है "मन के मत न चालिए पलक पलक मन और" वस्तुत शान्ति प्राप्त करने के लिए त्याग जरूरी है। एकउर्दू के शायर ने कहा है —

मेरी बेचैन उम्मीदो, मेरे बेसब्र अरमानो ।
मेरे दिल से निकल जाओ, तुम्हे आजाद करता हू ।।

सचमुच जो मनुष्य सब कामनाओ को त्याग कर निस्पृह ममता और अहकार रहित हो विचारता है वह शाति प्राप्त करता है। हमारे शास्त्रों में लिखा है कि जगत्यक्त्वा सुखी भवते अर्थात ससार को छोडने से सुख सम्भव है। ससार को छोडने का अर्थ गृहस्थ धर्म त्यागना नही है, वह तो पाप है। ससार को त्यागने का अर्थ है अपनी अनावश्यक आवश्यक्ताओ का त्याग, दभ, दर्प, छल का त्याग। पूज्य बापू ने भी कहा है कि अपनी जरूरत से ज्यादा धन और

चीजें इक्ट्ठी करना चोरी है क्योंकि चंद आदमियो मे धन केन्द्रित होना और लाखो का बेकार होना महान सामजिक अपराध है।

लोक प्रेम, शास्त्र प्रेम या देह प्रेम से जीव को यथार्थ ज्ञान प्राप्त नही होता जो मनुष्य इनको त्यागता है वही कल्याण का अधिकारी है क्योंकि जैसे दुष्ट हाथी अंकुश बिना आधीन नही होता वैसे ही यह चंचल चित्त भी त्याग रूपी अंकुश बिना आधीन होता नही है। इस चित्त को वश में करने के लिए वासना का त्याग आवश्यक है आत्मा को पतन की ओर ले जाने वाले तीन शत्रु है, काम क्रोध और लोभ। कल्याण का इच्छुक इन तीनों को त्याग दे तो उसकी इच्छा शक्ति बढ जाती है अन्यथा मानव विनिष्ट हो जाता है। काम को नियन्त्रण मे रखने से क्रोध नही आता और क्रोध नियन्त्रण में आने से लोभ नही आता और कब्ज रोग, हिरदय की बीमारी, फेफडो और सीने की बीमारिया भी नही होती। भारतीय मनुष्य देवी जीव है अत त्याग द्वारा दिव्यता प्राप्त करना ही उनका भूषण है।

भारत सर्वदा से अपनी त्याग, तपस्या, दान, बलिदान एव दैविक ज्ञान के कारण ही जगद्गुरु कहलाया है। भारत ने सर्वदा शत्रुओं को त्याग के बल पर ही परास्त किया। उस साबरमती के संत ने एक लंगोटी पहिनकर अंग्रेजो का सूर्यास्त विश्व मे कर दिया। उस महासंत गाधी का त्याग आज विश्व का बच्चा बच्चा जानता है। सेल्यूकस जब सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य से सन्धि करने आया तो उसे रथ मे बिठाकर जंगल मे भेज दिया गया। सारथी ने रथ एक झोपडी के बाहर खडा कर दिया और कहा सम्राट वे महा-आमात्य इस कुटिया मे रहते है। वे ही सन्धि के बारे मे आपसे वार्ता करेंगे। झोपडी मे एक ब्राह्मण नगे बदन, घुटनो तक धोती बाधे, गले मे यज्ञोपवीत पहिने, सिर के बाल मुंडाये हुए, जमीन पर बैठा हुआ अपनी जंघा पर रखे एक कागज पर कुछ लिख रहा था। सवा घंटे बाद उसने अपनी कलम नीचे रखी और अपनी गर्दन उठाई तो द्वार पर सेल्यूकस को खडा देखकर वह बूढा ब्राह्मण महर्षि चाणक्य सिंहनाद करता हुआ बोला, कौन ? तुम सेल्यूकस। क्या मागने आये हो मेरे पास ? सेल्यूकस उस त्यागी महा-आमात्य चाणक्य की आवाज से काप उठा। उसने चरण पकड लिये चाणक्य और बोला धन्य हैं भारत देश का त्याग कि समस्त भारत का महा आमात्य याने प्रधान मन्त्री जो अपने वैभव के सारे साधन जुटा सकता है, नगे बदन एक झोपडी मे रहता है और वो भी जंगल में। मुझे कुछ नही चाहिए महाराज, एक त्यागी से अभयदान

को भिक्षा मागने आया हू। महर्षि कौटिल्य के त्याग ने भारत के शत्रु को सर्वदा के लिये परास्त कर दिया।

त्याग से ही मानव देवी सम्पदा प्राप्त करता है। उसकी वाणी मे ओज एव आखो मे दिव्य शक्ति होती है जिसके समक्ष देखने की हिम्मत किसी की नही हो सकती। त्यागी के ही चरणो मे ससार का सारा वैभव न्यौछावर होता है क्यो अमेरिका विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ का दिवाना हो गया था? क्यो साधु सतो के चरणों मे धनाढ्य लोग जाते है और अपना सब कुछ भेंट कर देते है। तो कहना पडगा कि उनके त्याग मे शक्ति है, स्वामी रामतीर्थ न कहा है —

भागती फिरती थी दुनिया जब तलब करते थे हम।
जब जो नफरत हमने की तो बेकरार आने को है ॥

त्याग से ही मनुष्य के व्यक्तित्व मे आकर्षण बढता है। स्वर्गीय पडित नेहरू के त्याग के फल स्वरूप ही उनकी वाणी मे, व्यक्तित्व मे इतना आकर्षण पैदा हो गया था कि वह भारत का अद्वितीय नि स्वार्थ कर्मयोगी ससार के हर हृदय का हृदय सम्राट बन गया जिसे युग युगातक के इतिहास नही भुला सकेगा, ऐसी अमरता प्राप्त की उस महा मानव ने त्याग के कारण। ये तो भौतिक उदाहरण हैं। आप जरा देवताओ पर दृष्टि डालिये, भगवान विष्णु और शिव की वेशभूषा पर तो विदित होगा कि विष्णु को स्वर्ग चाहिए रहने को तो शिव श्मशान मे ही रहते है, विष्णु शरीर पर चन्दन लगाये तो शिव भस्मी लपेटते है। विष्णु पीताम्बर पहिने तो शिव बाघम्बर पहिने रहते है। विष्णु को बढिया त्वरित सवारी चाहिए बैठने को तो शिव बूढे बैल पर ही सवार हो घूमते है विष्णु को बढिया माल ताल चाहिए खाने को तो शिव आक धतूरा खाकर ही पेट भरते है। तात्पर्य यह है कि शिव भगवान विष्णु की अपेक्षा त्यागी है इसलिए वे महेश्वर कहलाते हैं, विश्वेश्वर कहलाते है। हमारे इस भौतिक शरीर मे चेतन तत्व है वह शिव है जो हृदय गुफा मे विराजमान है, को प्राप्त करने के लिए त्याग की आवश्यकता है। जवानी के जोश मे होश कर मानव वासना मे निमग्न हो जाता है अत वासना के त्याग हेतु कहा है कि —

मजा है जोशे जवानी मे पारसाई का।
वो ना खुदा है, जो किश्ती बचाये तूफा मे ॥

अर्थात जवानी मे वासना का त्याग ही श्रेष्ठ त्याग है। त्याग मे ही आत्मा

का साक्षात्कार सम्भव है। त्याग से उपरति आती है जिससे मन की चचलता शान्त होती है और मन रूपी घोडे की लगाम को त्याग से रोको कि बस काम बना फिरे तो राई की ओट मे पर्वतवाली ही बात रहगई। बैठे कुछ काल एकान्त मे और हुई हमे भगवत प्राप्ति फिर देर नही लगती। गृहस्थाश्रम मे रहकर मनुष्य त्याग के साधन से ही प्रभु को प्राप्त कर सकता है इसीलिए भगवान कृष्ण ने कहा है कि कर्मफल त्यागी स त्यागीत्यमिधीमते अर्थात कर्मफल को त्याग कर नि स्वार्थभाव से जीवन निर्वाह करने वाला ही महान त्यागी है। माया छाया का रूप है उससे पीठ फेरली जाय तो वह पीछे दौडती है इसीलिए महर्षि वाल्सायन ने कहा है कि प्रकृति विजायते पुरुष अर्थात प्रकृति को जीतने वाला ही पुरुष कहलाता है। प्रकृति का सम्बन्ध मन से घनिष्ठ है अत मन मे त्याग ही सच्चा त्याग है। मन को मारना बडा कठिन है —

बडा मुश्किल है दिल पर जब्त करना माना ये हमने।
मजा शीरो शकर मिलता है, लेकिन जहर पी पीकर ।।

और इसीलिए शायर अकबर ने मन को मारने हेतु लिखा है कि—

मारना दिल का समझता हू, जहादे अकबर।
वही गाजी है बडा, जिन्होंने ये गाजी मारा ।।

त्याग के अनेक लक्षण है जैसे निषिद्ध कर्मो का सर्वथा त्याग काम्य कर्मो का त्याग, तृष्णा का त्याग, स्वार्थ के लिए दूसरो से सेवा कराने का त्याग, सम्पूर्ण कर्त्तव्य कर्मो मे एव उपासना मे आलस्य का त्याग, भक्ति मे कामना का त्याग, माता पिता गुरूजनो की सेवा मे आलस्य का त्याग, यज्ञदान तप आदि शुभ कर्मो मे आलस्य का त्याग, अहकार का त्याग, देश की सेवा एव रक्षा करने हेतु अपना सर्वस्व त्याग, कायरता का त्याग, अन्न त्याग आदि लक्षण त्याग के है।

त्याग मे ही सुख है आनन्द है। "क्योकि न चेन्द्रस्य सुख" याने सुख इन्द्रियो के भोग मे नही, "सुखमस्ति विरक्तस्य मुनेरेकान्त जीविन" अर्थात त्यागी और एकान्त वासी जीव को ही सुख है। त्याग पुरुष को महावीर बना देता है उसे अमरता प्राप्त करा देता है, सिद्धार्थ, महावीर स्वामी, अशोक आदि अनेक महापुरुषो की जीवनिया हमारे समक्ष ज्वलन्त उदाहरण के रूप

मे है जिनके त्याग ने उन्हे आज ससारव्यापी अमरता प्रदान की तथा जिनसे हम प्रेरणा ले सकते है।

त्याग के मार्ग पर अग्रसर होने के लिए तीन बातो का त्याग सर्वप्रथम करना वाछनीय है। पहली बात है दुराशाग्रस्तता का त्याग अर्थात खोटी आशा जैसे कल तक का तो भरोसा नही है और मन मे ऐसी आशाए करना कि अरे इस धन को मैं दान पुण्यादि मे अथवा देश सेवा मे लगा दू गा तो आगे क्या खाऊ गा। इसे रहने दू गा तो मेरे काम आयगा। यह दुराशाग्रस्तता है क्यो कि काल का कराल कुचन चौबीस घटे घूमता है "या जग मे खबर नही पल की" कब मृत्यु आ जाय अत ऐसी आशाए त्यागनी ही श्रेयस्कर है। दूसरी बात है मिथ्या विचार का त्याग अर्थात ऐसी बातें जिनका कोई अर्थ नही, जिनसे कुछ प्राप्त नही होता हो, बुरी आलोचनाए करना, गलत धारणाए आदि लगाना, व्यर्थ गप्पो मे बहुमूल्य समय नष्ट करना आदि मिथ्या विचार है। इनका त्याग जरूरी है क्योकि अधिक बोलने से शक्ति का ह्रास होता है। तीसरी बात है प्रमादता का त्याग अर्थात गाफिल रहना त्यागना वस्तुत आज देश मे सकटकालीन परिस्थिति है हमको सुपुप्तावस्था का त्याग कर जाग्रति जागृत रहने की परमावश्यकता है नपुसक जीवन त्याग कर निडर रहने की जरूरत है क्योकि आत्मा स्वतन्त्रता पसन्द करती है परतन्त्रता नही। देश जो कि अभी गणराज्य है उसे गुण राज्य बनाने के लिए प्रत्येक भारतीय को नि स्वार्थ कर्मयोगी बनना होगा और त्यागना होगा प्राण प्रसूनो को देश के प्रति, चढाने होगे रक्तकणो के सुमन मा भारती की बलिवेदी पर और देनी होगी आहुति राष्ट्र रक्षा यज्ञ मे। अन्यथा एक उर्दू के शायर के कथनानुसार :—

न सम्भलोगे तो मिट जाओगे ऐ हिन्दोस्ता वालो।
तुम्हारी दास्ता तक भी न होगी दास्तानो मे॥

सादगी

महान दार्शनिक सुकरात का कथन है कि हमारी आवश्यकतायें जितनी कम होती है हम ईश्वर के उतना ही निकट होते जाते हैं, वास्तव मे सादगी मे जितना सुख है उतना किसी मे नही। यही कारण था कि हमारे पूर्वजो ने सादा जीवन उच्च विचार का पाठ हमें पढाया है। सादगी से जीवन निर्वाह करने में हमारी आवश्यकताओ की ह्रास कमी होती है। फैशन और रस्म रिवाज मे हमारी आय का बहुत बडा भाग खर्च हो जाता है जिससे हमे सर्वदा आर्थिक अभाव प्रतीत होता है और हम चिन्ति रहते हैं। रिवाजो मे, रूढी-वादी परम्पराओ मे अनावश्यक धन व्यय करना स्वय की आत्म हत्या करना है। आजकल प्रत्येक व्यक्ति यह कहता दिखाई पडता है कि पैसे की बहुत कमी मैं परन्तु वह यह नहीं सोचता कि जो कुछ धन मैं प्राप्त करता हू वह फैशन और कृत्रिम प्रदशन मे कितना व्यय कर देता हू जबकि अज्ञानी पुरुष ही बाहरी प्रदर्शन को अपनाते हैं। आजकल स्त्री पुरुष बूढे बच्चे छात्र छात्रायें सभी फैशनेबिल बने रहते हैं यह जानते हुए भी कि जबतक सरल जीवन जीना नही आता हमारा सारा ज्ञान व्यर्थ है। विकासशील एव सुखी जीवन तो उन्ही का सम्भव है जिन्होने व्यर्थ मे बनाव श्रृगार को जीवन मे प्रधानता नही दी। जब तक हम इस फैशन के दीवाने बने रहेगे तो हमें सुख कहा से मिलेगा ? कुछ लोगो की यह धारणा है कि जीवनस्तर ऊचा रखना चाहिए पर एक व्यक्ति यदि पाच सौ रुपये कमाता है और उस धन को फैशन मे तडक भडक के कपडे पहनने मे खर्च कर देता है तो विद्वान व्यक्ति उसका जीवन स्तर ऊचा नही मानते जबकि दूसरा व्यक्ति जो दो सौ रुपये कमाता है उसको सही ढग से खर्च करता है और भविष्य के लिए कुछ बचाकर रखता है, उसका जीवन स्तर सचमुच ऊचा है सभी मानते है। सादगी से रहना ही मानव को ऊचा उठाता है हमारे पूर्वज सादगी से रहते थे इसीलिये सुखी थे। सादगी का एक उदाहरण है कि —

शाहू जी सितारे के राजा थे। एक दिन उनसे मुगलों के सरदार निकलकर मिलने आये उस समय शाहू जी फटा कमीज पहिने बैठे काम कर रहे थे। चोबदार ने सरदार के आने की सूचना शाहू जी को दी। उन्होने चोबदार से कहा कि सरदार को सत्कार सहित मेरे पास ले आओ। शाहू के

पास मुंशी बैठा था उसने कहा कि महाराज क्या आप इस फटे कपडो से सरदार से मिलेंगे ? सरदार क्या सोचेगे ? शाहु जी मुंशी को कहा कि सरदार मुझसे मिलने आये है न कि मेरे कपडो से। मुंशी चुप हो गया। सरदार आये और मिलकर अपने काम काज की बाते करके चले गये। सरदार के जाने के बाद शाहू जी ने मुंशी से कहा कि मुंशीजी मनुष्य का बडप्पन बढिया और कीमती कपडे पहिनने मे नही है बल्कि मानव की महानता तो महान कार्य करने में है। जो व्यक्ति देश, समाज एव राष्ट्र के उत्थान एव रक्षाहित अपना जीवन देते है वही सचमुच महान है।

हमने यदि सरल एव शुद्ध जीवन व्यतीत करना सीख लिया तो वस्तुत हम देश की काया पलटने मे समर्थ होगे। देश को सकट से बचाने मे सहयोग दे सकेंगे। देश पर दरिद्रता एव सकट के काले बादल छाये हुए है। रोग और शत्रु हम पर आक्रमण कर रहे है। फैशन के कारण हम रोग ग्रस्त होते जा रहे है। क्रीम आदि कृत्रिम प्रसाधन का प्रयोग केन्सर की बीमारी हमे देता है। सकट से बचने का उपाय हमारे ही हाथ मे है हमे सादगी से रहता देखकर हमारे मित्र व परिवार वाले सादगी से रहने पर विवश हो जायेंगे। यदि हमारे जीवन मे सादगी है, सरलता है, सत्यता है तो उसका असर अपने आप लोगो पर पडेगा, यदि हम कृत्रिम सादगी का प्रदर्शन करेंगे तो वह प्रभावशाली नही होगा। सादगी के सिद्धात की रक्षा करने के लिए यदि कोई हम पर व्यग भी करदे तो हममे सहनशीलता की शक्ति होनी चाहिए। जिसके फलस्वरूप व्यगकर्त्ता को स्वय शर्म आयेगी और वह भी सादगी से जीवन व्यतीत करने लगेगा। यदि हम सकटकालीन परिस्थिति मे भी सादगी नही अपनायेंगे और रस्म रिवाज और फैशन जो दु ख का कारण है मे धन लुटाते रहेंगे तो हमारा दिल और दिमाग कमजोर हो जायगा और फिर हमे उनके इलाज मे पैसा लगाना पडेगा जिससे हमारी दशा दयनीय हो जायगी, जीवन विषाक्त हो जायगा। फिजूल खर्चा रोकने मे ही सुख सम्भव होगा, देश की रक्षा सम्भव होगी क्योकि —

जननी अरु निज भूमि को, बढ प्राण हु से देख।
जाकी सेवा करन् को प्राण न कछु अपरेख।

एक सादगी का चमत्कार देखना है तो गान्धी जी का जीवन देखिये जिसने लगोटी मे रहकर अंग्रेजो को अपने समक्ष नतमस्तक किया। वे पूज्य बापू जब

गोलमेज कान्फ्रेंस मे इंगलैंड के जार्ज पंचम से मिलने गये तो उनसे कहा गया कि आप अंग्रेजी वेषभूषा पहिनकर ही सम्राट से मिल सकते हैं अन्यथा नहीं, तो गान्धी जी ने शीघ्र उत्तर दिया नहीं मैं इसी लंगोटी धोती मे सम्राट से मिलूंगा क्योंकि मेरे देश की यही वेषभूषा है। यह कहकर वे एक दम से सम्राट से मिलने अन्दर चले गये। सम्राट ने गान्धी जी को इतनी सादगी मे देख कर अपना सिंहासन छोड दिया और स्वयं उनका सत्कार करने दौड पडा। गांधी जी की सादगी के प्रभाव ने सम्राट के दिल दिमाग पर इतना प्रभाव डाला कि अंग्रेजो को भारत को स्वतन्त्रता देनी ही पडी। महात्मा गांधी की प्रदत्त स्वतन्त्रता की रक्षा करने के लिए जब हम दृढ संकल्प है तो हमे उस सादगी एवं सरलता की महामूर्ति के जीवन से सादगी धारण करने का भी दृढ संकल्प करना होगा तभी हमारा कल्याण सम्भव है तभी हमे सच्चे सुख की प्राप्ति होगी।

मनुष्य जीवन अति दुर्लभ है जिसका उद्देश्य स्वयं का समाज एवं राष्ट्र का कल्याण करना है। कल्याण तभी सम्भव है जब हम दुनिया छोडदें अर्थात हम अपनी अनावश्यक आवश्यकताओ, आराम देह आवश्यकताओं एवं बिलासपूर्ण आवश्यकताओ को जीवन से पृथक करदें क्योंकि जरूरत से ज्यादा खरीद खरच, खपत ही मुश्किलें पैदा करती है।

———

दान

हमारे देश में दान की बड़ी महिमा है क्योंकि मनुष्य की आत्मा को शान्ति धन से नही मिलती अपितु दान से मिलती है क्योंकि

"जब आवे संतोष धन सब धन धूरी समान" (कबीर)

किसी भी चीज का दान करना अपने लिये मोक्ष के द्वार खोलना है। मनुष्य अपनी सामर्थ्य एवं शक्ति अनुसार जो कुछ भी श्रद्धापूर्वक देदे इसी का नाम दान है। दानी इस लोक मे और परलोक में दिव्य सुख प्राप्त करता है। इसलिए भगवान कृष्ण ने गीता मे कहा कि 'त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः'

यज्ञदान तपः कर्म न त्याज्य कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम ॥

अर्थात मानव को पवित्रता प्राप्त करने के लिए यज्ञ दान तप नही छोड़ना चाहिए।

दान करने के लिए पाश्चात्य विद्वानो ने भी पर्याप्त प्रेरणा दी है। एडीसन का कथन है कि दान ही धर्म का पूर्णत्व और उसका आभूषण है तो एक्ट्स का कहना है कि प्राप्त करने की अपेक्षा दान करना कही अधिक सौभाग्य का द्योतक है। बीचर का मत है कि दान का प्रत्येक कार्य स्वर्ग-पथ पर गतिशील होने का एक चरण है तो बाइबिल का सन्देश है कि तेरा धन तेरे साथ नष्ट होजाय क्योंकि तूने दान नही दिया। जीजस क्राइस्ट ने सरमन आन दी माउन्ट याने पहाड़ पर अपने शिष्यों को उपदेश देते हुए कहा था कि 'तुम अपने दाहिने हाथ से इस तरह दान करो कि तुम्हारे बायें हाथ को पता भी न चले कि तुमने क्या दान दिया हैं'। महाकवि रहीम खान-खाना महादानी थे उनका मत है कि वे पुरुष जीवित मुर्दा हैं जिनका मुख दान देने के लिए "नाहि" शब्द निकलता है। पंजाबी भाषा में भी एक कहावत है "दान दित्तियां धन ना घटे कह गये दास कबीर"।

हमारे भारतीय शास्त्रों में भी दान की महिमा पर अनेक सूत्र मिलते हैं-

"प्रजाना रक्षण दान" प्रजा की रक्षा दान से ही सम्भव है ।

शौर्य तेजो धृतिदाक्ष युद्धे चाप्यपलायनम् ।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्र कर्म स्वभावजम् ।।

क्षत्री को वीर होना चाहिए, युद्ध मे पीठ दिखाने वाला नही होना चाहिए । दान करना, धैर्य रखना तेज वान व ज्ञानवान होना क्षत्री का धर्म है ।

पशूना रक्षण दान मिज्याध्ययनमेवच ।
वाणिक्पथ कुसीद च वैश्यस्य कृषिदेवच ।।

वैश्य को भी पशुओ की रक्षा करना, दान देना, वेद पढना, व्यापार करना एव खेती करना चाहिए ।

दान अनेक प्रकार के है जैसे विद्यादान, अन्नदान, धनदान, प्राणदान एव रक्तदान आदि । 'सर्वेषामेव दानाना विद्यादान विशिष्यते' सब दानो मे विद्या दान, ज्ञान दान अपनी विशेषता रखता है । विद्या रूपी धन दान नही करने से घटता है और दान करने से बढता है । दस चीजो का दान महादान कहलाता है ।

कनकाश्वतिला नागा दासी रथमहीगृहा ।
कन्या च कपिला धेनु महिदानानि वै दश ।।

सोना, घोडा, तिल, हाथी, दासी, रथ, भूमि, घर, कन्या और गाय इनमे से किसी भी वस्तु का दान करना महादान है । सोने का दान करने वाला ब्रह्मलोक मे जाकर आनन्द भोगता है । 'प्राणदान महदान यस्मिन् दान समाप्यते ।' प्राणदान तो अत्यधिक महादान है इस दान के आगे सब दान समाप्त हो जाते है अपना रक्तदान देकर किसी के प्राणो की रक्षा करने सदृश्य त्रिभुवन मे कोई दान नही है । क्योकि —

है मरणी इतिहास उनका रक्त जो निजदान करते ।
बाटते अमृत जगत को खुद हलाहल पान करते ।
है ऋणी इतिहास उनका रक्त जो निज दान करते ।
बाटते अमृत जगत को खुद हलाहल पान करते ।।

कुरान मे भी हजरत मोहम्मद ने आदेश दिया है कि भूखे पडोसी को सर्वप्रथम

भोजन कराना चाहिए क्योंकि सभी प्राणी ईश्वर के परिवाररूप है और वही व्यक्ति खुदा को अधिक प्यारा है जो उसके परिवार के साथ अधिकाधिक भलाई करता है।

इस ससार की प्रत्येक वस्तु नाशवान है। मानव के सग उसका लिया-दिया ही जाता है। परोपकारी, सेवाभावी, दानवीर व्यक्तियो को ही अमरता प्राप्त होती है। साहित्य और इतिहास दानवीरो की ही वीर गाथाए गाता है। महारथी कर्ण के स्वर्णदान की कीर्ति आज भी अजर अमर है। राजा शिव का एक कबूतर भी प्राणरक्षा हित अपना रक्तदान, मासदान को आज कौन नही जानता। रतिदेव जिन्होने कि अतिथि सत्कार मे अपना सर्वस्व लुटा दिया और अ त मे जगल मे भूखे प्यासे रहे और अनेक दिवस बाद उन्हे भोजन मिला और ज्योही वे भोजन करने के लिए बैठे कि उनके पास ब्रह्मा विष्णु महेश भिक्षुक बन कर उनकी दानवीरता की परीक्षा लेने आगये और यहा तक कि रतिदेव के लिए भूखे पेट को जलसे भरने के लिए पानी तक नही छोडा की कथा आज भारत के आबाल वृद्ध सभी जानते है। स्वाधीनता की रक्षा हित भामाशाह का दान आज भी हमे प्रेरणादायक हैं।

दान की महिमा अपार है इस पर जितना कहा जाय कम है। मानव को सुशोभित करने वाले तीन गुण हैं आशा, विश्वास और दान जिसमे दान सर्वश्रेष्ठ है क्योकि दान हमारे पापो को क्षीण करता है। इसीलिए स्वतन्त्रता सग्राम के अमरसेनानी सुभाषचन्द्रबोस ने कहा है कि यदि तुम प्राप्त करना चाहते हो तो अर्पित करना सीखो क्योकि ज्यो जल बाढे नाव मे, घर मे बाढे दाम। दोऊ हाथ उसी लिए, यह सजनक को काम॥

आज धरा ब्राह्मण से ज्ञान के प्रचार का दान मागती है। कृषक से अनाज का दान मागती है वैश्य से स्वर्णदान चाहती है और महाप्रकृति नवयुवको से कह रही है कि 'दो आज, धरा तरूण हृदय का रक्त मागती।

ईमानदारी

भारतीय आर्य सस्कृति मे चातुर्वर्ण्य-विभाग मे "वैश्य" तृतीय वर्ण है। यह समाज सस्था के अर्थ विभाग का अध्यक्ष है। न्याय पूर्वक सबको आजीविका देते हुए व्यापार, कृषि और पशुपालन आदि के द्वारा अर्थ का उपार्जन करना और उसे तीनो वर्णों के भरण-पोषण मे ट्रस्टी की भाति यथा विधान व्यय करके अपने लिए पारिश्रमिकस्वरूप जीविका-निर्वाहोपयोगी अर्थ ग्रहण करना इसका धर्म है। वैश्य वर्ण ही समाज का प्राण है—आत्मा है। वैश्य व्यापारी के बहीखाते मे सारा हिसाब किताब ठीक रहता है और क्रियादक्षता व्यापार कुशलता ईमानदारी तथा सत्य का पालन उसके व्यवहार का प्रधान स्वरूप होता है।

'वाणिज्ये वसति लक्ष्मी" धन प्राप्ति व्यापार से ही होती है। पाश्चात्य वाणिज्य शास्त्रो के अनुसार व्यापारी मे आठगुण होने चाहिए। वे गुण इस प्रकार है। एनर्जी-कार्यक्षमता, एकॉनोमी, मितव्ययिता, इन्टिग्रिटि-व्यापारिक एकता, सिस्टम-ढग, सिम्पेथी सहानुभूति एव सहनशीलता, सिन्सीयरटी-विश्वासपात्रता, इम्पार्शियलिटी-निष्पक्षता और सेल्फ रिलाइन्स-आत्म-विश्वास।

इन सिद्धान्तो पर आधारित व्यापार इतना सुदृढ एव लाभप्रद होता है, जिसे कोई हानि नही पहुचा सकता। उसमे कोई विघ्न नही डाल सकता और उसका अस्तित्व सदा बना रहेगा तथा उसकी सफलता अविरल गति से अपने लक्ष्य को प्राप्त करती जायगी। पाश्चात्य वाणिज्य पद्धति मे कई प्रकार की खाता पद्धति है। जैसे जर्नल, लेजर, कैश बुक आदि परन्तु पाश्चात्य वाणिज्य पद्धति हमारी भारतीय खाता पद्धति के सक्षम अपूर्ण सी लगती है। हमारे प्राचीन वाणिज्य विज्ञान के अनुसार भारतीय वाणिज्य सात खातो मे रखा जाता था। वे खाते इस प्रकार हैं—भू, भुव, स्व, मह जन, तप, सत्य। 'भू' खाते को हम रोजनामचा कहते है। भुव छोटी बही कहलाती है 'स्व' का अर्थ पक्की रोकड है, 'मह' का अर्थ खाता बही है, 'तप' का अर्थ परिशोधन किया हुआ खाता यानी तलपट-ट्रायल वेलेन्स है। 'सत्य' खाते का अर्थ है चिटठा, जो लाभ हानि अ कित करता है।

प्राचीन भारत मे व्यापारी सत्य खाता रखकर सत्यतापूर्ण अपने लाभ का दस प्रतिशत बिना राज्य के मागे राज्य मे जमा करा देता था, क्योंकि वह यह जानता था कि यह विश्व ऋणानुबन्ध है। जिस प्रकार ये सात खाता पद्धति है, उसी प्रकार विश्व मे सप्त खण्ड हैं, जो भू भुव, स्व, मह, जन, तप और सत्य लोक कहलाते हैं। मनुष्य अपने अपने कर्मो के अनुसार इन लोको मे पहुचता है। यमराज का मुनीम चित्रगुप्त सबके खाते अपने पास रखता है, इसलिये हमारा व्यापार ईमानदारी और सत्यता पर आधारित रहा है। ईमानदारी ही सर्वश्रेष्ठ नीति है। विदेशी विद्वान इमर्सन का कथन है कि 'यथार्थता और ईमानदारी दोनो सगी बहिनें हैं।' पोप का मत है कि ईमानदार मनुष्य ईश्वर की सर्वोत्तम कृति है।' वस्तुत ईमानदारी मोती के सदृश निर्मल है जो मानव को सुशोभित करती है तथा बेईमानी व्यापारी को कलकित करती है। हम दैनिक जीवन मे यह देखते भी हैं कि जो व्यापारी ईमानदारी से व्यापार करता है, चीजो के भाव ठीक रखता है और उसकी दुकान पर चाहे बच्चा जाय या बूढा, सभी को समान कीमत पर सामान देता है इससे उसकी बिक्री अधिक होती है और जो व्यापारी चीजो के भाव ठीक नही रखता अथवा बाजार भाव से भी चीजें महगी बेचता है उसका विश्वास ग्राहको के हृदय मे उठ जाता है और उस व्यापारी का व्यापार बन्द हो जाता है। एक कहावत है कि 'ग्राहक भगवान है।" वस्तुत यह सत्य है। ग्राहको को भगवान मानकर उसके हित की इच्छा के साथ ईमानदारी से व्यापार करने के कारण तुलाधार इतना ऊचा महात्मा बन गया कि अच्छे अच्छे योगी उससे सत्सग करने आते थे और अपने शिष्यो को उस व्यापारी से ज्ञान प्राप्त करने के लिए भेजते थे। ईमानदारी से व्यापार करना ही तुलाधार के मोक्ष का कारण बन गया। ईमानदारी के साथ व्यापार करने, ग्राहक के प्रति आदर-सहानुभूति एव श्रद्धा रखने को ही हमारे शास्त्रो मे भक्ति मिश्रित कर्मयोग-साधन कहा है।

हमारे विचार, व्यवहार और व्यापार मे ईमानदारी होना व्यक्तिगत गुण होने के साथ ही राष्ट्रीय गुण भी है। श्री टी ब्राउन का कथन कि 'सत्य व्यापार व्यापारी को समृद्धिशाली बनाता है। बेईमानी लालसा उत्पन्न करती है जो विपमता का सचय करती चलती है। इससे पूर्व कि 'धन आपको लोभी बनाये आप दानी बन जाइये।' श्री टी ब्राउन का यह मत अत्यधिक सुन्दर है, क्योंकि हमारे देश मे व्यापारी को सेठ कहते हैं जो 'श्रेष्ठ' शब्द का अपभ्र श है, जिसका अर्थ महाजन अर्थात उत्तम पुरुष है। महाजन लोग जैसा

आचरण करते हैं, समाज भी उन्ही के पद चिह्नों पर चलता है अत यह आवश्यक है कि महाजनो के द्वारा व्यापार मे ईमानदारी रखना देश एव समाज के उत्थान हेतु परमावश्यक है। प्रकृति के प्रतिकूल चलने वाले को 'पशु' कहते है। देश मे सकट कालीन प्रकृति प्रतिकूल यदि महाजन व्यापारी चलगे तो क्या वे पुरुष कहलाने के अधिकारी है? क्योकि देश, काल एव समाज की प्रकृति के अनुकूल चलने वाला ही सही अर्थों मे मनुष्य कहलाता है। उचित टैक्स न देना, नगरपालिका की चौकियो की चुगी न देना, कीमतें बढाना, भाव छिपाना, मिलावट करना—ये सब काम महाप्रकृति के प्रतिकूल ही तो हैं, जिनसे सर्व शक्तिशाली भगवान असन्तुष्ट होते हैं। रेल मे बिना टिकट चलना भी हमारी व्यापारिक बेईमानी है। राजकीय कार्यालयो का काम भी राजकीय व्यापार है। बाबू को इसलिए डीलिंग असिस्टेन्ट(Dealing Asistant) कहा जाता है। यदि बाबू राजकीय कार्यालय के समय मे काम ठीक नही करता अथवा गप्पे लडाता है तो यह भी राजकीय व्यापार मे ईमानदारी नही करता। जबकि हमारी सस्कृति है "योग कर्मसु कौशलम्।" योगी वही है जो अपने कर्म का कुशलता से पालन करता है। समाज व व्यक्ति का कल्याण सत्याश्रित है। ईमानदारी से व्यापार एव काम करने से आत्म-अनुशासन आत्म नियन्त्रण तथा आत्म विश्वास की जागृति होती है। सत्य पालन से चित्त की वृत्तियो का, कलुषित भावनाओं का और असद्विचारो का निरोध होता है। यही कारण है कि हमारे देश का महामन्त्र है "सत्यमेव जयते" राजस्थानी मे भी एक दोहा मिलता है—

सत मत छोडो सूरमा सत छोड्या पत जाय।
सत की बाधी लक्ष्मी फेर मिलेगी आय॥

सत्य का त्याग करने पर लक्ष्मी नही आती और व्यक्ति का विश्वास समाज से उठ जाता है। सत्य रहता है तो लक्ष्मी रहती है। एक उदाहरण है इसका। एक राजा ने यह घोषणा की कि मेरे राज मे एक हाट लगाई जाय और उसमे यदि किसी व्यापारी का माल नही बिकेगा तो शाम को मैं उसे खरीद लू गा।' एक दिन एक व्यापारी एक शनिश्चर की मूर्ति बना लाया। उसे किसी ने नही खरीदा तो शाम को राजा ने खरीद लिया। मन्त्रियो ने मना किया कि इसे आप न खरीदे, क्योकि शनैश्चर जहा रहता है, वहा सब नष्ट हो जाता है। पर राजा नही माना। वह भोजन करके सो गया। रात को लक्ष्मी आई और राजा से बोली—'राजन् तेरे यहा शनिश्चर आ गया है

इसलिए मैं जा रही हूं।" राजा ने कहा कि "आप जा सकती हैं।" फिर धर्म आया और बोला कि मैं भी जा रहा हूं।" राजा ने उससे भी जाने की आज्ञा देदी। अंत मे सत्य आया और राजा से बोला—'तेरे यहा शनि आ गया है, इसलिए मैं यहा नही रह सकता, मैं भी जा रहा हूं।' तब राजा ने उठकर सत्य के पाव पकड लिये और कहा कि "मैंने वचनो की सत्यता को ही निभाने के लिये ही तो शनि को खरीदा, नही तो मेरी सत्यता चली जाती। अब आप ही चले जायेंगे तो मेरा कौन है?" सत्य ने जब सोचा कि 'राजा सचमुच सत्य पर है' तो वह नही गया। जब सत्य नही गया तो लक्ष्मी और धर्म को वापिस आना पडा। अत स्वयं सिद्ध है कि सत्यता मे ही लक्ष्मी निवास करती है।

ससार की कोई वस्तु हमारे साथ नही चलेगी। सुख धनसग्रह मे नही है, वह तो मानव के अन्दर जो सत्य निहित है, उसके साथ सग करने मे है। यही 'सत्सग' कहलाता है। हमारे सत्कर्म ही हमे मुक्ति प्रदान करते है—तो फिर हम सत्य का त्याग किसके लिये करें? जबकि—

माता पिता सुत भ्रात भार्या साथ कोई न जायगा।
उस पावकु कीनरक मे कोई न हाथ बटायगा ॥

इसलिये हमारे जीवन की सफलता सत्य की रक्षा तथा प्राप्ति मे ही है। प्रजातन्त्र म देश की रक्षा का दायित्व प्रत्येक नागरिक पर होता है। विशेषत व्यापारी पर, क्योंकि सत्यतापूर्वक व्यापार से उपार्जित धन ही राष्ट्र की शक्ति है। धन का दुरुपयोग करना जरूरत से ज्यादा खर्च करना कठिनाइया पैदा करता है। सत्यता तथा ईमानदारी से व्यापार करो और उपार्जित धन को समाजकल्याण के उत्तम से उत्तम कार्य मे उदारतापूर्वक व्यय करो। इसी मे वैश्य धर्म की सार्थकता है।

एकता

एक युग था जब हमारा शासन नील और नाइजर नदी तक था। इसका मुख्य कारण हमारी आर्य मस्कृति थी, जिसने हमे एकता के सूत्र मे बाध रखा था। यदि हम भारतीय एकता पर गहन दृष्टि डालें तो विदित होगा कि भारत मे भाषा की विविधता, जाति की विविधता और भौगोलिक विविधता भारत की विशालता के कारण है और इतनी विविधताएं होते हुए भी यह हमारी एकता के विरोध रूप मे न हो कर एकता के एक सूत्र के रूप मे रही है। हमारे वेदो, पुराणो भूगोल एव इतिहास मे एक सुदृढ मौलिक एकता दृष्टि गोचर होती है जिसे हम सास्कृतिक एकता अथवा सस्कृति कहते हैं। जिसमे विशिष्ठ सम्प्रदाय नही लेकिन सम्प्रदायो और अनेक जातियो के आचार विचार एव अध्यात्मिक साधनो का समन्वय है। भारत और भारतीय सस्कृति का इन अनेक विविधताओ के होते हुए भी वही सम्बन्ध है शरीर व आत्मा का सम्बन्ध है और यही कारण है कि भारत मे एकता समानरूप से थी। इस एकता का मुख्य कारण धर्म था। मानव के अन्दर जो निहित सत्य है वही धर्म है। मानव मानव बना रहे है मनुष्यता लिये हुए वही धर्म है। इस आर्य सस्कृति को मताचार्यो ने नष्ट किया है। फिरका बाजी को मत कहते है। यह मत मतान्तर मति भ्रम के हेतु है। मत कल्याण कारक नही होता वह एकता का सूत्र नही बन पाता खोपडी खोपडी की मति न्यारी होती है जो एकता के लिए हानिकारक है। शरीर के विभिन्न विभिन्न अवयवो के विभिन्न विभिन्न धर्म है जैसे आख का धम देखना है कान का सुनना आदि परन्तु शरीर की एकता के लिए वह हानिकर नही बल्कि शरीर के पूरक है अत स्पष्ट है कि ये मत व सम्प्रदायवाद के आचार्यगण जो स्वय दिशाभ्रमित ता थे ही साथ ही समाज व राष्ट्र को भी भ्रमित कर दिया और आज भी कर रहे है। अन्यथा धर्म तो एक ही है जो मानव धर्म है। इस प्रकार इन मतो ने देश की एकता को नष्ट करना प्रारम्भ किया और महाभारत काल मे जो शकुनि ने फूट के बीज बोये वे आज हमे किस दिशा मे पहुचा चुके है और यदि अब भी मानव जाति नही सम्भली तो पता नही कहा पहुचा दगे। अत देश की अखण्डता के लिए राष्ट्रीय जीवन मे एकता सर्वोपरी है क्योकि ऋगवेद हमे आदि से यही शिक्षा देता रहा है कि तुम्हारे अभिप्रायो मे हृदयो मे और मनो मे एकता की भावना रहे जिससे हमारी सघ शक्ति और सासदायिक शक्ति का विकास हो।

तुम सब मिलकर रहो। तुम अपने धर्म मे निरत रहो। सब एक बात बोलो। अपने मन मे उन बातो की एक ही व्याख्या करो। एक चित्त होकर जीवन यापन करो। परन्तु हमने इन वेद सूत्रो की जबसे अवहेलना शुरू की तब मे विदेशियो ने हमारे देश पर आक्रमण शुरू किया और हमने सदियो दासता की बेडिया पहनी। ईश्वर ने एक महात्मा भेजा जिसने फर एकता के सूत्र मे सब को बाध कर जाति पाति के भेदभाव मिटाकर अहिंसा के अस्त्र से देश को स्वतन्त्र कराया और हमने हमारी एकता की शक्ति पर आजादी प्राप्त की। उस महात्मा गाधी ने हमे गीता का उपदेश दिया कि जिस अभेदात्मक ज्ञान से यह मालूम हो जाय कि हम सब एक है उसी को सात्विक ज्ञान कहते हैं। प्रकृति और पुरुष से परे इस जगत का पारब्रह्म रूपी एक मूल तत्व है। "मदिर मे पूजा कर मस्जिद मे माथा टेकें गिरजा मे बाइबिल पढे पार ब्रह्म है एक ॥"

परन्तु आजादी के बाद फिर हम एकता के पाठ को भूल रहे है। इसलिए ही स्वर्गीय पडित नेहरु जी ने हमे सन् 1962 मे चेतावनी देते हुए कहा था कि "जो देश आगे बढते हैं वे अपनी एकता के जोर पर आगे बढते है। अगर एकता न हो तो खाली किसी एक की ताकत कुछ नही रहती"। स्वराज्य हमे मिला तो इसलिए कि हमारे इतने महान देश के लोग मिल कर आगे बढे परन्तु महापुरुष नेहरु की इस वाणी की अवहेलना कर राज्येप्णा के इच्छुक लोग देश के नवयुवको को भ्रमित कर रहे है। नवयुवको मे छात्रो म जवानी का जोश है पर होश नही है कि हम क्या कर रहे हैं। फलस्वरुप अनेक दल अनेक मत हो, बन रहे हैं, वे आज योगी अरविन्द के शब्द भी भूल गय है कि 'जिसमे फूट हो गई है और पक्ष भेद हो गये है ऐसा समाज किस काम का ? आत्म प्रतिष्ठा और और आत्मा की एकता की मूर्ति का समाज चाहिए। अलग रहकर जितना काम होता है उसमे सौगुणा सघ शक्ति से होता है। अलेक्जेंडरडयूमा ने भी विश्व के लोगो को यही शिक्षा दी है कि सब एक के और एक सब के लिए होता है अत हमें सगठित होकर प्राण देने को प्रस्तुत होना चाहिए अन्यथा अलग अलग तो प्राण दे ही बैठेगे परन्तु हम वस्तुत आज भूल बैठे है कि भाईचारे की भावना से एक होकर एक सूत्र मे बधकर एक साथ रहने मे जो आनन्द है वह स्वर्ग तुल्य है। विदेशी विद्वान केन्टकी का भी कथन है कि सगठित होकर हम रह सकते हैं विभाजित होते ही हम गिर पडेगे राजस्थान मे एक लोक कहावत है कि "खेत मे बोवे सब कोई खाय घर मे बोवे घर खा जाय" अर्थात फूटवडी खेत मे बोई जाय तो सब कोई खाता है परन्तु यदि घर मे फूट हो जाय तो घर नष्ट हो जाता है और जिस घर मे

फूट होगी वह घर तबाह होगा। आज कितने आश्चर्य की बात है कि भारत कृष्ण उपासना के 78 सम्प्रदाय है। सम्प्रदाय का अर्थ होता है कि सबको समान दृष्टि प्रदान करने वाला। परन्तु आज कृष्ण का उपासक ही कृष्ण के उपासक से एकता नही रखता। यह हमारा अज्ञान नही तो फिर क्या है ? विदेशो मे धर्म राष्ट्र मे अडगा नही डालता परन्तु आज हम धर्म के नाम पर देश की आजादी व अखण्डता मे अडगा उत्पन्न कर रहे है। इस ससार मे दो वृत्ति के लोग होते है एक तो शुनु वृत्ति अर्थात श्वान की आदत वाले जो कुत्तो की तरह आपस मे ही लडते है, कभी एकता से नही रहते, कभी एकता से विकास की और अग्रसर नही होते। वे ही दरिद्री रहते है तथा नाश को प्राप्त होते है। दूसरे अज वृत्ति वाले अर्थात बकरी की आदत वाले जो सर्वदा एकता से रहते हैं एकता से बाटकर खाते है एकता से आगे बढते है। वे ही ससार मे अधिक जीवित रहते है। वस्तुत वर्ष भर मे अनगिनत बकरे कटते हैं जिन्हे जानवर खाते हैं मनुष्य खाते है अपितु देवता तक खाते है फिर भी उनकी सख्या मे कमी नही आती है क्योकि यह उनकी एकता के साथ रहने का कारण है और कुतिया बारह बारह बच्चे वर्ष मे दो बार देती है परन्तु श्वान ही श्वान को खा जाता है। यही कारण है कि वे नष्ट होते है। इसी दृष्टिकोण से स्वर्गीय लाल बहादुर शास्त्री ने हमे निर्देश दिया है कि राष्ट्रीय एकता, लोकतन्त्र धर्म निरपेक्षता साम्प्रदायक सद्भाव अनुशासन देश के लिए त्याग और बलिदान की भावना हमारी परम्परा रही है। दुनिया मे हमारी कद्र तभी हो सकती है जब हम मजबूत हो तथा आपसी झगडे व भेद भाव भुलाकर सगठित हो जाय। आज प्रत्येक भारतीय पर आजादी का उत्तरदायित्व है इसे एकता से निभाना आवश्यक है। गरीबी को परास्त करने के लिए एकता आवश्यक है हम ऐसी विचार धाराए बनायें जो हमे आगे बढाए हम विचार शक्ति फैला दे कि हम एक हैं। यदि हम एकता युक्त रहना अपना कर्त्तव्य समझ बैठे तो कितना सुन्दर हो क्योकि —

निगाहे जिनकी जम जाती है मुस्तिक बिल के चेहरे पर।
उन्हे माजी की बेरहमी का दोहराना नही आता।।

अर्थात जो भविष्य निर्माण करना चाहते हैं वे बेवकूब भूतकाल की बातो को याद नही करते इसलिए —

फोड कर पत्थर उगें आकाश छूले कोपलें।
आज धरती पर हमें वहफिर फिर बीज बोना चाहिए।।

राष्ट्रीय एकता ही राष्ट्र की समृद्धि मे सहायक हो सकती है। एकता से ही शान्ति सम्भव है क्योंकि एकता महाशक्तिशालिनी माँ का नाम है। भगवती पुराण मे स्पष्ट है "एकैव सर्वत्र वर्तते तस्मादुच्यते एका" अर्थात विश्व मे सर्वत्र एकता के रूप मे व्याप्त है वही भगवती जगदम्बा है। अत भारतीय एकता हमारे राष्ट्रीय चरित्र का पुन एक स्थाई अग बनाना ही हमारा परम कर्तव्य है। आओ प्रतिज्ञा करें कि "मैं निष्ठापूर्वक शपथ लेता हू कि मैं देश की आजादी और राष्ट्र की एकता की रक्षा करने और मजबूत बनाने के कार्य मे तन-मन से योग दू गा"

"मैं यह भी प्रतिज्ञा करता हू कि मैं कभी हिंसा का प्रयोग नही करू गा और मेरा विश्वास है कि धर्म, भाषा, प्रान्त सम्बन्धी तथा अन्य सभी राजनीतिक और आर्थिक विवादो को शान्तिपूर्वक और सवैधानिक उपायो द्वारा हल किया जाना चाहिए।"

गोपनीयता

हर क्षेत्र मे सफल होने के लिए गोपनीयता रखना परमावश्यक है। जो अपना भेद खोल देता है वह आदमी दो कौडी का होता है। राजस्थान के एक कवि ने लिखा है कि —

नागा नवलो नेह, जग्ग जग्ग सू कीजे नही।
आगलडा को छेह लीजे, पग्ग दीजे नही॥

अर्थात अपना भेद किसी को नही देना चाहिये अपितु अन्य का भेद भले ही ले लेना चाहिये। जो व्यक्ति गोपनीयता का ध्यान रखता है वह अपनी प्रगति अपने हाथ मे रखता है। विश्व के सभी शास्त्र एव विद्वाना ने गोपनीयता की महत्ता को स्वीकार किया है। विदेशी विद्वान सोनेका का कथन है कि यदि तुम इच्छा रखते हो कि दूसरे तुम्हारे रहस्य को गोपनीय रख तो प्रथम तुम स्वय ही इसे गापनीय रखिये चाहे आप व्यथित ही हो तो भी अपनी व्यथा को गापनीय ही रख और इसीलिये हमारे भारतीय महाकवि रहीम ने कहा है —

रहिमन निज मन की व्यथा मन ही राखो गोय।
सुन इठलहिहैं लोग सब बाट न लहिहै कोय॥

वस्तुत जो व्यक्ति अपने मुख और वाणी पर सयम रखकर गोपनीयता की रक्षा करता है वह स्वय को अनेक सतापो से बचाता है। विदेशी विद्वान ड्राइवेन का मत है कि जो व्यक्ति अपना रहस्य अपने सेवक को बताता है वह सेवक को अपना स्वामी बना लेता है। वस्तुत श्रेष्ठ व्यक्ति वही होता है जो सुनता सबकी है और करता मन की है। सबकी सुनकर भीतर रखने वाला ही सच्चे अर्थो मे मनुष्य है। एक बार राजा भोज के पिता विक्रम के दरबार मे एक व्यक्ति तीन मूर्तिया परीक्षा करवाने लाया और कहा राजन् इन तीनो मे श्रेष्ठ मूर्ति कौनसी है, बता दीजिये। राजा विक्रम ने उनका परिक्षण करवाया पर कोई नही बता सका। अन्त मे भोज जो उस समय बालक था ने उन तीनो मूर्तियो को लिया और हाथ मे एक तिनका लिया और एक मूर्ति के कान मे डाला तो वह उसके मुँह मे से निकल गया। तब भोज ने कहा कि

यह मूर्ति निकृष्ट है—क्योंकि वह अपना भेद खोल देती है। फिर दूसरी मूर्ति को उठाया और उसके कान में भी तिनका डाला तो वह मूर्ति के दूसरे कान से निकल गया तब भोज ने कहा कि मूर्ति मध्यम है जो सुनी अनसुनी कर देती है। फिर उसने तीसरी मूर्ति को उठाया और उसके भी कान में तिनका डाला तो वह उसके पेट में चला गया भोज ने कहा यह मूर्ति सर्वश्रेष्ठ है। बात सुनकर गोपनीय रख सकती है अतः यह स्वतः प्रमाणित है कि गोपनीयता रखना मानव का सर्वश्रेष्ठ गुण है। ईसाइयों का धर्मशास्त्र बाइबिल भी हमें सिखाता है कि अपने शब्दों को अल्पतम रखो क्योंकि जो जिव्हा पर नियन्त्रण रखता है वह जीवनभर सुखी रहता है किन्तु जिसका जिव्हा पर वश नहीं वह नाश को प्राप्त होता है तो भारतीय दर्शन जीवन में अनेक बातें गोपनीय रखने की शिक्षा देता है कि —

आयुर्वित्तं गृहं छिद्रं मन्त्र मैथुन भेषजम्।
दान मानापमानं च नव गोप्यानि यत्नतः ॥

अर्थात अपनी आयु, अपना धन, अपने घर का रहस्य, गुरु का दिया हुआ मन्त्र स्त्री सहवास, अपनी औषधि, दान, अपना मान और अपमान इन नौ बातों को गोपनीय रखना चाहिए क्योंकि इनके प्रकट कर देने से मानव जीवन कष्टमय हो जाता है तथा रहस्य खोल देने से जप तप आयु व दिया हुआ दान नष्ट हो जाता है। महर्षि मनु ने भी मनु स्मृति में लिखा है कि बिना पूछे किसी से कोई बात न कहे, छल से पूछे तो भी न कहे, बुद्धिमान पुरुष प्रत्येक विषय में जानकार होने पर भी संसार में जडवत रहे। राजनीति के महान गुरु आचार्य चाणक्य का भी कथन है कि —

मनसा चिन्तितं कार्यं वाचा नैव प्रकाशयेत।
मन्त्रेण रक्षयेद्गूढं कार्यं चापि नियोजयेत्॥

अर्थात मन से सोचे हुए कार्य को कभी वाणी से प्रकाशित न करे। मन्त्रणा से गुप्त बात की रक्षा करे क्योंकि मन्त्र जानेति इति मंत्री अर्थात गोपनीयता रखने वाले को मन्त्री कहते हैं। हितोपदेश में एक श्लोक मन्त्रियों में गोपनीयता पर है —

स्मृतिस्तत्परतार्थेषु वितर्को ज्ञान निश्चय।
दृढता मन्त्रगुप्तिश्च मन्त्रिणः परमो गुणः॥

प्रकट करने वाला भ्रष्ट हो जाता है तो रहीम जी ने कहा है कि—

रहिमन बात अगम्म कहन सुनत की नाहिं ।
जानत सो कहत नही कहत सो जानत नाहिं ।।

तो महाकवि तुलसीदास जी ने भी रामायण मे गोपनीय रखने का निर्देश देते हुये कहा है कि—

योग युक्ति तप मन्त्र प्रभाउ ।
फलै तबेहि जब किये दुराउ ।।

अर्थात योग, युक्ति, तप और मन्त्र गोपनीय रखने से ही फल देते हैं । जो मंत्र जपते समय मु ह से बाहर निकल जाता है तो उसका फल नष्ट हो जाता है इसलिये मानसिक जप सर्वश्रेष्ठ बताया गया है । इसका एक उदाहरण देखिये

एक सूफी पीर गुरु ने अपने चेले को एक माला देते हुये कहा कि बेटा मन मे यह जप जपाकर 'मैं आशिक" यही तेरा मन्त्र है पर यह ध्यान रखना कि तेरे मु ह से बाहर यह शब्द नही निकले कि "मैं आशिक" । चेला अब जपने लगा "मैं आशिक और मैं आशिक" । वह माला के मणिये फेरते समय एक सौ सात बार तो मन मे जपता "मैं आशिक 'और" मैं आशिक परन्तु माला का सुमेर अर्थात एक सौ आठवा मणिया जब आता तो उसके मु ह से मन्त्र निकल जाता 'मैं आशिक" । एक दिन इधर तो सुमेरु का आना हुआ और उधर से एक कसाई की लडकी गुजरी और चेले के मु ह से निकला मैं आशिक" । उस लडकी ने अपने पिता से जाकर कहा कि एक लडका मुझे देखकर कहता है "मैं आशिक" । कसाई अपनी लडकी को साथ लेकर अपनी लडकी के आशिक को देखने आया । इधर तो कसाई का आना हुआ और उधर उसकी माला का सुमेरु आया और वह बोल पडा "मैं आशिक" । कसाई ने सोचा कि मेरी लडकी सच कहती है इसलिय उसने आव देखा न ताव और उस चेले को कत्ल कर दिया और उसका कलेजा निकाल कर अपनी औरत को दिया और कहा इसको जल्दी पकाओ । यह मेरी लडकी का आशिक बनता था । मैं इसका कलेजा खाऊ गा तभी मेरे कलेजे को चैन पडेगा । उसने उस चेले का मास बादशाह, वजीर और थानदार के घर भी जाकर दे दिया । सब जगह हाडियों मे मास जब पकाने चढाया गया तो सबकी हाडिया बोलने लगी

"मैं आशिक" और मैं आशिक यह देख कर बादशाह ने उस कसाई को बुलाया और पूछा कि यह क्या माजरा है। उसने सारी बात कह सुनाई तब बादशाह समझ गया कि यह सूफी पीर का चेला था। उसने कसाई को फौरन उस पीर के पास भेजा। बात सुनते ही पीर समझ गया कि चेले ने जप को गोपनीय नहीं रखा इसलिये उसे जान से हाथ धोने पड़े हैं। उसने कसाई से कहा कि उसका सारा मांस और हड्डियां धोकर रख दे मैं अभी आता हूं। कसाई ने वैसा ही किया। वह पीर समर्थ गुरु थे इसलिए अपनी योग शक्ति से चेले को वापिस जीवित कर दिया।

मन की गोपनियता के प्रमाण में एक भारतीय कथा भी है कि एक राजा भगवान का भजन नहीं करता था परन्तु रानी बहुत भजन पूजन करती थी। रोज देवालय में जाती थी। वह राजा से कहा करती थी कि आप भी मेरे साथ उपासना किया करें क्योंकि पति पत्नी दोनों मिलकर यदि उपासना करते हैं तो अध्यात्म क्षेत्र में शीघ्र प्रगति होती है। परन्तु राजा रानी की बात को सुनी अनसुनी कर देता था। रानी ने अनेक प्रयत्न किये राजा को अपने साथ उपासना कराने के और अंत में निराशा हो गई। एक दिन सोते समय राजा के मुंह से एकाएक निकल गया ॐ नमः शिवाय। रानी ने इसे सुन लिया और फूली न समाई तथा खूब खुशियां मनाई। राजा जब उठा तो उसने खुशी मनाने का कारण रानी से पूछा तो रानी ने उत्तर दिया कि आपके मुंह से शिव का जप पहली बार मैंने सुना इसलिए खुशी मनाई जा रही है। 'ओह तो जिस मन की मैं इतनी गोपनीयता रखे हुये था वह मेरे मुंह से निकल गया। मेरी गोपनीयता नष्ट हो गई। जब शिव मेरे मुंह से निकल गया तो मैं तो अब शव हो गया हूं। यह कहकर राजा शिव के मन्दिर में गया और शिवलिंग पर अपना सिर रखा तथा प्राण त्याग दिये।

अतः यह स्वतः प्रमाणित है कि उपासना में गोपनियता परमावश्यक है इसी प्रकार व्यवहारिक जीवन में गोपनीयता रखने का निर्देश हमें एक लोक कहावत में मिलता है कि बात जब तक चार के बीच रहती है तब तक बात रहती है चार से छः के बीच बात प्रवेश करने पर बात का बतंगड़ बन जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि गोपनीयता चार कानों अर्थात् दो व्यक्तियों के बीच तो सुरक्षित रह सकती है परन्तु छः कानों अर्थात् तीसरे व्यक्ति तक बात पहुंचने में फिर वह फैल जाती है और उस बात का रूप ही बदलकर वह अफवाह का रूप धारण कर लेती है। इसीलिए चाणक्य का कथन है कि "षट् कर्णो भिद्यते मंत्रः" अर्थात् छः कानों में गोपनीयता नष्ट हो जाती है।

प्रकट करने वाला भ्रष्ट हो जाता है तो रहीम जी ने कहा है कि—

रहिमन बात अगम्म कहन सुनत की नाहिं।
जानत सो कहत नहीं कहत सो जानत नाहिं।।

तो महाकवि तुलसीदास जी ने भी रामायण मे गोपनीय रखने का निर्देश देते हुये कहा है कि—

योग युक्ति तप मन्त्र प्रभाउ।
फलै तबैहिं जब किये दुराउ।।

अर्थात योग, युक्ति, तप और मन्त्र गोपनीय रखने से ही फल देते है। जो मन्त्र जपते समय मुंह से बाहर निकल जाता है तो उसका फल नष्ट हो जाता है इसलिये मानसिक जप सर्वश्रेष्ठ बताया गया है। इसका एक उदाहरण देखिये

एक सूफी पीर गुरु ने अपने चेले को एक माला देते हुये कहा कि बेटा मन मे यह जप जपाकर मैं आशिक" यही तेरा मन्त्र है पर यह ध्यान रखना कि तेरे मुंह से बाहर यह शब्द नही निकले कि "मैं आशिक"। चेला अब जपने लगा "मैं आशिक और मैं आशिक"। वह माला के मणिये फेरते समय एक सौ सात बार तो मन मे जपता "मैं आशिक 'और" मैं आशिक परन्तु माला का सुमेर अर्थात एक सौ आठवा मणिया जब आता तो उसके मुंह से मन्त्र निकल जाता "मैं आशिक"। एक दिन इधर तो सुमेरू का आना हुआ और उधर से एक कसाई की लडकी गुजरी और चेले के मुंह से निकला "मै आशिक"। उस लडकी ने अपने पिता से जाकर कहा कि एक लडका मुझ देखकर कहता है "मै आशिक"। कसाई अपनी लडकी को साथ लेकर अपनी लडकी के आशिक को देखने आया। इधर तो कसाई का आना हुआ और उधर उसकी माला का सुमेरू आया और वह बोल पडा "मैं आशिक"। कसाई ने सोचा कि मेरी लडकी सच कहती है इसलिये उसने आव देखा न ताव और उस चेले को कत्ल कर दिया और उसका कलेजा निकाल कर अपनी औरत को दिया और कहा इसको जल्दी पकाओ। यह मेरी लडकी का आशिक बनता था। मैं इसका कलेजा खाऊंगा तभी मेरे कलेजे को चैन पडेगा। उसने उस चेले का मास बादशाह, वजीर और थानेदार के घर भी जाकर दे दिया। सब जगह हाडियों मे मास जब पकाने चढाया गया तो सबकी हाडिया बोलने लगी

'मैं आशिक' और मैं आशिक यह देख कर बादशाह ने उस कसाई को बुलाया और पूछा कि यह क्या माजरा है। उसने सारी बात कह सुनाई तब बादशाह समझ तथा कि यह सूफी पीर का चेला था। उसने कसाई को फौरन उस पीर के पास भेजा। बात सुनते ही पीर समझ गया कि चेले ने जप को गोपनीय नही रखा इसलिये उसे जान से हाथ धोने पडे है। उसने कसाई से कहा कि उसका सारा मास और हड्डिया धोकर रख दे मैं अभी आता हू। कसाई ने वैसा ही किया। वह पीर समर्थ गुरू थे इसलिए अपनी योग शक्ति से चेले को वापिस जीवित कर दिया।

मन की गोपनियता के प्रमाण मे एक भारतीय कथा भी है कि एक राजा भगवान का भजन नही करता था परन्तु रानी बहुत भजन पूजन करती थी। रोज देवालय मे जाती थी। वह राजा से कहा करती थी कि आप भी मेरे साथ उपासना किया कर क्योकि पति पत्नी दोनो मिलकर यदि उपासना करते हैं तो अध्यात्म क्षेत्र मे शीघ्र प्रगति होती है। परन्तु राजा रानी की बात को सुनी अनसुनी कर देता था। रानी ने अनेक प्रयत्न किये राजा को अपने साथ उपासना कराने के और अत मे निराशा हो गई। एक दिन सोते समय राजा के मुह से एकाएक निकल गया ॐ नम शिवाय। रानी ने इसे सुन लिया और फूली न समाई तथा खूब खुशिया मनाई। राजा जब उठा तो उसने खुशी मनाने का कारण रानी से पूछा तो रानी ने उत्तर दिया कि आपके मुह मे शिव का जप पहली बार मैंने सुना इसलिए खुशी मनाई जा रही है। 'ओह तो जिस मत्र की मैं इतनी गोपनीयता रखे हुये था वह मेरे मुह से निकल गया। मेरी गोपनीयता नष्ट हो गई। जब शिव मेरे मुह से निकल गया तो मैं तो अब शव हो गया हू। यह कहकर राजा शिव के मन्दिर मे गया और शिवलिंग पर अपना सिर रखा तथा प्राण त्याग दिये।

अत यह स्वत प्रमाणित है कि उपासना मे गोपनियता परमावश्यक है इसी प्रकार व्यवहारिक जीवन मे गोपनीयता रखने का निर्देश हमे एक लोक कहावत मे मिलता है कि बात जब तक चार के बीच रहती है तब तक बात रहती है चार से छ के बीच बात प्रवेश करने पर बात का बतगड बन जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि गोपनीयता चार कानो अर्थात् दो व्यक्तियो के बीच तो सुरक्षित रह सकती है परन्तु छ कानो अर्थात् तीसरे व्यक्ति तक बात पहुचने मे फिर वह फैल जाती है और उस बात का रूप ही बदलकर वह अपवाह का रूप धारण कर लेती है। इसीलिए चाणक्य का कथन है कि "षट् कर्णो भिद्यते मत्र अर्थात् छ कानो मे गोपनीयता नष्ट हो जाती है।

राजकीय सेवा में भी गोपनीयता पर अनेक नियम है। गोपनीयता प्रकट करने वाले राजकीय कर्मचारी हेतु दंड की व्यवस्था भी है। गोपनीयता प्रकट करने वाले कर्मचारी को राज्य सेवा से पृथक भी किया जा सकता है। यह नियम महाराजा मनु के काल से है। इसका प्रमाण निम्न श्लोक में मिलता है

शत्रु सेविने मित्रे च गूढे युक्त तेरा भवेत।
गत्प्रत्यागते चैव सहि कष्ट तरो रिपु ॥

अर्थात अपना मित्र जो गुप्त रीति से शत्रु की सेवा करता है अर्थात् शत्रु को गोपनीयता प्रकट करता है अथवा जो कर्मचारी अपने यहा से निकल कर दूसरी बार आकर कार्य सम्पादन करते हो उससे होशियार रहना चाहिए क्योंकि वे महान कष्ट कारक शत्रु होते है तथा उनका उठाया हुआ उपद्रव कठिनता से शान्त होता है।

भारत मे सर्वप्रथम अर्थशास्त्र का महान् विद्वान आचार्य बृहस्पति हुआ है जिसने लिखा है कि यदि पति जीवन मे सुखी रहना चाहता है तो उसे चाहिए कि अपनी आय पूरी अपनी पत्नी को न बतावे तथा आय का पन्द्रह प्रतिशत गोपनीय रखे।

वस्तुत गोपनीयता भगवान का रूप है। गीता मे दसवे अध्याय के 38वें श्लोक मे भगवान कृष्ण ने स्पष्ट कहा है कि गोपनीयता मे अर्थात् गुप्त रखने योग्य भावों मे *"मैं मौन हू" तथा ज्ञानवानो का तत्वज्ञान मैं ही हू ।"* दर्शन शास्त्र मे मौन रखने वाले को मुनि कहा है तो एक राजस्थानी कवि ने कहा है :—

पापी को मुख वम्बई निकसत वचन भुजग।
ताकि औषधि मौन है विष व्यापत नही अ ग ।।

अर्थात् शत्रु व पापी का मुह सर्प की बंबी की तरह होता है। जिसमे से सर्प की तरह डसने वाले वचन निकलते है अत इसकी दवा मौन है क्योंकि मौन सर्वाधिक असह्य एव कटु व्यंगयोक्ति है। वस्तुत ज्यादा बातचीत से भेद खुल जाने का भय रहता है अधिक बोलने वाला गोपनीयता की रक्षा नही कर सकता मुंह से निकली हुई बात गुप्त नही रह सकती और इसलिये विदेशी विद्वान जा व्वायल का कथन है कि मौन रहो और अपनी सुरक्षा करो। मौन

तुम्हारे साथ कभी विश्वासघात नही करेगा। गृहस्थ जीवन मे सुख से रहने के लिये यह आवश्यक है कि पति बहरा बन जाय अर्थात पत्नी यदि कभी बकती झकती हो तो वह मौन रहे और कोई प्रतिक्रिया पत्नी की बात की न करे इससे कलह नही होती तथा शक्ति भी बढती है इसलिए पिथागोरस ने जीवन को सुखी बनाने के लिये शिक्षा दी है कि खामोश रहो या ऐसी बात कहो जो खामोशी से बहत्तर है। सचमुच मे यदि हम गहन विचार कर तो हमारी अन्तरात्मा सर्वदा हमें यही कहती है कि मौन और एकान्त मेरे आत्मा के सर्वश्रेष्ठ मित्र हैं।

अनेक व्यक्ति ऐसे होते हैं जो अपने काम के विषय म अपनी शेखी बघारते हैं अपने अह की तुष्टि हेतु और यह भूल जाते है कि आत्म प्रशसा की कोई कीमत नही होती। अग्रेजी में भी कहावत है कि सैल्फ प्रेज नो रिकमन्डेशन अत गोपनीयता की रक्षा के लिये शेखी मत बघारिये क्योकि बात की कीमत तब तक ही है जब कि वह मु ह के अन्दर है। युद्धकाल मे इसका ध्यान रखने में अफवाहे नही फैलती तथा शत्रु की मदद अफवाहो से अधिक मिला करती है।

इन सब तथ्यो पर गम्भीरता से विचार करने से निष्कर्ष यह निकलता है कि खतरनाक है वह व्यक्ति जो गोपनीयता की रक्षा नही करता अत गोपनीयता का ध्यान रखिये क्योकि राष्ट्र ने भी आप को गोपनीयता की रक्षा की जिम्मेदारी दी है। कही ऐसा न हो कि घर का भेदी लका ढहादे अत प्रत्येक भारतीय का यह परम कर्त्तव्य है कि वह गोपनीयता की रक्षा हेतु सतर्क रहे क्योकि ससार मे तीन वस्तुए कठिन है, पहली रहस्य को अप्रकट रखना दूसरी कष्ट को भूल जाना और तीसरी अवकाश का सदुपयोग करना। साथ ही यह भी बात विशेष ध्यान में रखने की है कि जो व्यक्ति उत्तम पुरुषो में अपने आप को गुप्त रखता है अर्थात जैसा है वैसा नहीं बताता तो वह महा पापी है, और अपनी आत्मा का चोर है उदाहरणार्थ यदि कोई प्रकाड विद्वान है और विद्वानों की मडली मे बैठा और अपनी विद्वता प्रकट नही करता अथवा ज्ञान दान नही करता हो वह भी नपु सक ही है इसके विपरीत यदि कोई मूर्ख है और उत्तम पुरुषों में अपनी अज्ञानता स्वीकार नही करता तो वह महापापी ही तो है।

अश्लीलता

अभिव्यक्ति एक अद्भुत कला है, अभिव्यक्ति व्यक्ति के अस्तित्व की द्योतक है, जब तक अभिव्यक्ति है तब तक व्यक्ति भी है, अभिव्यक्ति अनेक प्रकार की होती है, मूर्तिकला की अभिव्यक्ति, चित्रकला की अभिव्यक्ति साहित्य एव भाषण आदि मे भाषा एव भाव की अभिव्यक्ति एव सामाजिक जीवन मे वाणी की अभिव्यक्ति, अश्लीलता मुक्त अभिव्यक्ति है या दोष ? प्रश्न पर गहनता से विचार करने पर ज्ञात होता है कि स्वय प्रश्न मे ही इस का उत्तर निहित है, कि जो अर्थात नही शीलयुक्त अभिव्यक्ति वह अभिव्यक्ति मुक्त नही कही जा सकती क्योकि अश्लील का अर्थ है कुत्सित, फूहड एव लज्जाजनक और इसीलिये भर्तृहरि ने कहा है कि जिनकी अभिव्यक्ति शील-गुण धर्मयुक्त नही वे मनुष्यरूप मे मृग चर विचरते है और विदेशी विद्वान बर्क का भी कथन है कि ससार को दु खमय बनाने वाली अधिकाश दुष्टताए शब्दा-चित्रा, साहित्य व मूर्तियो की अश्लील अभिव्यक्तियो से ही उत्पन्न हाती है ।

अत्यन्त सूक्ष्म द्रष्टिकोण से विचार करने पर तो यह स्पष्ट हो जाता है कि अश्लीलता कोई चीज नही है यदि—

"न हो दोष द्रष्टि मे कही तो
फिर न दोष सृष्टि मे कही"

क्योकि कलात्मक अभिव्यक्ति तो अश्लीलता पर ही आधारित है इसलिए ससार के महान सौन्दर्यपूर्ण चित्र नग्न है, अभिव्यक्ति की मुक्ति को बनाये रखने के लिए अश्लीलता को भी स्वीकार किया जाता है, जहा अभिव्यक्ति की मुक्त अवस्था का प्रश्न है वहा अश्लीलता जैसा कोई दोष नही है और इसलिए खुजराहो की मूर्तिकला, राजस्थान के पाली जिले मे जवाई बाध के पास रणकपुर के मन्दिर जिसमे काम कला के 84 आसनो की मूर्तिया है अश्लील नही कही जा सकती ।

बासवाडा राजस्थान जिले के आसन गाव मे एक अति प्राचीन मदिर है जहा पर्याप्त चित्र नग्न हैं। उन्हे हम अश्लीलता न कह कर मुक्त अभिव्यक्ति ही कहेगे। साहित्य मे वात्स्यायनकामसूत्र, फ्रायड, हैवलाक एलिस मन्मथनाथ गुप्त के यौन मनोविज्ञानो को अश्लील साहित्य न कह कर समाज शास्त्र ही मानना पडा है लेकिन जहा अश्लीलता को अभिव्यक्ति का अ ग बनाकर मुक्ति की आड ली जाती है वहा धोखा बेईमानी या कोई नीच स्वार्थ की पूर्ति पीछे छिपी होती है और ऐसी अभिव्यक्ति अश्लीलता युक्त होकर कभी भी मुक्त न होकर दोष ही कही जायगी। अर्थोपार्जन के लिए कला की अभिव्यक्ति मे अश्लीलता को स्थान दिया जाय तो वह महान दोष है अन्यथा अभिव्यक्ति की मुक्ति के लिए यदि अश्लीलता अपनानी हो तो कोई दोष नही।

देश काल व मन्तव्य ही अश्लीलता की उपस्थिति और अनुपस्थिति को निश्चित करते है। भारत मे चुम्बन अश्लीलता का द्योतक थे तो विदेशो मे इसे कलचर सस्कृनि माना जाता है। छेडछाड को अश्लीलता मानते है परन्तु वह अपनी साली के साथ हो तो वह अभिव्यक्ति अश्लील होकर भी दोषमुक्त है। पति पत्नी के रिश्ते से अश्लीलता की अभिव्यक्ति दोष नही। यही कारण है कि गोपियो ने कृष्ण के लिए तन, मन, धन सब अर्पण कर दिया क्योकि लज्जा, घृणा और भय प्रेम की बाधायें है। इसी को यदि दूसरे द्रष्टिकोण से देखा जाय तो वह कला अथवा प्रेम या अभिव्यक्ति किस काम की जो बरबादी करदे। सृष्टि का सम्बन्ध तो जीवन से है, भावो की दुनिया के अलावा विचारो की दुनिया भी होती है उसमे नैतिकता, आचार क्या है, यह विचार करते है क्योकि हमारे देश भारत मे "आचार प्रथमोधर्म" है अत एव इस द्रष्टिकोण से अश्लीलता की मुक्त अभिव्यक्ति दोष ही है क्योकि

बुजुर्गी अदब अल्लाह का डर शर्म आखो की।
इन्ही औसाफ की निसबत मजाहब मे इशारे है।।

कला को सौन्दर्य की अभिव्यक्ति करने दो लेकिन यह अभिव्यक्ति भी इतनी मुक्त नही होनी चाहिए कि वह वास्तविक सौन्दर्य को नष्ट करदे क्योकि मुक्त सौन्दर्य इतना प्रभावशाली नही हो सकता जितना वह अपनी सीमा मे बध कर, क्योकि प्रत्यक्ष द्रष्टिगोचर होने वाले सौन्दर्य से अधिक नशा पर्दे से छन कर आनेवाला सौन्दर्य देता है और इसीलिए तुलसी ने कहा है "वसन हीन

गाधी जी के ये तीन सिद्धात बुरा न बोल, बुरा न सुन, बुरा न देख मे महान रहस्य है। यह मृत्युञ्जय योग का सूचक है तथा सुसस्कार डालने का महामन्त्र है। क्योंकि जो कुछ भी हम बोलते हैं, सुनते हैं, देखते हैं वे सब चीजे हमारे चित्त पर एक बिन्दु के रूप मे जाकर बैठती हैं। फिर वह धीरे-धीरे शरीर मे व्याप्त होती है और वे ही हमारे सस्कार बन जाती हैं। शब्द की उत्पत्ति आकाश तत्व से होती है। अत- शास्त्रो मे कहा है ब्रह्म "शब्द न सश्यति"। शब्द मे महान शक्ति है। अत बापू के ये तीन सिद्धात दिखने मे बहुत सरल परन्तु विचार करने मे बहुत गम्भीर तथा व्यवहारिक जीवन हेतु मानव विकास की मुख्य जड तथा जीवन सफल बनाने का महामन्त्र है। इससे आदमी मृत्युञ्जय योग को प्राप्त होकर अमर हो जाता है। हमारे शास्त्र भी हमे यही उपदेश देते हैं कि वचन कि दालिद्रम। वचनो से हमे दरिद्रता प्रकट नही करनी चाहिये अर्थात् सुन्दर बोलना चाहिये। भद्र कर्णोमिश्रूयता"। कान से सुन्दर शब्द सुनो। "श्रूयता धर्म सर्वस्व"। श्रुत्वा चाप्यअमि धार्यताम्। सब धर्म सुनो और धर्म का मूल उसे धारण करो। ये बाते हमारे सस्कार सुधारने हेतु है। गाधी जी के ये तीन सिद्धात हमारे सस्कारो को तीन प्रकार से सुधारते है सुन्दर बोलना हमारा मलमार्जन करता है। सुन्दर सुनना हमारे सस्कारो की हीनाग पूर्ति करता है तथा सुन्दर देखना हमारे सस्कारो को अतिशयाधान देता है अर्थात् हमारे अन्दर विशेषता उत्पन्न करता है। इस क्रिया को इस प्रकार समझा जाये कि एक व्यक्ति खान से सोना निकाल कर लाया और उसे सुनार को दिया। सोना अभी गन्दा है, अत सुनार ने उसे गर्म किया तो यह

बुरा न बोल बुरा न सुन, बुरा न देख का पाठ नित्य पढाना, माता पिता को निज कर्त्तव्य समझना चाहिए।

महात्मा गाधी के इन तीन सिद्धातो को यदि हम विलोम करदे तो वे इस प्रकार हो जायेंगे। सुन्दर बोल सुन्दर सुन, सुन्दर देख। ये तीनो बाते ही हमारे मृत्युञ्जय योग की जड है। अमरता प्राप्त कराने वाली है क्योकि यह शरीर दुर्गन्धपूरित है। चमडे मे बदबू आती है, पसीने मे बदबू आती है। मृत्युञ्जय मत्र योग मे शब्द आता है। "सुगन्धिम् पुष्टिवर्धनम्" अर्थात हम सुगन्धित शात एव प्रशान्त अवस्था को प्राप्त होकर पुष्ट हो, बलवान हो क्यो कि शरीर मे हड्डी, मज्जा, मलमूत्र सब दुर्गन्धयुक्त है। गाधी जी के इन तीन सिद्धातो का अर्थ है ऊ जू स। यह मृत्युञ्जय मत्र है। इसका देवता शिव है। सृष्टि का क्रम भी तीन है सृष्टि स्थिति एव सहार। यह शिव का रूप है इसीलिए हम शकर को परम शिव कहते हैं। सब देवता नष्ट होते हैं पर शिव रहता है। ब्रह्मा व विष्णु भी प्रलय काल मे नष्ट हो जाते है। विष्णु वट वृक्ष मे लीन हो जाता है। ब्रह्मा पृथ्वी तत्व मे मिल जाता है पर शिव नष्ट नहीं होता। शरीर मे नाभी से नीचे भूखन्ड है। मूलाधार से नाभी तक 'ॐ' एक खण्ड है। नाभी से कठ तक दूसरा खन्ड 'जू' कठ से ब्रह्मान्ड तक तीसरा भाग 'स' अत बापू के इन तीन सिद्धातो का अर्थ है भू भुर्व स्व-जो मन को नियन्त्रण मे रखते हैं। दिव्य चेतना प्राप्त करने के लिए सत्य शिव सुन्दरम् की शरण लेनी पडती है। यह तभी सम्भव है जब हम सुन्दर बोले याने सत्य, सुन्दर सुने याने शिव, सुन्दर देखे याने सुन्दरम् क्योकि वायु का स्वामी शिव है। अत सुन्दर शब्द सुनना ही कल्याणकारी है। कटु बोलने पर क्रोध मे बोलने पर हमारी स्वासो मे उत्सर्पण शक्ति आती है। यही शिव का रुद्र रूप है। सयम से रहकर आत्मनियत्रण रखना ही सर्व श्रेष्ठ परिवार नियोजन है। बापू के इस उपदेश का अर्थ यह है कि काम और क्रोध मे हमारी सोभ शक्ति स्वास प्रच्छवास क्रिया 32 से 64 तक चलती है अर्थात् चौगुनी अठगुनी चलती है। जिससे हमारा जीवन मृत्यु की ओर जाता है। कौरवो की माता गाधारी आखों पर पट्टी बाघे रखती थी, उसके एक सौ पुत्र हुए। गाधारी का अर्थ है गध+आरी अर्थात् जिसमे दुर्गन्ध आती हो। वासना मे दुर्गन्ध ही तो आती है। वासना अन्धी होती है अत अधिक सतान पैदा होती है। अनुयोग कर्मवाच्य प्रिय शब्द बोले अप्रिय शब्द हमारे अन्दर हानि पैदा करते है। वे हमारी बुद्धि को बिगाडते हैं जिससे अहम् की उत्पत्ति होती है। जो नाश का कारण है। फिर शब्द शरीर म जो बहत्तर हजार नाडिया है उनमे झकार

गाधी जी के ये तीन सिद्धात बुरा न बोल, बुरा न सुन, बुरा न देख मे महान रहस्य है। यह मृत्युञ्जय योग का सूचक है तथा सुसस्कार डालने का महामन्त्र है। क्योंकि जो कुछ भी हम बोलते हैं, सुनते हैं, देखते हैं वे सब चीजें हमारे चित्त पर एक बिन्दु के रूप मे जाकर बैठती है। फिर वह धीरे-धीरे शरीर मे व्याप्त होती है और वे ही हमारे सस्कार बन जाती हैं। शब्द की उत्पत्ति आकाश तत्व से होती है। अतः शास्त्रो मे कहा है ब्रह्म "शब्द न सश्यति"। शब्द मे महान शक्ति है। अत बापू के ये तीन सिद्धात दिखने मे बहुत सरल परन्तु विचार करने मे बहुत गम्भीर तथा व्यवहारिक जीवन हेतु मानव विकास की मुख्य जड तथा जीवन सफल बनाने का महामन्त्र हैं। इससे आदमी मृत्युञ्जय योग को प्राप्त होकर अमर हो जाता है। हमारे शास्त्र भी हमे यही उपदेश देते हैं कि वचन कि दालिद्रम। वचनो से हमें दरिद्रता प्रकट नही करनी चाहिये अर्थात् सुन्दर बोलना चाहिये। भद्र कर्णोभिश्रूयता"। कान से सुन्दर शब्द सुनो। "श्रूयता धर्म सर्वस्व"। श्रुत्वा चाप्यवमि धार्यताम्। सब धर्म सुनो और धर्म का मूल उसे धारण करो। ये बातें हमारे सस्कार सुधारने हेतु है। गाधी जी के ये तीन सिद्धात हमारे सस्कारो को तीन प्रकार से सुधारते है सुन्दर बोलना हमारा मलमार्जन करता है। सुन्दर सुनना हमारे सस्कारो की हीनाग पूर्ति करता है तथा सुन्दर देखना हमारे सस्कारो को अतिशयाधान देता है अर्थात् हमारे अन्दर विशेषता उत्पन्न करता है। इस क्रिया को इस प्रकार समझा जाये कि एक व्यक्ति खान से सोना निकाल कर लाया और उसे सुनार को दिया। सोना अभी गन्दा है, अत सुनार ने उसे गर्म किया तो यह उसका मलमार्जन हुआ। फिर उसने उसे साफ करने को सुहागा मिला दिया जिससे उसमे चमक आ गई और वह कुन्दन दिखने लगा तो यह उसकी हीनाग्गपूर्ति हो गई। अब सुनार ने उसको घडकर सुन्दर गहने के रूप मे बना लिया। उसमे सुन्दर रत्न जड दिये। यह उसकी अतिशयाधान अवस्था है जिस पर सबका मन ललचाता है। इसी प्रकार माता के गर्भवास जो कि वास्तविक नर्कवास से एक बालक उत्पन्न होता है वह यदि बुरा न बोलेगा, बुरा न सुनेगा, बुरा न देखेगा तो वस्तुत यह अतिशयाधान युक्त अलकार सदृश हो जायगा, जिस पर सब आकर्षित होगे, सब प्यार प्रदान करेगे और ऐसे ही व्यक्ति राष्ट्र एव समाज का विकास एव कल्याण करेंगे। बालक मे यदि सुन्दर सस्कार पड जाय तो फिर कभी नष्ट नही हो सकते क्योंकि—

इत्तर की मिट्टी मे मिलकर भी महक जाती नही।
तोड भी डालो तो, हीरे की चमक जाती नही।

यह सस्कार का प्रभाव है। अत बचपन से ही बालको को सुसस्कार डालने हेतु

बुरा न बोल, बुरा न सुन, बुरा न देख का पाठ नित्य पढाना, माता पिता को निज कर्त्तव्य समझना चाहिए।

महात्मा गांधी के इन तीन सिद्धांतों को यदि हम विलोम करदें तो वे इस प्रकार हो जायेंगे। सुन्दर बोल. सुन्दर सुन, सुन्दर देख। ये तीनों बातें ही हमारे मृत्युञ्जय योग की जड है। अमरता प्राप्त कराने वाली हैं क्योंकि यह शरीर दुगन्धपूरित है। चमडे में बदबू आती है, पसीने में बदबू आती है। मृत्युञ्जय मंत्र योग में शब्द आता है। "सुगन्धिम् पुष्टिवर्धनम्" अर्थात हम सुगन्धित शात एवं प्रशान्त अवस्था को प्राप्त होकर पुष्ट हों, वलवान हो क्यों कि शरीर में हड्डी, मज्जा, मलमूत्र सव दुर्गन्धयुक्त है। गांधी जी के इन तीन सिद्धांतों का अर्थ है ऊं जूं सः। यह मृत्युञ्जय मंत्र है। इसका देवता शिव है। सृष्टि का क्रम भी तीन है सृष्टि, स्थिति एवं महार। यह शिव का रूप है इसीलिए हम शकर को परम शिव कहते हैं। सब देवता नष्ट होते हैं पर शिव रहता है। ब्रह्मा व विष्णु भी प्रलय काल में नष्ट हो जाते है। विष्णु वट वृक्ष मे लीन हो जाता है। ब्रह्मा पृथ्वी तत्त्व मे मिल जाता है पर शिव नष्ट नही होता। शरीर में नाभी से नीचे भूखन्ड है। मूलाधार से नाभी तक 'ॐ' एक खण्ड है। नाभी से कंठ तक दूसरा खन्ड "जूं" कंठ से ब्रह्मान्ड तक तीसरा भाग 'स.' अतः बापू के इन तीन सिद्धांतों का अर्थ है भू-भुर्व-स्व-जो मन को नियंत्रण मे रखते हैं। दिव्य चेतना प्राप्त करने के लिए सत्यं शिवं सुन्दरम् की शरण लेनी पडती है। यह तभी सम्भव है जब हम सुन्दर बोले याने सत्यं, सुन्दर सुनें याने शिवं, सुन्दर देखें याने सुन्दरम् क्योंकि वायु का स्वामी शिव है। अतः सुन्दर शब्द सुनना ही कल्याणकारी है। कटु बोलने पर क्रोध में बोलने पर हमारी स्वासों मे उत्सर्पण शक्ति आती है। यही शिव का रुद्र रूप है। सयम से रहकर आत्मनियंत्रण रखना ही सर्व श्रेष्ठ परिवार नियोजन है। बापू के इस उपदेश का अर्थ यह है कि काम और क्रोध में हमारी सोभ शक्ति स्वास प्रच्छवास क्रिया : 32 से 64 तक चलती है अर्थात् चौगुनी अठगुनी चलती है। जिससे हमारा जीवन मृत्यु की ओर जाता हैं। कौरवों की माता गाघारी आंखों पर पट्टी बांधे रखती थी, उसके एक सौ पुत्र हुए। गांधारी का अर्थ है गंध+आरी अर्थात् जिसमें दुर्गन्ध आती हो। वासना मे दुर्गन्ध ही तो आती है। वासना अन्धी होती है अतः अधिक संतान पैदा होती है। अनुयोग कर्मवाच्य प्रिय शब्द बोले अप्रिय शब्द हमारे अन्दर हानि पैदा करते है। वे हमारी बुद्धि को बिगाडते है जिससे अहम् की उत्पत्ति होती है। जो नाश का कारण है। फिर शब्द शरीर मे जो बहत्तर हजार नाडिया है उनमें झंकार

गाधी जी के ये तीन सिद्धात बुरा न बोल, बुरा न सुन, बुरा न देख मे महान रहस्य है। यह मृत्युन्जय योग का सूचक है तथा सुसस्कार डालने का महामन्त्र है। क्योकि जो कुछ भी हम बोलते है, सुनते हैं, देखते हैं वे सब चीजें हमारे चित्त पर एक विन्दु के रूप मे जाकर बैठती है। फिर वह धीरे-धीरे शरीर मे व्याप्त होती है और वे ही हमारे सस्कार बन जाती हैं। शब्द की उत्पत्ति आकाश तत्व से होती है। अत शास्त्रो मे कहा है ब्रह्म "शब्द न सश्यति"। शब्द मे महान शक्ति है। अत बापू के ये तीन सिद्धात दिखने मे बहुत सरल परन्तु विचार करने में बहुत गम्भीर तथा व्यवहारिक जीवन हेतु मानव विकास की मुख्य जड तथा जीवन सफल बनाने का महामन्त्र है। इससे आदमी मृत्युन्जय योग को प्राप्त होकर अमर हो जाता है। हमारे शास्त्र भी हमे यही उपदेश देते है कि वचन कि दालिद्रम। वचनो से हमें दरिद्रता प्रकट नही करनी चाहिये अर्थात् सुन्दर बोलना चाहिये। भद्र कर्णोंमिश्रूयता"। कान से सुन्दर शब्द सुनो। "श्रूयता धर्म सर्वस्व"। श्रुत्वा चाप्यम्रमि धार्यताम्। सब धर्म सुनो और धर्म का मूल उसे धारण करो। ये बाते हमारे सस्कार सुधारने हेतु है। गाधी जी के ये तीन सिद्धात हमारे सस्कारो को तीन प्रकार से सुधारते है सुन्दर बोलना हमारा मलमार्जन करता है। सुन्दर सुनना हमारे सस्कारो की हीनाग पूर्ति करता है तथा सुन्दर देखना हमारे सस्कारो को अतिशयाधान देता है अर्थात् हमारे अन्दर विशेपता उत्पन्न करता है। इस क्रिया को इस प्रकार समझा जाये कि एक व्यक्ति खान से सोना निकाल कर लाया और उसे सुनार को दिया। सोना अभी गन्दा है, अत सुनार ने उसे गर्म किया तो यह उसका मलमार्जन हुआ। फिर उसने उसे साफ करने को सुहागा मिला दिया जिससे उसमे चमक आ गई और वह कुन्दन दिखने लगा तो यह उसकी हीनान्गपूर्ति हो गई। अब सुनार ने उसको घडकर सुन्दर गहने के रूप में बना लिया। उसमे सुन्दर रत्न जड दिये। यह उसकी अतिशयाधान अवस्था है जिस पर सबका मन ललचाता है। इसी प्रकार माता के गर्भवास जो कि वास्तविक नर्कवास से एक वालक उत्पन्न होता है वह यदि बुरा न बोलेगा, बुरा न सुनेगा, बुरा न देखेगा तो वस्तुत यह अतिशयाधान युक्त अलकार सदृश हो जायगा, जिस पर सब आकर्षित होगे, सब प्यार प्रदान करेंगे और ऐसे ही व्यक्ति राष्ट्र एव समाज का विकास एव कल्याण करेंगे। वालक मे यदि सुन्दर सस्कार पड जाय ता फिर कभी नष्ट नही हो सकते क्योकि---

इतर की मिट्टी मे मिलकर भी महक जाती नही।
तोड भी डालो तो, हीरे की चमक जाती नही।

यह सस्कार का प्रभाव है। अत वचपन से ही वालको को सुसस्कार डालने हेतु

बुरा न बोल, बुरा न सुन, बुरा न देख का पाठ नित्य पढाना, माता पिता को निज कर्तव्य समझना चाहिए।

महात्मा गांधी के इन तीन सिद्धांतो को यदि हम विलोम करदें तो वे इस प्रकार हो जायेंगे। सुन्दर बोल. सुन्दर सुन, सुन्दर देख। ये तीनों बातें ही हमारे मृत्युञ्जय योग की जड है। अमरता प्राप्त कराने वाली हैं क्योंकि यह शरीर दुगन्धपूरित है। चमड़े मे बदबू आती है, पसीने में बदबू आती है। मृत्युञ्जय मंत्र योग मे शब्द आता है। "सुगन्धिम् पुष्टिवर्धनम्" अर्थात हम सुगन्धित शांत एवं प्रशान्त अवस्था को प्राप्त होकर पुष्ट हों, बलवान हों क्यों कि शरीर में हड्डी, मज्जा, मलमूत्र सब दुर्गन्धयुक्त है। गांधी जी के इन तीन सिद्धांतों का अर्थ है ऊं जूं सः। यह मृत्युञ्जय मंत्र है। इसका देवता शिव है। सृष्टि का क्रम भी तीन है सृष्टि, स्थिति एवं संहार। यह शिव का रूप है इसीलिए हम शंकर को परम शिव कहते हैं। सब देवता नष्ट होते हैं पर शिव रहता है। ब्रह्मा व विष्णु भी प्रलय काल मे नष्ट हो जाते है। विष्णु वट वृक्ष में लीन हो जाता है। ब्रह्मा पृथ्वी तत्व मे मिल जाता है पर शिव नष्ट नही होता। शरीर मे नाभी से नीचे भूखन्ड है। मूलाधार से नाभी तक 'ॐ' एक खण्ड है। नाभी से कंठ तक दूसरा खन्ड 'जूं' कंठ से ब्रह्मान्ड तक तीसरा भाग 'स' अतः बापू के इन तीन सिद्धांतों का अर्थ है भू-भुर्व-स्व-जो मन को नियंत्रण मे रखते हैं। दिव्य चेतना प्राप्त करने के लिए सत्यं शिव सुन्दरम् की शरण लेनी पडती है। यह तभी सम्भव है जब हम सुन्दर बोले याने सत्य, सुन्दर सुनें याने शिवं, सुन्दर देखे याने सुन्दरम् क्योंकि वायु का स्वामी शिव है। अत. सुन्दर शब्द सुनना ही कल्याणकारी है। कटु बोलने पर क्रोध मे बोलने पर हमारी स्वासों मे उत्सर्पण शक्ति आती है। यही शिव का रुद्र रूप है। संयम से रहकर आत्मनियंत्रण रखना ही सर्व श्रेष्ठ परिवार नियोजन है। बापू के इस उपदेश का अर्थ यह है कि काम और क्रोध में हमारी सोभ शक्ति स्वास प्रच्छवास क्रिया : 32 से 64 तक चलती है अर्थात् चौगुनी अठगुनी चलती है। जिससे हमारा जीवन मृत्यु की ओर जाता है। कौरवों की माता गांधारी आखो पर पट्टी बांधे रखती थी, उसके एक सौ पुत्र हुए। गांधारी का अर्थ है गंध+आरी अर्थात् जिसमें दुर्गन्ध आती हो। वासना मे दुर्गन्ध ही तो आती है। वासना अन्धी होती है अतः अधिक संतान पैदा होती है। अनुयोग कर्मवाच्य प्रिय शब्द बोले अप्रिय शब्द हमारे अन्दर हानि पैदा करते हैं। वे हमारी बुद्धि को बिगाडते हैं जिससे अहम् की उत्पत्ति होती है। जो नाश का कारण है। फिर शब्द शरीर मे जो बहत्तर हजार नाडिया है उनमें झंकार

पैदा करता है। नाड़ियों को झकृत करके शब्द बाहर निकलते है, फिर वह गन्दा कटु शब्द याने गाली सबसे पहिले स्वय को सुनाई देती है, अत: खुद का हा नुकसान होता है। अपने अ ग प्रत्यग पर तथा अन्त. चतुपअ ग मन, बुद्धि, चित-अहंकार पर मल आवरण पैदा करते है और हम आत्मा से परे हो जाते है। आत्मसात् होना योग सुख का हेतु है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से गन्दे शब्द बोलने पर रक्त सचार क्रिया बढ जाती है। अत अधिक गाली देने वाले बच्चे व्यक्तिनारी के मुख से दुर्गन्ध आने लगती है। जो शब्द हमारे अन्दर से निकलता है उसकी हमारे चारो तरफ एक तरग एक लहर बनती है। अच्छे शब्दो से हमारे चारो ओर श्वेत मण्डल बनाता है। प्राय धार्मिक चित्रो मे भगवान महात्माओ के सिर के पीछे चित्रकार एक श्वेत चक्र बनाता है। यह मन्डल उपासना की अवस्था बढने पर दिखने लग जाता है। सात्विक विचार का व्यक्ति किसी के पास जाये तो आगामी व्यक्ति उसके आते ही प्रभावित हो जाते है। बुरे शब्दो से हमारे चारो तरफ कृष्ण मण्डल बनता है। गन्दगी भी कृष्ण माने काली होती है। प्रकाश आनन्द श्वेत है, सुगन्धित है, प्राणदायक है। अधिक कामी, क्रोधी, असत्यवादी, कटुभाषी व्यक्ति की शक्ल देखते ही स्वत ही हमे उससे घृणा हो जाती है। हमारा अन्त.करण कह देता है यह आदमी अच्छा नही। आखिर ऐसा क्यो ? जबकि वह व्यक्ति हमारा कुछ भी बिगाड नही करता तो स्वय सिद्ध है कि उसके दुर्गन्धपूरित क्रिया कलापो से उसका कृष्ण मन्डल इतना विस्तृत हो जाता है कि उसे देखते ही हमारा अन्त करण उसके प्रति एक विचित्र धारणा बना लेता है। अत. स्वय को सुगन्धिम् पुष्टि वर्धनम् करने के लिए, समाज को सुन्दर बनाने के लिए, सुन्दर बोलना सुन्दर देखना, सुन्दर सुनना परमावश्यक है। यही मृत्युन्जय है। अमरता प्राप्त करने का अमृत है जिसे पान करके मानव महात्मा गाधी सदृश ही माहत्मा और परमात्मा बन सकता है।

आज हम गाधी जी की आड मे अपनी दुकानदारी जमाये है। उस अपनी दुकानदारी में महात्मा के नाम से अपनी उदरपूर्ति बनाये हैं और उस सत की जो गीता का अनुयायी था, राम का परम भक्त था, अहिंसा का पुजारी था तथा जो सभी को अपनी ही आत्मा मे रमा देखता था, जो शिवोहं की अवस्था है, को हम गहराई से समझे और उसकी बुराइया न करें। उसके नाम को कलकित न करें तथा उसने जो स्वतन्त्रता हमे दिलवाई और जो हिन्दु-मुस्लिम सिख-इसाई-हम है सारे भाई भाई का महामत्र हमे पढा कर हमारे मे सगठन सहयोग, स्नेह, सहानुभूति, मनुजता हमे प्रदान की उसका अव-

लम्बन लेकर उस देवता की देवी धरोहर स्वतन्त्रता महा सम्पदा जो कि आज पाकिस्तानी सर्प और चीनी अजगर के कारण खतरे मे पडी हुई है उसकी रक्षा करें। गाधी जी महान त्यागी थे। हम त्याग का परिचय दें तभी उस महा पुरुष की जयन्ती मनाना सार्थक होगा। और तभी उसकी आत्मा को शान्ति प्राप्त होगी और समाज विकासोन्मुख होगा। तब सही अर्थो मे यह समझ आयगा कि वस्तुत "वैष्णव जन तो तेने कहिये जो पीड पराई जाणेरे"।

अस्पृश्यता

स्विटजर लैण्ड मे एक बार एक आदमी की भैसे की गाडी कीचड मे फस गई। उसने काफी कोशिश की किन्तु गाडी नही निकली। इसी बीच उधर से हेनरी ह्यूनन नामक नवयुवक गुजरा। उसने उस आदमी को सकट मे देख कर फौरन अपना कोट उतारा और उसकी मदद करके गाडी कीचड से निकलवादी। इसी नवयुवक ने उस दिन से एक सस्था की नीव डाली जिसे रेडक्रास कहते है जो न केवल धर्म बल्कि रग, जाति, वर्ग और राजनीति आदि सभी भेद भावो से दूर है। इस सस्था ने पाश्चात्य देशो मे रग जाति और वर्ग का भेदभाव हटा कर सब मे समदृष्टि पैदा करदी। फलस्वरूप आज विदेशो मे छूआछूत का प्रश्न नही है किन्तु इसके विपरीत यदि कोई विदेशी हमसे प्रश्न करे कि क्या आपका देश इस सुधार के युग मे भी अछूतो का बहिष्कार करता है? तो हम भारतीय, जो भारत के ज्ञान, गुण गरिमा पर गर्व करते हैं, नत मस्तक हुए बिना नही रह सकते क्योकि अस्पृश्यता की अछूत भावना ने हमारे दिल और दिमागो मे गहरी जडें जमा रखी है, जबकि प्राचीनकाल में भारत मे अस्पृश्यता नही थी। जाति, कुल धर्मादि का उच्च नीचत्व न था। गुण धर्मानुसार मनुष्य का उच्च नीचत्व था "गुण पूजा स्थान गुणिषु न च लिंग न च वय" सूत्र के अनुसार केवल गुणो की पूजा होती थी।

महाभारत के अनुसार उच्चता की कसौटी निर्मल चरित्र है, जाति या विद्वता नही। पुराणो मे ऐसे पुरुषो का वर्णन है जिन्होने हीन वर्ण से उच्च वर्ण प्राप्त हो गया। मत्तग ऋषि महत्तर थे जो ब्राह्मण कहलाये और आज भी ब्राह्मणो मे मत्तग गोत्र मिलता है। आचार्य शुक्र ने शुक्रनीति मे लिखा है

कि जो अपने कर्त्तव्य से च्युत है, क्रूर तथा निर्दय है और दूसरो को दु ख देता है, जो कामी है तथा सहार एव हिंसात्मक प्रवृत्ति से पूर्ण है, वह मलेच्छ है। भगवान कृष्ण ने कुबिजा, विदुर दीन द्विज, गनिका सबके कारज सवारे हैं अर्थात कभी अपनी दृष्टि मे भेदभाव नही रखा और इस अस्पृश्यता के निर्माणार्थ उन्होने गीता मे कहा है कि —

विद्या विनय सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैवश्वपाके च पण्डिता समदर्शिन ॥

अर्थात विद्या विनय सम्पन्न, ब्राह्मण मे, गाय मे, हाथी मे, कुत्ते मे चाण्डाल मे पण्डितो की समदृष्टि रहती है। वे किसी मे ऊ च नीच नही देखते। इससे प्रमाणित होता है कि गुण-हीन एव नीच विचार धाराओं का व्यक्ति ही शुद्र हैं, दर्शन शास्त्र छूआछूत की भावना रख कर किसी का अपमान करने का उपदेश नही देते। वे तो कहते है कि "जन्मना जायते शुद्र सस्कारात् द्विज अर्थात जन्म से सभी शुद्र है, सस्कार से ही मानव द्विज कहलाता है। जो ब्राह्मणा सस्कार हीन है, भगवान से विमुख है उससे तो श्वपच चाण्डाल श्रेष्ठ है। मनुष्य जन्म से न तो तिलक लगाकर आता है और न यज्ञोपवीत। जो सत्कर्म करता है वह द्विज है। और कुकर्म करता है वह नीच है। महात्मा तिलक जो कि गीता के महान भाष्य कार थे ने भी कहा है कि अस्पृश्यता का कोई शास्त्रीय आधार नही है। परमेश्वर का दरवाजा किसी के लिए बद नहीं है और यदि वह बद हो गये तो परमेश्वर नही ऐसा मैं मानता हू। यह कथन अक्षरश सत्य है क्योंकि भगवान् कृष्ण ने स्पष्ट रूप मे कहा है कि —

नीच कुलोभ्द्व अथवा नारी, वणिक शुद्र तक भी हे पार्थ।
मेरा आश्रय लकर पाते उत्तमगति हो सकल कृताथ॥

भगवान् के इस कथन की पुष्टि दक्षिण भारत की एक सत्य कथा से होता है। दक्षिण भारत मे एक नन्दनार नामक हरिजन था। वह चिदाम्बरम नामक नगर मे रहता था। उसे भगवान् की लगन लगी। उसने एक पण्डित से भगवत्प्राप्ति का उपाय पूछा। पण्डित ने उससे कहा कि नित्य गऊमून से स्नान कर भगवान् नटराज के मन्दिर के दर्शन कर आया कर। उस दिन से वह नित्य गऊमूत्र से स्नान करता और चिदाम्बरम के सुप्रसिद्ध भगवान् नटराज के मन्दिर के दर्शन करने जाता। वह दूर से ही भगवान् शिव के दर्शन कर आता था। इस तरह कई साल बीत गये। एक दिन उसके मन मे आई कि वह शिव के दर्शन मन्दिर मे जाकर करे इसलिए वह मन्दिर मे चढने लगा। उसे मन्दिर मे चढते देखकर ब्राह्मणो ने अपमानित कर नीचे उतार दिया। पण्डितो के इस व्यवहार से वह बहुत दु खी हुआ। भगवान के मन्दिर

के सामने एक नन्दी (वैल) की विशाल मूर्ति थी। उसने भगवान से प्रार्थना की कि मुझे दर्शन दे। उसकी प्रार्थना के फलस्वरूप नन्दी की मूर्ति एकदम हट गई और उसे भगवान् के दर्शन हो गये। उसी दिन से वह भक्त शिरोमणि नन्दनार कहलाने लगा। एक हरिजन पर भगवान की अद्भुत कृपा देखकर पण्डित लोग आश्चर्य मे डूब गये। भगवान् न तो कोई स्तुति सुनता है और न कोई प्रार्थना। वह एक ही भाषा सुनता है, समझता है और वह भाषा है शुद्ध सच्चे हृदय की पुकार चाहे वह किसी भी जाति के प्राणी की हो। हरिजन भक्त भगवान की अनुपम अनुकम्पा पर गद् गद् हो गया और उसकी आंखो से अविरल अश्रुधारा वह उठी, पतितपावन के प्रेम मे क्योंकि उसने एक पतित जो वास्तव मे पतित नही, अछूत नही, महान था कि लाज रखी थी।

भगवान् तो स्वयं पतितपावन हैं। निषाद और शबरी के झूठे बेर खाने की भगवान् राम की कथा कौन नही जानता ? भगवान् मे वर्णभेद कहा है ? जब शबरी को यह मालूम हुआ कि उसके आराध्यदेव राम आने वाले है तो वह पम्पापुर सरोवर में स्नान करने गई। उसे उस सरोवर मे स्नान करते ऋषियो ने देखा और विचार किया कि शुद्रा ने सरोवर मे स्नान कर लिया है अत यह जल सड गया है। वास्तव मे ऋषियो को उस जल से बदबू आने लगी। वे भगवान् राम के पास गये और कहा कि पम्पापुर सरोवर में शुद्रा शबरी ने स्नान कर लिया है अत वह सारा सरोवर सड गया है। अब आप उसमें स्नान करे तो वह सरोवर पवित्र हो। ऋषियो की बात सुनकर भगवान् मुस्कराये और उनके साथ जाकर उसी सरोवर मे स्नान किया किन्तु भगवान् के स्नान करने पर भी जब उस सरोवर के पानी की बदबू नही गई तो ऋषियो को आश्चर्य हुआ और उन्होने भगवान राम से इसका कारण पूछा तब उन्होंने कहा कि आप लोगो ने मेरी परम भक्ता शबरी का अपमान किया है अत सब उसके पास जाकर याचना करें और वह फिर इस सरोवर मे स्नान करे तो इसकी दुर्गन्ध जा सकती है। विवश हो ऋषियो ने शबरी से क्षमा मागी और शबरी ने उस सरोवर मे जाकर वापिस स्नान किया तो उसकी दुर्गन्ध चली गई।

यह घटना इस बात की पुष्टि करती है कि भगवान् मे वर्ण भेद कहा है ? किन्तु हमने अपने कुत्सित विचारो से समाज मे अस्पृश्यता फैला रखी है और यह भूल गये हैं कि यदि पिछडी जातियो के उत्थान का प्रयत्न भारत मे प्राचीन काल मे न हुआ होता तो आज आधा भारत मे अछूतो से परिपूर्ण

कितनी ही अच्छी क्यो न हो, उसकी बात कोई सुनने को तैयार नही होगा। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे मितभापिता की नितान्त आवश्यकता है क्योकि प्रत्येक व्यक्ति आज के युग मे इतना व्यस्त है कि उसके पास समय का अत्यन्त अभाव रहता है। पाश्चात्य विद्वान फीनेलन ने इसीलिए कहा है कि तुम जितना अधिक बोलोगे लोग उतना ही कम याद रखते है जितना सक्षेप मे कहोगे, उतना ही तुम्हे अधिक लाभ होगा।

वस्तुत सक्षेप मे बात करना ही अच्छा रहता है क्योकि व्यर्थ बातें व परचर्चा वाणी के दोप है। अधिक बोलने से मानव मे निन्दा, कुतर्क एव असत्य बोलने की प्रवृत्तिया पैदा हो जाती है एव आत्म प्रशसा करने की कुटेव पड जाती है जिससे अभिमान जागृत हो जाता है जो पतन का हेतु है। सक्षिप्त वार्ता मे ही मानव की प्रतिभा एव बुद्धिमता का परिचय मिलता है। मौन रखने वाले मितभाषी व्यक्ति को ही मुनि कहते है। पाश्चात्य पण्डित पोप ने भी मितभापिता का महत्व बताते हुए कहा कि शब्द पत्तो के समान है जहा वे बहुतायत से रहते है। वहा फलयुक्त ज्ञानरूपी बातें कठिनाई से दिखलाई पडती है, महात्मा ईसा ने भी मितभापिता का उपदेश देते हुए कहा है कि अपने भावो को सक्षेप मे व्यक्त करो, अल्प शब्दो मे अधिक भावो को व्यक्त करो। अपने शब्दो को अल्पतम रखो। न्याय सगत शब्दो मे कितनी शक्ति है।

है कि —

बोली तो अनमोल है, जो कोई जानें बोलि ।
हिय तराजु तौलिकै फिर आप मुख खोलि ।।

मितभाषिता का सद्गुण धारण करने पर मनुष्य कलह से बच जाता है क्योंकि 'मौनेन कलहो नास्ति" अर्थात मौन रहने से कलह नही होती । जो पुरुष निंदा करने वाले से भी रूखे और अप्रिय वचन नही बोलता वही धीर वीर कहलाता है । महाभारत के शान्तिपर्व मे महर्षि व्यास ने मितभाषिता हेतु लिखा है कि मुख से बाण की तरह तीखे वचन निकलते है और दूसरों के मर्म स्थानो पर चोट करते हैं अत बोली के बाण मत मारो । प्रतिपक्षी मनुष्य कुवाक्य रूपी बाण मार कर भली प्रकार बींध डाले तो भी धीर पुरुष को शान्त रहना चाहिए । शत्रु के क्रोध दिलाने पर भी जो मनुष्य क्रोध कर हर्षित ही होता है वह धीर पुरुष शत्रु के पुण्य का भागी होता है । मितभाषिता एक ऐसा शास्त्र है जिसके समक्ष प्राणघातक शत्रु भी नतमस्तक हो जाता है । मितभाषिता एव मौन साधना मे तल्लीन होकर जो मनुष्य कर्तव्य पथ पर कर्मवीर सदृश अग्रसर होता है वही उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर अपनी विजय-पताका फहराता है । लोह पुरुष स्वर्गीय सरदार वल्लभ भाई पटेल बचपन से ही मितभाषी थे । जिन्होने अपने इस सद्गुण के प्रभाव से एक निर्धन परिवार से उठकर एक मत्री के पद पर पहुचे और ससार मे अमरता प्राप्त की । मितभाषिता के फलस्वरूप ही वे नित्य अट्ठारह घण्टे कार्य करने पर भी कभी थकावट अनुभव नही करते थे । मितभाषिता पर राजस्थानी एक लोक कहावत है कि 'बातडिया घर ऊजडै" अर्थात अधिक बातें करने से घर का विनाश होता है । वस्तुत किसी राष्ट्र की पूर्ण विद्वता उसकी लोकोक्तियो प्रदर्शित होती है जो अत्यन्त सक्षिप्त होते हुए भी 'गागर मे सागर' रखती हैं एव सार गर्भित होती है । लोकोक्तिया का उपयोग मितभाषिता हेतु अत्यन्त उपयोगी होता है । अग्रेजी भाषा मे भी मितभाषिता पर लोक्तिया है जैसे Less Talk Work More" अर्थात कम बोलो और कार्य ज्यादा करो । One Should be a man of few words अर्थात व्यक्ति को मितभाषी होना चाहिए । योगीराज अरविन्द ने भी कहा है कि Dont Speak Act" अर्थात कम बोलने और कर्त्तव्य का पालन करो । भगवान कृष्ण ने भी 'कर्मण्यवाधिकारस्ते मो फलेषु कदाचन" के सूत्र मे परोक्ष रूप मे मितभाषिता धारण किये हुए कर्म कर्म का सकुशलता से पालन करने हेतु कहा है । मितभाषिता सदैव सब स्थानो के लिए मान्य है । बातें बनाना, गप्पे लगाना, वक्त गंवाना बहुत बुरा

कितनी ही अच्छी क्यो न हो, उसकी बात कोई सुनने को तैयार नही होगा। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे मितभाषिता की नितान्त आवश्यकता है क्योकि प्रत्येक व्यक्ति आज के युग मे इतना व्यस्त है कि उसके पास समय का अत्यन्त अभाव रहता है। पाश्चात्य विद्वान फैनेलन ने इसीलिए कहा है कि तुम जितना अधिक बोलोगे लोग उतना ही कम याद रखते है जितना सक्षेप मे कहोगे, उतना ही तुम्हे अधिक लाभ होगा।

वस्तुत सक्षेप मे बात करना ही अच्छा रहता है क्योकि व्यर्थ बातें व परचर्चा वाणी के दोष है। अधिक बोलने से मानव मे निन्दा, कुतर्क एव असत्य बोलने की प्रवृत्तिया पैदा हो जाती है एव आरम प्रशसा करने की कुटेव पड जाती है जिससे अभिमान जागृत हो जाता है जो पतन का हेतु है। सक्षिप्त वार्ता मे ही मानव की प्रतिभा एव बुद्धिमता का परिचय मिलता है। मौन रखने वाले मितभाषी व्यक्ति को ही मुनि कहते हैं। पाश्चात्य पण्डित पोप ने भी मितभाषिता का महत्व बताते हुए कहा कि शब्द पत्तो के समान है जहा वे बहुतायत से रहते है। वहा फलयुक्त ज्ञानरूपी बातें कठिनाई से दिखलाई पडती है, महात्मा ईसा ने भी मितभाषिता का उपदेश देते हुए कहा है कि अपने भावो को सक्षेप मे व्यक्त करो, अल्प शब्दो मे अधिक भावो को व्यक्त करो। अपने शब्दो को अल्पतम रखो। न्याय सगत शब्दो मे कितनी शक्ति है।

ससार मे अनेक उत्पात मितभाषिता के अभाव मे होते हैं। भोजन करते समय तो बिल्कुल ही नही बोलने की परम्परा हमारे देश मे है। भोजन करते वक्त अधिक बोलने के कारण कभी यदि भोजन का कोई कौर श्वास नली मे पहुच जाय तो अकस्मात मृत्यु तक हो सकती है।

अनेक प्रतिभावान नवयुवक मितभाषिता एव सक्षेप मे उत्तर देने न देने के कारण नौकरी हेतु साक्षात्कार के समय असफल हो जाते है। और अपने भाग्य को कोसते है। मितभाषिता के कारण वाणी का सयम होता है तथा वाणी के सयम से मनुष्य मे अमोघ, अतर्क्य, अनन्त शक्ति उत्पन्न होती है। जो कम बोलता है उसकी बात दूसरो के हृदय पर अधिक असर करती है। प्राय सत महात्मा मितभाषी होते है यही कारण है कि वे जो उपदेश करते हैं लोग उन्हे मान लेते है। कम बोलने के लिए ही महात्मा कबीर ने कहा

है कि —

बोली तो अनमोल है, जो कोई जाने बोलि।
हिय तराजु तोलिकै फिर आप मुख खोलि ॥

मितभाषिता का सदगुण धारण करने पर मनुष्य कलह से बच जाता है क्योंकि "मौनेन कलहो नास्ति" अर्थात मौन रहने से कलह नही होती। जो पुरुष निंदा करने वाले से भी रूखे और अप्रिय वचन नही बोलता वही धीर वीर कहलाता है। महाभारत के शान्तिपर्व मे महर्षि व्यास ने मितभाषिता हेतु लिखा है कि मुख से वाण की तरह तीखे वचन निकलते हैं और दूसरो के मर्म स्थानो पर चोट करते है अत बोली के वाण मत मारो। प्रतिपक्षी मनुष्य कुवाक्य रूपी वाण मार कर भली प्रकार बीध डाले तो भी धीर पुरुष को शात रहना चाहिए। शत्रु के क्रोध दिलाने पर भी जो मनुष्य क्रोध कर हर्षित ही होता है वह धीर पुरुष शत्रु के पुण्य का भागी होता है। मितभाषिता एक ऐसा शास्त्र है जिसके समक्ष प्राणघातक शत्रु भी नतमस्तक हो जाता है। मितभाषिता एव मौन साधना मे तल्लीन होकर जो मनुष्य कर्त्तव्य पथ पर कर्मवीर सदृश अग्रसर होता है वही उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर अपनी विजय-पताका फहराता है। लोह पुरुष स्वर्गीय सरदार वल्लभ भाई पटेल बचपन से ही मितभाषी थे। जिन्होने अपने इस सद्‌गुण के प्रभाव से एक निर्धन परिवार से उठकर एक मत्री के पद पर पहुचे और ससार मे अमरता प्राप्त की। मितभाषिता के फलस्वरूप ही वे नित्य अट्ठारह घण्टे कार्य करने पर भी कभी थकावट अनुभव नही करते थे। मितभाषिता पर राजस्थानी एक लोक कहावत है कि "वातडिया घर ऊजडै" अर्थात अधिक बाते करने से घर का विनाश होता है। वस्तुत किसी राष्ट्र की पूर्ण विद्वता उसकी लोकोक्तियो प्रदर्शित होती है जो अत्यन्त सक्षिप्त होते हुए भी 'गागर मे सागर' रखती हैं एव सार गर्भित होती है। लोकोक्तियो का उपयोग मितभाषिता हेतु अत्यन्त उपयोगी होता है। अग्रेजी भाषा मे भी मितभाषिता पर लोक्तिया है जैसे Less "Talk Work More" अर्थात कम बोलो और काम ज्यादा करो। One Should be a man of few words अर्थात व्यक्ति को मितभाषी होना चाहिए। योगीराज अरविन्द ने भी कहा है कि Dont Speak Act" अर्थात कम बोलने और कर्त्तव्य का पालन करो। भगवान कृष्ण ने भी 'कर्मण्यवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन" के सूत्र मे परोक्ष रूप मे मितभाषिता धारण किये हुए कर्म कर्म का सकुशलता से पालन करने हेतु कहा है। मितभाषिता सदैव सब स्थानो के लिए मान्य है। बात बनाना, गप्पे लगाना, वक्त गवाना बहुत बुरा

है। मितभाषी कर्मपरायण व्यक्ति ही समार मे स्याति प्राप्त करते हैं। समार के अन्य देशो के लोग सुखी शात एव कर्त्तव्य निष्ठ है अत स्वय सिद्ध है कि निज, समाज एव राष्ट्र कल्याण हेतु बेकार गपशप की प्रवृत्ति त्यागनी ही होगी और कर्त्तव्य निष्ठ बनना होगा क्योकि वर्तमान युग मे तो मितभाषी होना मानव का सद्गुण होने के साथ परम कर्त्तव्य भी है।

चिन्ता

चिन्ता एक मानसिक रोग है जिससे आरोग्य नष्ट होता है क्योकि चिन्ता का प्रभाव मनुष्य की पाचन क्रिया पर पडता है और भूख कम हो जाती है जिससे मानव क्षीण और निस्तेज हो जाता है। चेहरे की चमक जाती रहती है, मानव रोगी हो जाता है। चिन्ता एक ऐसी भयकर बला है जो अपने साथ अनेक बलाए लाती है। चिन्ता के कारण खाना पीना तो हराम हो ही जाता है जिसका शरीर पर तो असर पडता ही है साथ ही नीद नही आने की भी बीमारी हो जाती है। चिन्ता मे रत रहने के कारण दिन वर्ष के समान लगने लगते हैं और कहर की रात होती हैं। क्योकि "नीद" "चिन्ता" नव वधु देखि के, भाकि भाकि फिर जाय। जिससे पूर्णत आराम नही मिलता और मनुष्य का स्वास्थ्य गिर जाता है। पाश्चात्य विद्वान होली वर्टन ने इसीलिए कहा है कि चिन्ता मन शयन करने का अर्थ है मन पर एक बोझ लाद कर सोना।

सचमुच मे चिन्ता के समान शरीर का शोषण करने वाली अन्य और कोई चीज नही है। चिन्ता से चतुराई (कार्यकुशलता) भी घटती है क्योकि—

चिता चिन्ता समख्याता चिन्ता एव बलीय से।
चिन्ता दहति निर्जीवो सजीवो दहति चिन्तया॥

अर्थात् "निर्जीवो को चिता जलाये और जीवो को चिन्ता" क्योकि चिन्ता चिता समान है। जसे केले की जड मे करीर केले को फाड देती है उसी प्रकार चिन्ता शरीर को नष्ट कर देती हैं जीवन फिक्र चिन्ता बुरा फाका मला फिक्र फकीरा खाय। सचमुच मे यदि। चुडैल चिन्ता मौटे ताजे मस्त फकीर को भी लग जाय तो उसको भी खा जाती है। इसका एक उदाहरण देखिये —

बादशाह अकबर के जमाने मे दिल्ली मे एक शाह कलन्दर नामक मलग फकीर था । वह शरीर मे बहुत मोटा, स्वस्थ, एव ताकतवर था । एक दिन अकबर की सवारी रथ मे निकल रही थी । मलग ने जब अकबर को देखा तो उसकी कुछ भी परवाह नही की । बादशाह अकबर को सब नमस्कार कर रहे थे परन्तु उस फकीर ने जब शहशाह को सलाम नही की तो शहशाह की नजर उस पर चुभ गई । थोडी दूर जाने पर अकबर का रथ कीचड मे फस गया । फकीर दौडा दौडा आया और उसने कधे से रथ को उठाकर कीचड से निकाल दिया । उसकी ताकत देखकर शहशाह को आश्चर्य हुआ । उसने बीरबल से पूछा कि यह क्या खाता है जिससे इसमे इतनी ताकत है । बीरबल उस मलंग को जानता था । उसने उत्तर दिया हुजूर यह सिर्फ प्याज और रोटी माग कर खाता है और निश्चिन्त रहता है जिससे इतना ताकतवर है । शहशाह ने हुक्म दिया कि उसको रोज वही खाना खिलाया जाय जो मुझे खिलाया जाता है और इसे रोज शाम को 6 बजे मस्जिद मे दिया जलाकर आने को नियुक्त कर दिया जाय लेकिन यदि यह मलग किसी दिन भी ठीक 6 बजे मस्जिद मे दिया जलाने नही पहुचा तो उस दिन हम इसको सजाऐ मौत दे देंगे । मलग को अब रोज बढिया खाना मिलने लगा लेकिन वह 6 माह की अवधि मे ही सूख कर काटा हो गया और हड्डिया दिखने लगी । मस्जिद मे ठीक समय पर चिराग जलाने की मामूली चिन्ता ने मलग का सारा स्वास्थ्य नष्ट कर दिया । अतः स्वतः प्रमाणित है कि फिक्र बुरा फाका भला फिक्र फकीरा खाय ।

कौरव वश दुर्योधन भी पाडवो.के ऐश्वर्य को देखकर चिन्तित हुआ । एक आदमी की चिन्ता ने ही भारत का सर्वनाश महाभारत में कर दिया । वही चिन्ता मोहवश विषादरूप मे अर्जुन को सताई और उसमे नपुंसता आ गई । चिन्ता वेष्ठित क्लीवता सबसे भयकर होती है । हृदय की दुर्बलता चिन्ता से होती है जो क्लीवता का कारण है, और जिससे हृदय रोग हो जाता है और मानव अकस्मात असमय मे ही कराल काल का ग्रास बन जाता है । पाश्चात्य पडित चैनिंग के शब्दो मे चिन्ता एक प्रकार की कायरता है जो जीवन को विषमय बना देती है क्योकि :—

चिन्ता ज्वाल शरीर वन, दावा लगि लगि जाय ।
प्रकट धुआ नही उपजे, उरः अन्तर धुंधुंवाय ।।

उर अन्तर धुँधुँवाय, जरे ज्यो काच की भट्टी।
हाड मास जलि जाय, रहे ज्यों पिंजर की टट्टी ॥
कहे "गिरधर" कविराय, वहैनर कैसे जीता।
निश दिन जाके व्याप रही, उर अन्तर चिन्ता ॥

अब प्रश्न यह है कि चिन्ता कैसे उत्पन्न होती है ? चिन्ता की उत्पत्ति भी विचार से होती है। शरीर मे विचार मणिपुर चक्र (Solar Plaxas) अर्थात् नाभिस्थान से स्फुरण होकर विचारो की उत्पत्ति होती है। विचारो की शक्ति बडी विलक्षण होती है जिसका जीवन एव शरीर पर एव मानव के व्यक्तित्व पर गम्भीर प्रभाव पडता है। जैम्स हैनरी के कथनानुसार सचमुच विचारो मे प्रबल शक्ति होती है जिससे व्यक्तित्व मे निखार आता है। व्यक्तित्व की शक्ति भी विलक्षण होती है। किसी व्यक्ति मे विचार शक्ति एव व्यक्तित्व शक्ति दोनो के मिलने पर मानव नया इतिहास बना देता है। स्वर्गीय पंडित जवाहरलाल नेहरू मे विचार एव व्यक्तित्व दोनो शक्तिया थी, यही कारण है कि उन्होने भारत का नवीन इतिहास बना दिया। हैनरी वुड के मतानुसार प्रत्येक मानव के लिए एक ही सच्चा जगत होता है और वह है उसका विचार विचारो के कारण मन मे भाव उत्पन्न होते हैं। मन (माइन्ड-दिमाग) जीवन के स्वर्ग का नर्क मे एव नर्क को स्वर्ग मे बदल देता है क्योंकि "मन एव मनुष्याणा कारण बन्धमोक्षयो" अर्थात मन ही मानव के बन्धन का कारण है और मोक्ष का भी। विचारो का आघात जब चित्त पर होता है तो भाव विकसित होने लगते है। विचारो के विकसन को ही विचार दोलन कहते है जिससे विचारो का दर्शन भाव हमे होने लगता है एव विचारो के सकल्पशक्ति उभरने लगती है। फलस्वरूप विचार कार्य करने लगते हैं। पवित्र विचारों से जीवन में पवित्रता आने लगती है एव चिन्तित विचारो से चिन्ता। भगवान श्री कृष्ण ने गीता में उच्च विचारो को देवी सम्पत कहा है क्योंकि देवी सम्पत अर्थात सुन्दर विचार मोक्षदायक होते है और आसुरी सम्पत चिन्ता का कारण है। जिज्ञासु आसुरी सम्पदा दभ, दर्प, गम, चिंता, क्रोध, कठोरता अज्ञानता त्यागकर देवी सम्पत्ति अभय, अहिंसा, शुद्धता श्रद्धा, दान स्वाध्याय, तथा तप आदि का आश्रय लेता है तो विकासोन्मुख हो कल्याण का अधिकारी बनता है। हमारे मन मे आसुरी सम्पदा चिन्ता एव निराशा हमारे उत्साह को भस्म कर देती है। चिन्ता मानव की निज परिस्थितियो के प्रति उसके निज दृष्टिकोण से उत्पन्न कल्पना मात्र है। मन की व्यर्थ कल्पना, व्यर्थ कामना, लालसा, परेशानी दौडधूप, सकल्प कहलाते हैं। सकल्प ही द्वन्द और

अर्थ के भेद से भिन्न होकर विकल्प बन जाता है जिससे कर्त्तव्य का पालन नही हो पाता है। अत. भले बुरे सकल्पो से उत्पन्न होने वाली कल्पनायुक्त कामनाओ का त्यागकर चिन्ता रहित रहने हेतु चित्त की चचलता को निज नियत्रण से साफ कर सत्सकल्प को विकल्प मे चिन्ता मे कभी परिणत नही होने देने चाहिए, क्योकि यही हम विचारपूर्ण विश्लेषण कर तो हमारी अधिकाश चिन्ताए ऐसी निराधार होती है जिनमे वास्तविकता नही होती। चिन्ता हमारे दिमाग के स्नायुमडल (नर्वस सिस्टम) की शक्ति को कमजोर कर देती है जिससे हम समस्याओ का समाधान ढूढने के बजाय विचारो मे उलझ जाते है क्योकि "मन तो है एक कृषक विचाराबीज विचारो के बोता है और चिन्ता के कारण मानव गलत विचारो मे खोता है"।

अब प्रश्न यह है कि मानव को चिन्ता होती क्यो है तो इसका उत्तर यह है कि भावी के भय से मानव को चिन्ता होती है। चिन्ता, घृणा गर्व प्रतिशोध, रागद्वेष, लोभ, मोह मात्सर्य, स्वार्थ ये सब भावी के भय की ही सन्ताने है और 'होनहार न मिटै मटाई चिन्ता करे कुछ हाथ न आई" क्योकि —

होणी होय सो होय अणहोणी होवे नही।
इण चिन्ता ने छोड र इमरित क्यो पीवै नांहि॥

अर्थात् जो होना होगा यह अवश्य होगा क्योकि होनहार बलवान है, जो नही होना चाहिये वह नही होगा फिर विषरूपी चिन्ता को त्यागकर अमृत का पान क्यो नही किया जाय क्योकि —

रात दिन गर्दिश मे है सातो आसमा।
होकर रहेगा जो होना होगा घबरायें क्यो॥

लेकिन मानव यह जानते हुए भी कि भावी प्रबल है और —

सुख दुख जन्म मरण अरू भोगा।
हानि लाभ प्रिय मिलन वियोगा।
काल करम वस होहि गुसाई।
बरबस रात दिवस की नाई॥

तो भी मानव प्रियवियोग एव अप्रिय सयोग वश चिन्ता के चक्कर मे अज्ञान

रूपी अन्धकार मे भटकता है । कुछ लोग तो समाज मे ऐसे भी दिखाई देते हैं जो मानो चिन्ता के लिए ही पैदा हुए हो । उन्हे चिन्तायुक्त होने हेतु कोई बहाना मात्र चाहिए । कुछ लोग प्राज्ञ कुसस्कारो वश चिन्ता के शिकार बनते हैं और किसी प्रकार प्राण सकट मे फस जाने पर महान अधर्म कर्म करते है आत्महत्या कर अधोगति को प्राप्त होते हैं जबकि विवेक विचार की दृष्टि से यह अज्ञान नही तो भला और क्या है । जबकि ननुशोचन्ति पण्डिता अर्थात विचार शील व्यक्ति चिन्तातुर नही होता क्योकि ससार मे शोक के स्थान हजारो है और हर्ष के सैकडो अवसर है किन्तु उनका प्रभाव रोजरोज मूर्खो पर पडता है, विद्वानो पर नही । सचमुच मे तो इस समस्त सृष्टि पर —

खुदा की हुकूमत का हरसू अमल है ।
तफक्कुर म क्यो जान अपनी है खोता ।।
जो कुछ हुआ "अकबर" समझ ठीक उसको ।
जो जरूरी न होता तो हरगिज न होता ।।

महा प्रकृति मा कभी कभी अन्तकरण को माजने एव प्राज्ञ कुसस्कारो को नष्ट करन हेतु जागृत करने के लिए कष्ट भी देती है । शरीर मे कोई फोडा होता है तो मा उसे डाक्टर से कटवाती है, तो पीडा असह्य हो जाती है, पर जब कालान्तर मे जो फोडा प्राज्ञ कुकर्मो का रोज दु ख देता है उसका चिरस्थाई इलाज तो हो जाता है परन्तु उस कष्ट काल मे हम धैर्य खो देते है । *कर्त्तव्यनिष्ठ एव सत्यनिष्ठ एव उपासनायुक्त जीवन बिताने पर भी कष्ट* आ ही जाता है और जब महवे इबादत रहने पर भी इताब आ जाता है तो मानव घबरा जाता है, कर्त्तव्य विमुख हो जाता है । साधक साधना मे लडखडा जाता है और यह भूल जाता है कि "आज नही तो कल बिखरेंगे काले बादल" पर जब उम्मीदे टूटती है तो बहुत सदमे गुजरते है, जिन्हे उम्मीदे कम होगी उन्हे सदमे भी कम होगे । *अर्थ के अभाव मे चिन्ता करना भला क्या विवेक*-युक्त हैं जबकि "लक्ष्मीयत्र पतन्ति तत्र विवृत द्वारा इव व्यापद " अर्थात जहा लक्ष्मी है वहा विपत्तिया अपना दरवाजा खोले हुए होती हैं । फिर माया जो छाया स्वरूपिणी हैं की चिन्ता करने पर क्या वह पास आजायेगी अथवा दूर दौडेगी । छाया (माया) तो पीठ फेरने पर ही पीछे चलती है । प्रभु जिन्हे ऊँचा उठाना चाहते हैं उन्हे ही माया से छुडाते है ऐसा ज्ञात होने पर बुद्धिशील व्यक्ति का अनिष्ठ की प्राप्ति मे भी कर्मयुक्त एव चिन्ता रहित रहना परम कर्त्तव्य है ।

चिन्ता से कैसे बचा जाय, बन्धन से कैसे मुक्त हुआ जाय, चिन्ता रूपी विष को त्याग कर अमृत कैसे पीया जाय। विकास एवं कल्याण तथा समाज कल्याण हेतु चिन्ता से कैसे छुटकारा पाया जाय, जिससे जीवात्मा स्वतन्मय हो जबकि हमारी हालत तो अभी अर्जुन जैसी है जो मोह ममतावश चिन्तातुर हो क्लीव (कायर) बना है तथापि "प्रज्ञावादश्च भाष से" अर्थात् पंडितो की सी बात करता है अतः भगवान श्रीकृष्ण, अर्जुन को, 'विचार और कर्त्तव्य" का बोध कराने हेतु कहा है कि चिन्ता संशय का हेतु है, विनाश का हेतु है अतः चिन्ता से छूटने हेतु चिन्तन का सहारा ले क्योंकि जो अनन्यभाव से मेरा चिन्तन करता है उसे जो अप्राप्य है उसकी प्राप्ति कराकर रक्षण भी मैं ही उसका करता हू अतः —

सब धर्मों को तज कर आजा, शरण एक मेरी बेरोक।
मैं तुझको सारे पापो से, मुक्त करूंगा मत कर शोक ।।

और जब अर्जुन (जीव) सर्व भावेन शरणागति को प्राप्त होता है तो मोह नष्ट हो जाता है और भगवान से कहता है कि "नष्टो मोह स्मृतिर्लब्धा स्वत्प्रसादान्मयाच्युत" अर्थात भगवान आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हुआ। मैं संशय रहित हुआ स्थित हू और आपकी आज्ञा का पालन करूंगा अर्थात चिन्ता छोडकर, कायरता छोडकर अपने कर्त्तव्य का पालन करूंगा।

सचमुच मे यदि चिन्ता का विवाह चिन्तन से मानव करादे तो चिन्ता उसकी दासी बन जाती है क्योंकि चिन्ता मे फसना और चिन्तन करना ये दो नितान्त भिन्न वस्तुए होते हुए भी एक दूसरे का घनिष्ठ सम्बन्ध है। चिन्ता प्रकृति हमारा मार्ग रोकती है तो चिन्तन पुरुष हमारा मार्ग प्रदर्शन करता है। स्वार्थ रहित चिन्तन विचार का हेतु है। विचार विज्ञानमय होने से कल्याण का हेतु है। हमारे शरीर मे विचारो का प्रवाह होता है जो जो विचार अन्तर मे उत्पन्न होते हैं वैसी ही शक्ति आकाश से हमारे मे आती है। आनन्द का विचार आनन्द खचकर लाता है। चिन्ता का विचार चिन्ता है अतः मानव का कर्त्तव्य है कि अभ्यास से विचार शक्ति पर आत्मद्योतन द्वारा नियन्त्रण रखकर उसे विकसित करे क्योंकि आत्म द्योतन का अर्थ है स्वय पर स्वय का नियन्त्रण। इसे अंग्रेजी मे आटो सजेशन कहते है। प्रार्थना, उपासना, स्तुति, कीर्तन, जप, ध्यान, स्वाध्याय आत्मद्योतन है। उपासना से कुण्डलनी शक्ति जब जागृत होकर चन्द्र (ललाट मे बाई आख के ऊपर का भीतरी

भाग चन्द्र कहलाता है) को डसती है तो अमृत की वर्षा होती है जिससे चिन्ता मिट जाती है और साधक की हालत ऐसी हो जाती है कि —

न जाने कौन सी हवा आठो पहर सिर मे भरी रहती है ।
जिससे बिन पीये ही सदा बेफिक्री रहती है ।।

और सकल्प विकल्प का क्षय होकर विचारो मे समता आ जाती है । समता अमृत स्वरूप है । समतायुक्त रहने पर रक्तचाप एव हृदय की गति ठीक रहती है इसीलिए गीता मे समतायुक्त रहने हेतु मानव का कर्त्तव्य बताते हुए कहा है

य हि न व्यथयन्त्येते पुरुष पुरुर्षभ ।
सम दु ख सुख धीर सो ऽमृतत्वाय कल्पते ।।

अर्थात जैसे सुख मे फूलता नही और दु ख मे घबराकर चिन्तातुर नही होना तथा जो दु ख सुख समान समझ कर गुण (भगवान को) स्मरण करता है वह पुरुष अमृत प्राप्त करता और जन्ममरण के बन्धन से मुक्त हो जाता है । यही आत्मा की स्वतन्त्रता है यही जीवनमुक्ति है क्योकि —

आवत को हर्ष नहि जात शोकनहि होय ।
ऐसी करणी जो करे घरबिच योगी होय ।।

सचमुच मे विचार द्योतन से कुछ भी असाध्य, अप्राप्य एव अभाव नही रहता । विचारद्योतन बिना व्यक्ति सम्पन्न होने पर भी दरिद्र रहता है । विचार-द्योतन से, उठते बैठते, चलते फिरते सोते जागते शुद्ध अशुद्ध किसी मन्त्र का जप करने से विचार शक्ति एव मानसिक शक्ति का विकास होता है जिससे मनुष्य का स्वय पर स्वय का नियन्त्रण रहने लगता है । दिमाग मे अनावश्यक-रूप से जो विचार जन्म लेते है जप उनको नष्ट कर देता है और इच्छा शक्ति विकसित हो जाती है और मानव मे जो हीन भावना निरूत्साहितता नष्ट हो जाती है । उत्साह जागृत होता है । हृदय रूपी डाइनुमा की बैट्री जप से विचार द्योतन से चार्ज करते रहने पर शक्ति आती रहती है जिससे कार्य-क्षमता बढती है धीरे धीरे मन आत्मा मे लीन होने लगता है, स्थिर होने लगता है और एकान्त स्थान मे जब मानव सुबह शाम विचार द्योतन के अभ्यास हेतु मानसिक जप करता है तो अभ्यास से कालान्तर मे एक अवस्था

ऐसी हो जाती है जो चिन्ताहीन होने के साथ साथ चिन्तन हीन भी होती है और मानव जब विचार शून्य हो जाता है तो उसमे महाप्रकृति द्वारा शक्तिपात होता है अर्थात शक्ति आती है मन की आत्मा मे पूर्णत लीन अवस्था का नाम ही अज्ञेयवाद है जो निर्विकल्प समाधि का हेतु है। विचारद्योतन से रक्त सचार शरीर मे द्रुतगति से होता है। कभी कभी तो हाफनी सी भी हो जाती है और फिर हालत ऐसी हो जाती है कि —

तेरे बीमारे फुरकत की तो, नब्जें भी नही मिलती।
कफे अफसोस मलते हैं, कलाई देखने वाले ।।

अर्थात् विचारद्योतन की क्रिया के अभ्यास से सास की गति निर्मल हो जाती है, धीमी हो जाती है। सास का अधिक व्यय शक्ति का ह्रास है। जब सास की गति निर्मल होती है तो शरीर स्वस्थ रहता है। जो लगो चिन्ता मिटाने हेतु औषधियो का प्रयोग करते हैं उनको चाहिए कि वे विचार द्योतन का अभ्यास करें, ध्यान करें। श्रद्धाहीन उत्साहहीन व्यक्ति प्रगति पथ पर आरूढ नही हो सकता। जीवन तो सहसो अनिश्चितताओ से परिपूर्ण होता है अत सोचते ही रहने से काम कभी पूरा नही होता है। कही जाना होता है तो चलने से ही काम चलता है। आशा जीवन है निराशा मृत्यु अत भविष्य की चिन्ता छोडकर वतमान को सुन्दर बनाने हेतु चिन्ता के चगुल से छूटकर कमण्य वाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन को ध्यान मे रखकर आशाहीन आशा रखना निराशा से सघर्ष करने का सर्वश्रेष्ठ उपाय है। स्थुल अवस्था (अज्ञान) से निकल कर सूक्ष्म(ज्ञान)अवस्था मे मन का चिन्तन भौतिक पदार्थो की ओर से उपरति प्राप्त कर अन्तर्मुखी करना ही मानव के विकास का हेतु है। मन जब अन्तर्मुखो हो जाता है तो चिन्ता नष्ट हो जाती है अन्यथा मन वाह्य विलासादि भौतिकवादी वस्तुओ की उपलब्धि मे डूबा रहता है और चिन्तनीय वस्तु की प्राप्ति न हाने पर चिन्तातुर रहता है। और यही मन की अवनति है। अत मन की उन्नति हेतु एव आत्मा की मुक्ति हेतु मानव का कर्त्तव्य है कि चिन्ताहीन होकर यह चिन्तन करे कि —

मैं कौन हू क्या हू, कहा से आया हू, समझ नही पाया हू, क्यो आया हू, कहा जाना है, मैं यहा हमेशा नही रहूगा। फिर क्या योग्य कर्म करू जिससे मैं अपना, समाज का, राष्ट्र का कल्याण कर सुख पाऊ और दूसरे भी सुख पाए इस बात की चिन्ता म रहकर क्षणिक सुखभोग हेतु लोभ, मोह, ममता,

स्वार्थ त्याग कर उर्ध्वगति उन्नति हेतु सत्सकल्पयुक्त कर्त्तव्य पथ डट जाय और आनन्द की प्राप्ति करें और जीवन यात्रा पूर्ण करें क्योकि प्रकृति वे सब वस्तुए स्वत प्रदान करती है जो कि हमे आवश्यक है। सृष्टि कर्त्ता के नियमानुसार पूर्व कर्मों के योग से जो वस्तुए आ मिलो अथवा हो रही है वह नष्ट हो जाय तो उसके लिए चिन्ता करना मानव का कर्त्तव्य नही। विचार द्योतन बिना ज्ञान उत्पन्न नही होता जैसे प्रकाश के बिना कभी पदार्थ ज्ञान नही होता अत जब मानव यह चिन्तन करता है कि —

अह देवो न च अन्योस्मि, ब्रह्म वाहम न शोक भाक ।
सच्चिदानन्द रूपोऽह नित्यमुक्त स्वभाव वान ।।

अर्थात् मै देव हू और अन्य कुछ नही हू। ब्रह्म म लीन रहने वाला हू, स्वय ब्रह्मस्वरूप हू और चिन्ता करने वाला नही हू तो वह स्वय का पहिचान लेता है। मैं कौन हू उसे जान लेता है, सत्य की प्राप्ति हो जाती है और आत्मा मुक्त हो जाती है। आत्मा मुक्त होने पर मानव भयहीन हो जाता है और भयहीन होने पर वह कर्त्तव्य मार्ग पर आ डटता है और उन्नति उसके सामने अवनत हो जाती है प्रगति उसके चरण चूमती है और निराशा को वह चुनौती दे उठता है कि —

मैं अमा की रात मे भी चाद पूनम का खिला दू गा ।
गगन के तोड तारे आज सारे भूतल पर बिछा दू गा ।।

क्योकि 'मैं वो वला हू चाहे तो सीने से पत्थर को तोड दू' लेकिन यह महान शक्ति स्वय मैं पैदा करने हतु सर्व प्रथम चिन्ता रहित रहना मानव का परम कर्त्तव्य है अत राजस्थान के एक अज्ञात कवि के कथनानुसार —

मन मारो तन वस करो धरो जमी पर ढाल ।
काया नगर सूनो पडयो अपणो विरद सम्भाल ।।

अर्थात विचार द्योतन से मन को नियन्त्रण मे रखकर स्वय पर स्वय का नियन्त्रण रखो और अपने भविष्य की व्यर्थ चिन्ता मे आसुरी सम्पदा हिंसात्मक प्रवृत्ति त्यागने हतु अपनी ढाल जमीन पर रखकर अपने कर्त्तव्य को पहिचानो क्योकि चिन्ता के कारण कायारूपी नगरी सूनो है अर्थात चिन्ता से प्रसादगुण जो प्रभु प्राप्ति का साधन है वह अपने से दूर हो गया है जिससे "छीजत है छिन छिन मजुल मृदुला गात।" गुरू नानक देव ने इसीलिए कहा है कि —

चिन्ता ताकी कीजिये, जो अनहोनी होय ।
इस मारग ससार मे, थिर रहा न कोय ।।

भाग्य

मानव की यह जन्मजात कमजोरी है कि वह अपना भाग्य जानना चाहता है और अपना भविष्य जानने के लिए वह अपना बहुमूल्य समय तथा धन दोनो ही भविष्यवक्ताओ के चक्कर मे पडकर नष्ट करता है जबकि मानव का परम कर्त्तव्य-है अपने भविष्य का निर्माण स्वय करना है क्योकि मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वय ही है। वह चाहे तो चोर बन सकता है और चाहे तो शासक भी। कुछेक व्यक्ति तो ऐसे भी होते है जिन्हे अपना हाथ हस्तरेखा जानने वाले को दिखाने की बीमारी हो जाती है अथवा ज्योतिषी को अपनी जन्म कुण्डली ही दिखाते रहते है और भाग्य के भरोसे पडे रहते है और भाग्य की ऐसी विचित्र महिमा होती है और कि एक दु ख समाप्त भी नही होता कि दूसरा सामने आकर खडा हो जाता है। भाग्य क भरोसे रहने वाला कभी भी प्रगति नही कर सकता। प्रगति तो उनके चरण चूमती है जो भाग्य के भरोसे न बैठकर चिलचिलाती धूप को चादनी बनाते हुए कर्मपथ पर कर्मवीर बनकर आगे बढ़ते रहते हैं इसलिए —

किस्मत मे यह लिखा है किस्मत मे वो लिखा है।
किस्मत को कोसते हो कि किस्मत मे यह लिखा है।।

क्योकि भाग्य को कोसने वाले को भाग्य सर्वदा कोसता है। भाग्य के भरोसे सुषुप्तावस्था मे पडे रहने पर मानव बुरी दशा प्राप्त कर अपने ही भाग्य की निन्दा करता है और अपनी अकर्मण्यता के दोष को छिपाता है जबकि —

भाग्य भाग्य क्या करे जगत मे कर्म कर्म तू कर भाई।
ऐसी वस्तु नही जगत मे जो पुरुषारथ से न पाई।।

अत स्पष्ट है कि "भाग्य फलति सर्वत्र" का सिद्धात पुरुषार्थी व्यक्ति को भ्रमित नही करता। पुरुषार्थी पुरुष अपने भुजबल से जीविका आर्जन करता है और भाग्य के भरोसे बैठने वाले व्यक्ति प्राय एक युक्ति देते पाये जाते है कि :—

तू नर बहुत उपाय करयो पर तेरो उपाय धर्यो ही रहेगो।
लाख करयो धन काजन के हित भाग्य लिख्यो तो आप मिलेगो।

इस तरह की युक्ति देने वालों के लिए महान दार्शनिक मारकुश ओरोलियस का कथन महान दिशा बोधक है कि ' मनुष्य अपना भविष्य अपने दिनभर के विचारों पर बनाता है" तो न्याय दर्शन हमें सिखाता है कि वर्तमान भूत पर आधारित है तथा भविष्य गर्भाचित है अत यह स्वय सिद्ध है कि यदि आप वर्तमान को सुन्दर बनालेंगे भविष्य की व्यर्थ चिन्ता छोड कर तो भविष्य तो स्वत उज्जवल हो जायगा क्योंकि Luck is the other name of hard work अर्थात् श्रम सीकरों का पर्याय ही भाग्य है।

दार्शनिक मारकुस ओरोलियस के कथन की पुष्टि यह है 'कि मानव अपने दिनभर के विचारों से ही अपना भविष्य निर्माण करता है राजस्थानी इस सत्य लोक कथा से होती है कि एक गरीब औरत थी उसके एक लडका था। वह दिनभर कहा करता था मैं राजा बनूगा। मैं राजा बनूगा। वह गरीब औरत राजा के यहा नौकरी करती थी। एक दिन राजा ने उस बालक के मुह से सुन यह लिया कि मैं राजा बनूगा राजा ने सोचा हो न हो यह कोई पूर्व-जन्म का महात्मा है। राजा के कोई सन्तान नही थी अत उसने उस बालक को अपने पास रख लिया पढाया लिखाया और वह वस्तुत राजा बन गया। इस प्राचीन कथा में विचारशक्ति का महान सन्देश है। इसके विपरीत एक दूसरा उदाहरण देखिये।

एक बार एक राजा के पास एक तपस्वी गया। राजा ने उससे पूछा ' महाराज। मेरा भविष्य क्या है? यह बताव। महात्मा ने राजा को कहा कि अपना भविष्य नही जानना ही श्रेयस्कर रहता है क्योंकि वर्तमान की चिन्ता यदि हम करलें तो भविष्य की भगवान कर लेगा। भगवान उन्हीं की मदद करता है जो वर्तमान में अपनी मदद आप करते हैं। जब मनुष्य यह समझ जाता है कि जो होना है सो होयगा, जो नही होना है वह नही होगा अत जीवन में विषरूपी चिन्ता को त्याग कर अमृत का पान क्यों नही किया जाय क्योंकि होनहार अमिट है इसलिए राजन्‌। होनहार पर गर्व न करो अपनी करनी पर गर्व मत करो और सब कुछ ईश्वर के अधीन छोडदो क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपने अपने प्राप्त संस्कारावश सुख दुख भोगता है परन्तु राजा नही माना और उसने अपना भविष्य जानने की जिद्द की। महात्मा ने उसे कहा कि आज रात को जब तुम सोओगे तो तुम्हे स्वप्न में तुम्हारा भविष्य दिख जायगा। राजा को रात को स्वप्न हुआ कि उसके पुत्र ने अपनी माता की सलाह से राजा को बंदी बनाकर जेल में डाल दिया है और स्वय राजा

बन बैठा है। राजा घबराकर उठ गया रातभर उसे नींद नही आई दूसरे दिन तड़के ही वह महात्मा के पास गया। राजा को घबराया हुआ देख कर महात्मा ने कहा, क्यो राजन् भविष्य जानना अच्छा है या बुरा ? भविष्य जानने से व्यर्थ की चिन्ता हो जाती है और दिमाग की शान्ति नष्ट हो जाती है। ससार मे तीन तरह के लोग सुखी रहते है पहला अनागतविधाता अर्थात आपत्ति आने से पूर्व ही उसका उपाय सोचकर निराकरण कर देने वाला क्योकि चतुर मनुष्य जो कार्य बल से पूर्ण न हो उसे उपाय द्वारा उद्यम करके कार्य सिद्धि प्राप्त कर लेता है। उद्योग से ही दरिद्रता दूर होती है। जो भविष्य का विचार करके मन ही मन लड्डु खाता है वह अपना भाग्य अपने हाथो ही फोड़ता है इसलिए भविष्य का विचार करके प्रसन्न नही होना चाहिए बल्कि भविष्य बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। दूसरा व्यक्ति होता है प्रत्युत्पन्नमति वाला अर्थात जो समय की गति देखकर चलने वाला समयानुसार न चलने वाला व्यक्ति भी कष्ट ही भोगता है। तीसरा है यद्भविष्यमति वाला अर्थात होनहार को अटल मानने वाला तथा अपनी असफलता के लिए भाग्य को दोष न देकर अपने पुरुषार्थ से परिस्थितियो को अनुकूल बनाने वाला ही समाज म सही अर्थो मे मनुष्य कहलाता है। तेजस्वी पुरुष भविष्य एव भाग्य के चक्कर मे न पड़कर साहस और परिश्रम से ही सफलता प्राप्त कर लेता है। उसे साधनो की आवश्यकता नही होती। इसलिए राजन् ईश्वर उपासना करो जिससे स्वत ही भविष्य उज्जवल होगा और साथ ही सर्वदा अपना भविष्य उज्जवल ही देखो क्योकि सनिहते गुहा अर्थात ईश्वर सर्वदा साथ ही रहता है तो फिर भविष्य की चिन्ता क्या ? होनी को स्वीकार कर सब कुछ ईश्वर पर छोड देने से हमारे अन्दर एक शक्ति आती है जिससे हम जीवन सग्राम से सफलता प्राप्त कर सकते हैं। महात्मा के समझाने पर राजा को ज्ञान आ गया और वह अपने महल लौट आया।

राजा परिक्षित के पुत्र जन्मेजय ने भी अपने गुरुदेव महर्षि व्यास से जाकर एक बार अपना भविष्य जानने की जिद् की थी और कहा था कि मैं होनहार को टाल सकता हू क्योकि मैंने नाग जाति का नाश कर दिया है तो क्या अपना भविष्य नही टाल सकता। पूर्व तो व्याम जी न उसे समझाया कि "भावी मेट सकहि त्रिपुरारि" पर जब वह नही माना तो उसे महर्षि व्याम ने कह दिया तुम दक्षिण दिशा मे शिकार खेलने जाओगे। वहा एक नारी मिलेगी। तुम उसे पटरानी बनाओगे और फिर एक यज्ञ करोगे उस यज्ञ मे अठ्ठारह ब्राह्मण तुम्हारे हाथ से मरेंगे और ब्रह्म हत्या के शाप से तुम्हारे

कोढ फूट जायेगी और जनता तुम्हे शासन से अलग कर देगी। इतना भविष्य यदि बदल सको तो ठीक अन्यथा फिर मेरे पास आना। आखिर जन्मेजय होनी नही टाल सका और अन्त मे कोढी के रूप मे गुरु के पास आया तथा गुरु कृपा से बाद मे ठीक हुआ। इसलिए राजस्थानी के एक कवि ने कहा है —

होणी होय सो होय अण होणी होवे नही।
इण चिन्ता ने छोड'र इमरित क्यू पीवे नही।।

अब प्रश्न यह है कि अमृत का पान कैसे किया जाय ? इसका उपाय उपासना है। प्रत्येक मनुष्य के शरीर मे एक कुन्डलनी नाडी है जो नाभी के नीचे मूलाधार चक्र मे है। वह उपासना से ऊपर चढती है और चन्द्र पर्वत जो कि मनुष्य की बाई आख के ऊपर ललाट के बाये कोने मे है वहा पहुचती है तो अमृत वर्षा अन्दर म होती है और मनुष्य सर्वदा आनन्दमूर्ति कृष्ण की कृपा से आनन्दयुक्त रहता है। यही सच्चा आन्नद एव सुख है। वही वास्तविक सोमरस पान है। अपने जीवन को सुधारना, जीवन का कल्याण करना ही पुरुषार्थ कहलाता है। अत जो परमेश्वर की शक्ल पर मोहित हो जाते है उनका ग्रहनक्षत्र कुछ भी बिगाड नही कर सकता यथा —

मौत भी मुँह उनका तकती रह गई।
जो तेरी सूरत पे सदके हो गये।।

महाकवि तुलसी दास जी ने भी इस भाग्य और भविष्य के चक्कर मे न पडने हेतु कहा है कि —

लग्न मुहूरत शुभ घडी तुलसी गिनत न काहि।
जाके हरि है दाहिने सभी दाहिने ताहि।।

वस्तुत यह सत्य है कि ईश्वर मे निष्ठा रखने वाले को मृत्यु भी नही छेडती। गुरु ईश्वर का साकार रूप माना जाता है। एक बार जगदगुरु शकराचार्य एक साधु से शास्त्रार्थ करने गये और जब उस साधु की शक्ल देखी तो कहने लगे तुम्हारे मुख पर काल की छाया है। तुम चार दिन बाद मर जाओगे इसलिए मैं अब तुमसे शास्त्राथ नही करूगा। उस साधु ने अपने गुरु से जाकर सारी बात कही। गुरुदेव ने कहा कि तुम मेरा सिर अपनी गोद मे रखलो

श्रौर चार दिन श्रौर चार रात मेरे सिर के एक एक वाल को गिनो। उस साधु ने वैसा ही किया। पाचवें दिन गुरु ने अपने शिष्य से कहा कि अब तुम्हारा काल टल गया है। अत शकराचार्य के सामने वह साधु पहुचा तो वे चकित रह गये श्रौर कहने लगे कि जिसका गुरु इतना सामर्थ्यवान है कि काल के कराल चक्र को भी टाल सकता है उस गुरु का शिष्य भी अवश्य महान है अत मैं अब शास्त्रार्थ नही करना चाहता। अत प्रमाणित है कि भाग्य के भरोसे न रहने वाले निष्ठावान व्यक्ति का काल भी कुछ नही विगाड सकता।

ज्योतिष विद्या एव हस्तरेखा तथा अ कशास्त्र (Numerlogy) विज्ञान है तथा ज्योतिष कहते हैं आख की रोशनी को। ज्योतिष विद्या को जो बहुत ही कठिन एव गभीर गणित का विज्ञान है तथा वेद का अ ग है तथा सचमुच मे ज्योतिष मानव को यह ज्ञान देती है कि जव काल विपरीतता हो तो मनुष्य को सावधानी से चलना चाहिए। इस दृष्टिकोण से ज्योतिष एक वह मनोविज्ञान भी है जा मानव को यह समझा देती है कि अमुक बुराइया तुम्हारे अन्दर है इन्हे दूर करो श्रौर अमुक अच्छाइयो हैं इनकी अभिवृद्धि करो तथा जब महादशा, अथवा अन्तर या प्रत्युन्तर दशा खराव हो उस समय काल की गति देख कर जीवनयापन करो क्योकि ससार तो एक भव सागर है। सागर मे उतार-चढाव आयेंगे ही क्योकि यह इसका धर्म है अत. जव सागर मे चढाव आये अर्थात काल मदद कर रहा हो तो प्रगति पथ पर दृढ सकल्प से वढिये श्रौर जव सागर मे उतार आये तो डुवकी लगा लीजिये। महाकवि रहीम के दोहे के अनुसार कि —

रहिमन चुप हो वैठिये देखि दिनन के फेर।
जव नीके दिन आयेंगे वनत न लागहि वेर॥

भविष्य तो केवल भगवान ही जानता है। वशिष्टमुनि जैसे महान ऋषि द्वारा की गई भविष्यवाणी (राम के राज्याभिषेक की) गलत हो गई। कहा तो राम को राजगद्दी मिल रही थी श्रौर कहा मिल गया वनवास। काल की गति कोई नही जान सकता। काल भाग्य से वडा होता है। भाग्य वलवान है पर काल सुन्दर नहीं हो तो कुछ भी नही हो सकता।

एक बार काल श्रौर भाग्य मे वहस हो गई। काल ने कहा मैं वडा हू भाग्य ने कहा मैं। दोनो ने अपनी अपनी आजमाइश की। भाग्य एक लकड-

हारे के पास गया और उसे पांच सौ रुपये दिये और कहा व्यापार कर। लकड-हारे ने वे रुपये घर मे रखे और रात को सोगया। एक चोर उन रुपयो को चुरा ले गया। दूसरे दिन फिर भाग्य उसके पास आया और एक नौ लखा हार दिया तो उसे चील झपट ले गई। तीसरी बार भाग्य ने उसे दो कीमती लालें दी जिन्हे मुट्ठी मे बद किये लकडहारा घर जा रहा था। रास्ते मे तालाब आया। उसने पानी पीने को हाथ बढाया तो वे लालें हाथ से निकल गई। अ त मे काल (समय) आया और कहा मैं जीवन मे एक बार आदमी के पास आता हू जो मेरा फायदा उठा लेता है वह सुख पाता है अन्यथा दु ख पाता है इसलिए यह दो हजार रुपये लो और इस जगल का ठेका ले लो और इसे कटवाओ। लकडहारे ने वैसा ही किया और एक पेड कटवाया तो उसे वह नौ लखाहार चील के घोसले मे मिल गया। घर आते आते उसने दो मछ-लिया ली और जब घर पर उन्हे काटा तो उनमें वे दोनो कीमती लालें भी मिल गई इसी बीच एक आदमी आया और कहा कि आपके पाच सौ रुपये मैं चुराकर लेगया था। मुझे माफ करदो और अपने रुपये लेलो। सच ही है कि 'माली सीचे सो घडा ऋतु आये फल होय क्योंकि —

वडी बेताब है तबियत जो मचल जाती है
वक्त के साथ किस्मत बदल जाती है।
बदलती रहती है दुनिया की हर चीज हरदम।
अगर इन्सा जाग उठे तो आसमा की छाती दहल जाती है।

और इसीलिए उर्दू के एक शायर ने भी कहा है —

हुस्न मगरूर बना देता है।
इश्क मजबूर बना देता है।
कोई मजबूर नही करता किसी को,
लेकिन वक्त मजबूर बना देता है।

यह बात तो हुई भाग्य और समय की। अब जरा भविष्य वक्ताओ की हालत का नमूना देखिये। एक सेठ की दुकान पर एक पडित जी रोज पचाग सुनाने आते थे। सेठजी के दो पत्निया थी। एक सेठनी नीचे के कमरे मे रहती थी। बीच का मजिल मे सेठजी रहते थे और तीसरी मजिल मे दूसरी सेठानी। सेठजी एक दिन एक सेठानी के पास भोजन करते थे और दूसरे दिन दूसरी सेठानी के पास। मकर सक्रान्ति के दिन राजस्थान

मे खीचडा बनता है। दोनो ही सेठानियो ने शाम के वक्त खीचडा बनाया। तीसरी मंजिल वाले कमरे की सीढियां लकडी की बनी थी। जनवरी का महिना सर्दी कडाके की पड रही थी जब सेठजी भोजन करने गये तो दोनो ही सेठानियो ने कहा कि आज तो त्यौहार है इसलिये मेरे यहा भोजन करो। सेठजी लकडी की सीढियो पर खडे थे इसलिए नीचे के पाव तो एक सेठानी ने पकड लिया और ऊपर से हाथ दूसरी सेठानी ने पकड लिये और दोनो ही अपनी अपनी ओर सेठजी को खीचने लगी। नतीजा यह हुआ कि किसी ने सेठजी को नही छोडा। और रातभर सेठजी को पकडें रही उसी सीढियो पर सर्दी से सेठजी की हड्डिया जकड गई। दूसरे दिन सेठजी दुकान पर पहुचे और पडित जी पचाग सुनाने आये तो सेठ जी ने पूछा कि मेरा कल का दिन कैसा था और आज का दिन कैसा जायेगा? पडित जी ने मन मे विचार किया कि सेठजी की अभी अभी नई नई शादी हुई है और कल त्यौहार था ही इसलिये कल भी पकवान चक माल उडे होगे और आज भी माल ही उडेंगे। इसलिए उन्होने कहा कि सेठजी कल जैसा ही दिन आज भी है। जितना आनन्द आपको कल आया है उससे दुगना आज आयेगा क्योकि आपके मगल और शनि दोनो ही बलवान चल रहे है और चन्द्रमा तो कर्कराशि का उच्च का है। इतना सुनते ही सेठजी को गुस्सा आगया और पडित जी की पिटाई की और उसे भगा दिया।

सचमुच मे यही हालत आज भी है भविष्य वक्ताओ की इसलिए अपना भविष्य कत्तई मत पूछिये क्योकि आपकी दशा आपने सूझे, मूरख होय सो दूजा ने पूछे॥ इसलिय —

देखो नही हाथ की रेखा, उलटो मत पतरा पोथी।
मीन मेप कुछ कर न सकेंगे, ये सारी बाते थी थोथी॥
धरे हाथ पर हाथ न बैठो, उठो बढो कुछ काम करो।
तुम सब कुछ कर सकते हो, मत ईश्वर को बदनाम करो॥

आज देशकाल एव परिस्थितिया बदल गई हैं। आज सृजन का युग आगया है स्वय के भाग्य का निर्माण हमारे हाथो मे ही है। मुट्ठी मे है तकदीर हमारी और युग मुक्त कठ से कह रहा है कि मैं बदल गया इसलिए तुम भी क्यो नही खोल देते हो पृष्ठ इतिहास का नया अत आज हमारा परम कर्त्तव्य यह है कि विपरीत विचारो को हृदय मे स्थान न देकर

तत्वज्ञता का मर्म समझें भाग्य रथ को हम चलायें।
कर्म पथ पर छाप छोड़ें मार्ग नूतन नित बनायें।।

क्योंकि स्वर्गीय पंडित नेहरू जी ने भी हमें यही शिक्षा दी है कि हम सितारों अर्थात भाग्य नक्षत्र को ही देखते रहेंगे तो प्रगति नहीं कर पायेंगे क्योंकि "सितारों से आगे जहां और भी है" और ईश्वर भी उसी के पगों को चूमता है जिसे लालसा हो मृत्यु से भटने की।

अंग्रेजी के कवि बोमान्ट और फ्लेचर ने Honest Man's Fortune में कहा है कि—

"Man is his own star, and the soul that can,
Render an honest and a perfect men
Commands all right, all influence, all fate,
Nothing to him falls early or too late,
Our acts angels are, good or ill,
Our fatal Shadows that walk by us still"

अर्थात मानव स्वयं अपना मार्गदर्शी होता है और वह जीवात्मा मनुष्य को सत्यशील और पूर्ण परिपक्क बना सकता। वह सब प्रकाश को, सब प्रभुता को, एवं सब सौभाग्य को अपने अधीन रखता है। उसके लिए सबसे पहले या सबसे पीछे कुछ भी नहीं है। ऐसे भाग्यशाली को चाहे जब यथा समय सब कुछ प्राप्त हो जाता है। हमारे कर्म ही हमारे बुरे या भले फरिश्ते हैं, ये हमारी दैवी छाया स्वरूप है और सदा हमारे साथ रहते है अत हमें अच्छे कर्म कर अपने भाग्य का स्वयं निर्माण करना चाहिए।

धैर्य

जीवन एक सग्राम है। सकटो का समूह अनेक बार जीवन मे उत्ताल उदम्य तरगे तरगित करता है। मानव जीवन मे कलियो की आशा लिये उत्पन्न होता है परन्तु उसे काटो का ताज पहिनना पडता है। वास्तव मे जीवन आभतो से भरा पडा है। जीवन मे वास्तविक शाति तो स्वर्ग मे ही मिलती है या "हियपयोधि मे डूबने पर" सचमुच मे सघर्ष का नाम ही जीवन है। वह जीवन, जीवन नही जिसमे सघर्ष न हो क्योकि सघर्ष मे मानव को स्वय का, स्वय के धैर्य की परीक्षा हो जाती है, सचमुच मे तो —

वह पथ और पथिक ही क्या जिस पथ मे बिखरे फूल न हो।
नाविक की धैर्य परीक्षा क्या जब धाराए प्रतिकूल न हो ।।

किन्तु इस ससार सागर मे मानव अपनी जीवन नैया खेचता हुआ जब तूफान से टकराता है तो हतप्रभ हो धैर्य छोड बैठता है, जबकि सकट मे धैर्य के नेत्रो से व्यक्ति जिस महान सकट की ओर देखें, वही धूम्र के बादलो की भाति क्षण मे अदृश हो जाता है। पाश्चात्य पडित फ्रेंकलिन ने इसीलिए कहा है कि जिसके पास धैर्य है, वह जो कुछ इच्छा करता है प्राप्त कर सकता है। जीवन मे सफलता धैर्य से ही प्राप्त होती है। बिगडे से बिगडा काम भी धैर्य धारण करने से ठीक हो जाता है। दृढ व्यक्ति सदैव धैर्यवान होता है। चचल चितवन व्यक्ति सकट मे विचलित हो जल्दबाजी मे अपना जीवन और अधिक सकट मय बना लेता है। दृढ चित्तवान व्यक्ति सकट मे भी निश्चित काम से कभी नही रुकता और उचित कर्म से अपने पाव पीछे नही हटाता, यह विचार कर कि वृक्ष कटा हुआ भी फिर उग आता है, घटा चद्रमा भी फिर बढ जाता है, इसी प्रकार आया हुआ सकट समय आने पर टल जाता है "उतावला घोडा और बावला सवार" गिरते हैं अर्थात जल्द बाजी करने वाला व्यक्ति कष्ट पाता है। विदेशी विद्वान ला-फान्टेन का मत है कि धैर्य और परिश्रम से हम वह प्राप्त कर सकते हैं जो शक्ति और शीघ्रता से नही।

वास्तव मे जल्दबाजी विवेकी पुरुष का कर्त्तव्य नही है क्योकि अधैर्यवान व्यक्ति के पास विवेक बुद्धि नही होती। उसे कर्त्तव्याकर्तव्य का विचार नही

होता और जल्दवाजी मे :—

> विना सोचे विना समझे, वशर हो जो काम करता है।
> वो अपने हाथ से अपना, बुरा अन्जाम करता है।।

और फिर दीन, हीन, मलीन और दुखी होता है। जल्दवाजी का जीवन मे सदैव परित्याग करने के लिए एक कवि ने कहा है कि —

> कैसे काजहूँ है हाय घात सब बूडिजैं हैं,
> कादरता ऐसो कवों भूलिहू न करिये।
> करिवे विवेक के सुसाज निज जो मे पचि,
> रचिक उपाव निज व्याकुलाई हरिये।।
> ईसुर को याद कै जनीये पुरुषारथ को,
> "दत्त" कहे काहू के न जाय पावपरिये।
> हारिये न हिम्मत मुकोजै कोरि किम्मतो को,
> आपत्ति मे पतिराखि धीरज को धरिये।।

कई लोग तो अधैर्यतावश आत्मघात तक कर डालते हैं जबकि महाकवि तुलसीदासजी सकट का सामना करने के लिए महामत्र बता गये है कि —

> धीरज, धर्म, मित्र, अरु नारी।
> आफत काल परखिये चारी।।

वास्तव मे धीरज, धर्म, मित्र और नारी की परीक्षा सकट मे ही होती है। सकट के समय यदि ये चारो कसौटी पर खरे उतरते हैं तो हमारी इनके प्रति आस्था और विश्वास बढता है अन्यथा फिर इन चारों के प्रति हमारा विश्वास सदैव के लिए लोप हो जाता है।

जल्दवाजी आजकल हमारी आदत बनती जा रही है जो एक बहुत बुरी *प्रवृति है। यह आदत इतनी बढ गई है कि न तो हम लोग आजकल भोजन* धैर्य से करते हैं, न मनोरंजनार्थ धैर्य से जाते हैं, न रेल या मोटर मे धैर्य से बैठते है न दफ्तर या अपने जीवन यापन के कर्म पर धैर्य पूर्वक जाते हैं तात्पर्य यह है कि जीवन के हर क्षेत्र मे हमने धैर्य छोडकर जल्दवाजी अपनाली है, यह जानते हुए भी कि जल्दवाजी इन्सान का नही शैतान का काम है। सभी

उस प्रसिद्ध कथा को जानते हैं कि एक आदमी ने एक शेर पाल रखा था जो उसके हर इशारे पर नाचता था। एक दिन वह आदमी कुर्सी पर अखबार पढ रहा था। उसका हाथ नीचे लटका हुआ था। शेर भी पास ही बैठा था। उसने अपने मालिक का हाथ चाटना शुरू किया। शेर के मुह जब खून लगा तो उसने और तेजी से उसका हाथ चाटना शुरु किया। जब मालिक ने हाथ हटाया तो शेर गुर्राया। उस आदमी ने सोचा कि यदि इस समय धैर्य त्याग दिया तो यह शेर मुझे मार डालेगा इसलिए उसने वापिस अपना हाथ लटका दिया और शेर उसे चाटने लगा। मालिक ने फौरन अपने नौकर को बुलाया और हुक्म दिया कि फौरन चुपके से इस शेर को गोली मार दो। पहले तो नौकर भी इस सकट से घबराया किन्तु तत्काल धैर्य से साहस बटोर कर उसने शेर को गोली मारकर अपने स्वामी की जान बचाली। यह कथा प्राय सभी जानते हैं किन्तु फर्क पूज्य बापू के शब्दो मे इतना ही है कि शुभ विचार करना एक बात है, अमल करना अलग बात है।

अग्रेजी मे भी एक कहावत है Slow and Study wins the race स्लो एण्ड स्टेडी विन्स दी रेस" अर्थात शैन शैन उन्नति करने वाला जीतता है किन्तु फिर भी यदि हम जल्दबाजी से शमशान की ओर क्यो दौड रहे है? समझ नही आता, क्योकि जल्दबाजी अर्थात धैर्यहीनता एक मानसिक रोग है। जल्दबाजी विभाग मे एव शरीर के विभिन्न अवयवो मे तनाव पैदा करती है जिससे मन स्थिर नही रहता और बेचैनी बढती है तथा मन इतना अस्थिर हो जाता है कि जल्द बाज व्यक्ति कही भी स्थिर चित बैठ नही सकता। यदि ऐसा व्यक्ति कभी रोगी हो जाय तो एक इलाज पर स्थिर नही रह सकता और जल्दी जल्दी अपना इलाज अनेक प्रकार के चिकित्सको से कराकर अपने जीवन से खिलवाड खेल बैठता है। पाश्चात्य महाकवि शेक्सपीयर ने ऐसे लोगो के लिए कहा है कि वे कितने निर्धन हैं जिसके पास धैर्य नही है। क्या आज तक कोई जख्म बिना धैर्य के ठीक हुआ है?

मेरे एक मित्र चलने मे बहुत तेज थे और कोई काम करने मे अति जल्दबाजी करते थे। एक बार उनको मैंने सलाह दी कि आप इस जल्दबाजी को सदैव के लिए छोडद क्योकि जल्दबाजी से दिमाग की नसो मे तनाव पैदा होता है और दिमाग की नसें विचारा का आदेश मानती हैं। जल्दबाजी से हमारी विचारधारा पर कुप्रभाव पडता है और हम अकस्मात रोग के शिकार हो जाते हैं पर वे सज्जन नही माने। कालान्तर मे नतीजा यह हुआ कि वे

मानसिक रोगी हो गये और पागल खाने की शरण लेनी पड़ी। देवयोग से वे ठीक भी हो गये किन्तु उन्होंने जल्दबाजी की आदत नही छोडी। नतीजा यह हुआ कि अकस्मात तनाव से उनके दिमाग की नस फट गई और वे अकाल मृत्यु को प्राप्त हो गये।

मेरा एक जज साहब से घनिष्ठ सम्पर्क रहा है। एक बार उनपर अपनी सज्जनता एव सत्य न्याय प्रियतावश काल विपरीतता आई। कुछ स्वार्थी धनाढय लोगो ने उनसे नाराज होकर उन्हे जज के पद से अवनत कराकर मुन्सिफ बनवा दिया और उनका तबादला बहुत दूर करा दिया जब मैंने यह घटना सुनी तो मुझ बहुत दुख हुआ और मैं उनसे मिलने गया। रास्ते मे मैं सोचता जा रहा था कि सम्भवत जज साहब मनमे दुखी मिलेंगे किन्तु जब मैं उनके पास पहुचा तो उन्हे सदैव की भाति मुस्कराता हुआ पाया। जब मैंने उनसे पूछा कि जज साहब आपको तो पदोन्नति होने वाली थी किन्तु यह पद अवनति कैसे हो गई ? उन्होने उत्तर दिया "मास्टर साहब ! भगवान जो कुछ करता है अच्छा ही करता है। मेरी एक दिन बहुत बडी उन्नति होगी उसी की यह रूपरेखा है।" उनके इस धैर्ययुक्त उत्तर से मेरा मन गद्गद हो गया। कालान्तर मे वे जज महोदय अपनी सज्जनता, विद्वता एव धैर्य के फलस्वरूप बहुत शीघ्र जिला स्तरीय जज के पद पर नियुक्त कर दिये गये।

महाभारत मे एक पात्र है जिसका नाम नकुल है। "न अकुलायते इति नकुल" अर्थात किसी भी कार्य मे व्याकुल न होने वाले को, और जल्दबाजी न करने वाले को नकुल कहते हैं। जीवन मे सकट के समय जो व्यक्ति धैर्य-वान है वही नकुल है क्योंकि —

विपति बराबर सुख नही, जो थोडे दिन होई।
इष्ट, मित्र अरु बन्धु जित, जान परे सब कोई॥

जल्दबाजी के रोग का मुख्यकारण महत्वाकाक्षाए होती हैं जो थक टूट कर चूर होने पर भी मानव को कुछ न कुछ करने को बाध्य करती रहती है। महत्वाकाक्षी व्यक्ति की दशा बडी दयनीय होती है, ठीक उस खरगोश के समान जो शिकारी से बच निकला है और अन्धाधुन्ध भाग रहा है, भागते भागते वह थक गया है पर ठहर नही सकता, क्योंकि उसे पीछा कर रहे कुत्तो की आवाज सुनाई पडती है। सचमुच मे महत्वाकाक्षाए अपने स्वामी को नष्ट कर देती हैं अत अपनी महत्वाकाक्षाओ पर यदि हमारे विचारो का नियत्रण रहता है तो हम हडबडाहट की आदत से बच सकते है।

एक बड़े अधिकारी अहपूरित थे और दफ्तर मे पहुचते ही जल्दबाजी करते और शोर शराबा मचाते। नतीजा यह होता कि थोड़ी ही देर मे वे थक जाते और 'आज का काम आज' नहीं कर पाते फिर फाइलो का बस्ता घर पर ले जाते और रात को बारह एक बजे तक काम करते रहते। धीरे धीरे वे अस्वस्थ रहने लगे। उनकी जल्दबाजी के कारण उनसे सरकार के काम मे अनेक गलतिया हो गई जिससे सरकार ने उनको समय से पूर्व ही अवकाश प्रदान कर दिया। धैय हीनता के फलस्वरूप उनका एव उनके बच्चो का जीवन अन्धकारमय बन गया।

'चचल ही मन कृष्ण' अर्थात मन का स्वभाव तो अत्यन्त ही चचल है। यही भीम कर्मा वृकोदर-' है अर्थात महान कार्य करने वाला और सूक्ष्म भोजन करने वाला है अत धैर्य के अभ्यास से धीरता एव सकट का सामना करने को वीरता मानव मे पैदा हो जाती है। अत्यन्त धैर्य के अभ्यास से हमारे मे विवेक ज्ञान आजायगा और हमारी कल्पना शक्ति बढ जायेगी एव आत्मा बलवान हो जायेगी। यदि एकान्त मे नित्य बैठ कर आत्म निरीक्षण कर और अपने चित्त मे विचारो का सयम करें तो हमे विचार सिद्धि हो जायेगी और धीरे धीरे धैय की शक्ति बढ़ जायेगी।

इस अभ्यास को बढाने स हमे अपने भले बुरे का ज्ञान होने लगेगा और धीरे धीरे हमारा मन शान्त, प्रशान्त एव एकाग्र हो जायगा और हमारे अन्तर पट के द्वार खुलकर आत्म दशन हो जायगे अत अपने मन को शान्त रखना, जल्दबाजो न करना धैर्य रखना रात्रि मे निश्चिन्त सोना हमारी मानसिक एव शारीरिक शक्ति क विकास हेतु हमारा कत्तव्य है।

अपना कर्तव्य पूर्णतया शक्ति और युक्ति के साथ उत्साह एव धैर्ययुक्त अच्छी तरह करते रहने स ही समाज एव राष्ट्र का उत्थान एव कल्याण सभव है क्योकि उन्नति का प्रधान कारण धैर्य ही है। पाश्चात्य विज्ञान वाले नार्गो के मतानुसार धैर्य आशा करने की कला है। एक अग्रेजी भाषा के कवि ने मरम हो कहा है कि —

The wise and prudent conquer difficulties
By daring to attempt them Sloth and folly
Shiver and shrink at sight of toil and denger,
And make the impossibility they fear

अर्थात विवेकी, विचारी और दूरदर्शी धैर्य और प्रयत्न से ही कठिनाइयों का सामना करते हैं किन्तु आलसी और मूर्ख श्रम और भय से डर कर सकटो से हार जाता है तो नाश को प्राप्त होता है अत सकटो से हारकर, अकर्मण्य होना मानव का कर्त्तव्य नही है बल्कि सकट में धैर्य धारण कर सकट से बम-शूर बनकर लोहा लेना मानव का कर्त्तव्य है।

स्वावलम्बन

जीवन मे सर्वांगीण सफलता प्राप्ति का महा मत्र स्वावलम्बन है। स्वावलम्बी हुए बिना मानव प्रगति पथ पर अग्रसर हो ही नही सकता। क्योंकि —

> जो हुआ मोहताज गैरो का वो कब इन्सान है।
> वो है हैवानी से बदतर चू कि वो नादान है॥

इसीलिए पाश्चात्य पडित लाबुयेर के कथनानुसार ससार मे सफलता प्राप्त करने और उन्नत होने के दो ही मार्ग हैं एक तो स्वय स्वावलम्बी बन अपने श्रम द्वारा, और दूसरा दूसरो की मूर्खता से लाभ उठाकर। जो व्यक्ति दूसरो के अधीन ही काम करना चाहता है वह कभी सफलता प्राप्त नही कर सकता। एक राजस्थानी लोक कहावत है कि 'काम सुधारो तो अगे पधारो' अर्थात यदि अपना काम सुधारना है तो किसी के अधीन न रहकर उसे स्वय करो अर्थात स्वावलम्बी बनो एकलव्य सदृस। महाकवि तुलसी दास ने इसीलिए कहा है कि —

"पराधीन सपनेहु सुख नाही। देखहु कर विचार मन माही॥'
यह बात अक्षरस सत्य है कि जो व्यक्ति परिस्थितियो का दास न बनकर व्यर्थ विचार मे अपनी शक्ति का दुरुपयोग न कर सुषुप्तावस्था से जाग्रति जागृता अवस्था म आकर परिस्थितियो को अपना दास बनाने हेतु स्वावलबी बन चुनौती दे उठता है कि —

> मैं अमा की रात से भी चाद पूनम खिलादू गा।
> गगन के तोड तारे आज सारे भूतल पर बिछा दू गा॥

तो निश्चित रूपेण सफलता उसके चरण चूमती है। पशुओं के जीवन में सिंह स्वावलंबी जीव होता है। वह अपनी मदद आप करता है, किसी का झूठा शिकार नही खाता अपितु स्वयं शिकार करके खाता है। इसके विपरित कबूतर जो बिल्ली द्वारा आक्रमण किये जाने पर प्राण संकट मे होने पर भी आंख बन्द करके बैठ जाता है और उड़ता नही। स्वयं के पंखो में प्रकृतिदत्त उडकर प्राण रक्षा करने की शक्ति होते हुए भी, तो आत्म संयम के अभाव मे प्राण खो बैठता है। वस्तुत आत्मशक्ति एवं स्वात्म स्वरूप का ज्ञान मानव को स्वावलम्बी बनने पर ही मिलता है।

एक राजस्थानी सत्य लोक कथा है कि एक सेठ के दो बेटे थे। सेठ के मरने पर बड़े भाई ने छोटे भाई को घर से निकाल दिया और सारी सम्पत्ति का मालिक बन बैठा। छोटा भाई घर से निकलने के बाद एक अनाज के व्यापारी के पास पहुचा और उसके यहा नौकरी की। कुछ ही महिनो बाद उसने अपने कमाये हुए धन मे से जो रुपये बचा कर रखे थे। उनसे अनाज का व्यापार करना शुरू कर दिया। उसने अपनी दुकान मे एक खाली मटकी रख दी और रोज सुबह जब वह अपनी दुकान मे झाड़ू देता तो कचरे मे से एक एक दाना गेहू का चुगता और उस मटकी मे डाल देता। धीरे धीरे बूंद बूंद करके घट भर जाता और "कण कण जोड मण जुडे" हुए अनाज को बेचकर पैसे एक तरफ रख देता और वक्त आने पर व्यापार मे लगा देता। इस तरह धीरे धीरे वह छोटा भाई लखपति बन गया और कचरे मे से जो अन्न के दाने बचा बचा कर बेचता था उनके पैसो से उसने अपने नगर में धर्मशालाएं बनवाई, मन्दिर बनवाये, स्कूल बनवाये जिससे सारे नगर मे उसका सम्मान बढ गया। दूसरी ओर बड़ा भाई अपने व्यापार मे अपने मुनीम गुमाश्तो पर निर्भर रहता, फलस्वरूप वह कुछ ही वर्षों में दिवालिया बन गया और दर दर भीख मागने लगा।

इस कथा से स्वत प्रमाणित है कि स्वावलम्बन ही जीवन है, क्योंकि आत्म निर्भरता से ही भाग्य का सितारा मुस्कराता है। अन्यथा आत्मनिर्भरता खोकर हम दु खो के पहाड उठाते हैं। राष्ट्र कवि स्वर्गीय डा मैथिलीशरण गुप्त ने इसलिए राष्ट्र निर्माण के दृष्टिकोण से कहा है —

स्वावलम्बन की एक झलक पर,
न्योछावर कुबेर का कोष।

सचमुच मे जो स्वावलम्वी है वही स्वतन्त्रता का सुख भोग सकते हैं और ससार मे कुछ करके दिखा सकते हैं। जो मानव स्वावलम्वी नही वह तो अपना जीवन जीवित मुर्दे सदृश (Life Like Living Corp) विताता है। आत्मनिर्भरता पुरुषार्थी पुरुषो की आराध्य देवो है। जिसकी उपासना कर कर्मवीर मानव कर्मपथ पर दृढता से वढ कर सफलता प्राप्त करते हैं। क्योकि स्वावलम्बन के साधक के समक्ष वाधाओ का सिर झुक जाता है और आत्म सहाय व्यक्ति से यमराज भी घवराता है क्योकि भगवान उनकी ही तो मदद करते है जो अपनी मदद आप करते है। महर्षि वशिष्ठ इसी उद्देश्य से कहा है कि —

मूढे प्रकल्पित देव, तत्परास्ते क्षय गता।
प्राज्ञास्तु पौरुषार्थिय, पदमुत्तमत्ता गता॥

अर्थात भाग्य अज्ञानियो की कल्पना है जिसके भरोसे वे अपना ही विनाश करते हैं लेकिन विवेकी पुरुष स्वावलम्वी हो पुरषार्थ करके अपनी प्रगति आप प्राप्त करते है। हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य कवि स्वर्गीय श्री अयोध्या सिंह उपाध्याय ने कहा है कि स्वावलम्वी कर्मवीर पुरुष —

मानते जी की है, सुनते है सबकी कही।
जो मदद करते हैं अपनी इस जगत मे आप ही॥
भूल कर वह दूसरो का मु ह कभी तकते नही।
सिद्धि को पाये बिना वे वीर रुक सकते नही॥
पर्वतो को काटकर सडकें बना देते है वह।
सैकडो मरूभूमि मे नदिया बहा देते हैं वह।
आज जो करना है कर देते है उसको आज ही।
सोचते कहते हैं जो कुछ कर दिखाते है वही॥

यथार्थ मे मानव जब स्वावलम्वी बन जाग उठता है तो आसमान की छाती भी दहल जाती है। हमेशा आगे बढते रहने और मन मे विश्वास रखने से कठिनाइया दूर हो जाती है। और दिखाई देने वाली असम्भाव्यता स्वावलम्बन के बल से नष्ट हो जाती है। राम चरित मानस मे महाकवि तुलसी ने कहा है कि स्वावलम्बी बनने पर —

कौन सो काज कठिन जग माही।
जो नहिं तात होहि तुम गाही॥

भगवान श्री कृष्ण ने भी गीता मे कहा है कि "स्वे स्वे कर्मण्यभिरत संसिद्धि लभते नरः अर्थात जो स्वावलम्बी व्यक्ति अपने अपने कर्म के पालन मे निमग्न रहते हैं उन्हें ही सिद्धि सफलता प्राप्त होती है। जो मनुष्य घोर परिश्रम करते हैं वे ही जीवन मे विकास के सर्वोच्च शिखर पर पहुचते हैं। ईश्वर चन्द्र विद्या सागर ने स्वावलम्बी बनकर विद्या का सागर अपने आप को बनाया। स्वर्गीय लाल बहादुर शास्त्री जो कि एक निर्धन परिवार का बालक था स्वावलम्बन की शक्ति से ही भारत का प्रधानमंत्री बना। अब्राहम लिंकन भी स्वावलम्बन की शक्ति से अमेरिका का राष्ट्रपति बना। अनेक स्वावलम्बी व्यक्ति ही ससार मे महापुरुष कहलाये है जिनके जीवन चरित्र आज भी हमे प्रेरणा प्रदान करते हैं। यूरूप अमेरिका जापान और रूस को प्रत्येक नागरिक स्वावलम्बी है। यही कारण है कि आज वे चाद पर पहुच रहे हैं। वे स्वावलम्बी हो, मात्र अपना ही विकास नही करते अपितु अपने समाज एव राष्ट्र का भी विकास करते हैं। बुद्धि और विवेक होने पर भी यदि मानव स्वावलम्बी नही हो तो वह कदापि उन्नति नही कर सकता। स्वर्गीय कवि कैलाशनाथ चौबे ने लिखा है कि—जो स्वावलम्बी होगे वे ही —

ससार पट पर नाम अपना अमर कर जायेंगे।
जो जन अनाथों के लिए श्रम विन्दु नित टपकायेंगे।।

अत स्वय स्वावलम्बी होना तथा बालको को स्वावलम्बी बनाना आज प्रत्येक माता पिता का कर्त्तव्य होना चाहिए। पढने लिखने के बाद विद्यार्थियो को कुछ कमाना चाहिये। जो स्वावलम्बी और अध्यवसायी हैं वे हर हालत मे प्रगति करते हैं। आज का विद्यार्थी मात्र नौकरी करने के लिए ही पढता है। नौकरी पराधीनता है। इसीलिए हमारे ऋषि जीवन की स्वतन्त्रता मे सुख बता गये हैं। नौकरी को श्वान वृत्ति कहा है। हम श्वान वृत्ति ही अपने जीवन का लक्ष्य बनाये हुए है जबकि मनु ने कहा है कि सेवाश्ववृत्तिराख्याता तस्मस्ता परिवर्जयेत अर्थात सेवकाई को कुत्ता वृत्ति कहते हैं, अत वाणिज्य, उद्योग करना उचित है। सेवा कार्य (नौकरी) कदापि न करें। हितोपदेश मे लिखा है कि देखो, सेवक कितना मूर्ख होता है जो सदा उन्नति पाने हेतु सिर झुकाए रहता है। सुख मागने हेतु पहाड ढोता है। स्वय जीवित रहने हेतु अपने प्राणों तक की बलि

दे देता है। फिर भी उसका आर्थिक विकास नही होता। अत अपने विकास हेतु व्यापार उद्योग अच्छा है। स्वावलम्बी बन अपने हाथ से अपना काम कर खाना श्रेयकर है। रामचरित्र उपाध्याय ने स्वावलम्बन की प्रतिज्ञा वाले व्यक्ति को ही वीर मानते हुए कहा है कि —

त्रिभुवन हो जाता है आगन, जिन्हें प्रतिज्ञा की है लाज।
अपने ही बल को बल रहते, नही चाहते हैं साज समाज॥

क्योंकि ससार मे सुख के साथी बहुत होते हैं लेकिन जब बुरा जमाना आता है तो अपना साया भी मानव से जुदा हो जाता है और वक्त मानव को मजबूर बना देता है। लेकिन जो अपनी शक्ति को सचित कर बाधाओ को कुचलता हुआ अकेला बढता चला जाता है तो उस स्वावलम्वी पुरुष पर कराल काल के अत्याचारो का दसकन्धर 'धोखे से भी वार न कर पाता है। अत' सकटकाल में कभी घबराना नही चाहिए क्योकि घबराना ही किसी भी काम मे सबसे बडी बाधा है। यदि परिस्थितियां अनुकूल न हों तो उस समय भगवान को दोष न देकर गभीरतापूर्वक विचार कर अपना ही निरीक्षण करना चाहिए जिससे अपनी कठिनाईयो के कारण स्वत शात हो जायेंगे और हम फिर श्रम करने मे समर्थ हो सकेंगे क्योकि "श्रम ही से सब मिलत है, बिनु श्रम मिले न काहि"। अर्थात स्वावलम्बी एव परिश्रम शील व्यक्ति ही धैर्य और उत्साह गुण से सफलता प्राप्त करता है। स्वामी विवेकानन्द के शब्दो मे एक राष्ट्र जो अपने लिए साधारण भोजन तथा वस्त्र उपलब्ध नही कर सकता और जो सदैव ही अपने गुजारे हेतु दूसरो पर निर्भर रहता है उस देश के लिए गौरव की कौनसी बात है। ऐसे समय मे तो आप अपनी धार्मिक आस्थाओ को उतार कर फेंक दें और सर्व प्रथम अपने अस्तित्व के रक्षार्थ युद्ध के लिए तत्पर हो जायें।

स्वामी रामतीर्थ ने इसीलिए कहा है कि जिस पुरुष मे आत्म निर्भरता नही वह पुरुष कुछ भी नही कर सकता। आत्म निग्रह ही आत्म निर्भरता का मूल है। चित्त और इन्द्रियो की प्रेरणा को वश में रखना धर्म का मुख्य आधार है। आत्म निग्रह कर चित्त की चचल तरगो, उमगो को वश मे कर धैर्य धारण कर स्वावलम्बी बन प्रगति पथ पर बढना मानव का परम कर्त्तव्य है क्योकि दढता से कार्य करना ही आत्म निर्भरता का मुख्य उद्देश्य है। इसी

लिए उर्दू के एक शायर ने कहा है कि—

नजर रख उसकी रहमत पर न घबरा डूबने वाले।
उसी दरिया मे तूफा है ,उसी दरिया मे साइल है ॥

अध्यात्म ज्ञान प्राप्ति हेतु भी परायो के अधीन रहना उचित नही क्योकि अध्यात्म के क्षेत्र मे भी ढोंगी, ठग गुरू बहुत मिलते है। आत्मा ही आत्मा का गुरू है। आत्मा ही आत्मा की शत्रु है। अत यदि आत्म दर्शन की अभिलाषा है तो आत्म निर्भर हो साधना करना उचित है। कही जाना होता है है तो चलना ही पडता है। उसी प्रकार यदि आत्म दर्शन करना है तो स्वय साधना करनी ही पडेगी। उर्दू साहित्य के महाकवि गालिब ने इसी दृष्टि कोण से कहा है कि —

खुदी को कर बुलन्द इतना खुदा खुद।
बन्दे से पुछे कि बता तेरी रजा क्या है ॥

राजस्थान के सुप्रसिद्ध कवि श्री कृष्णकुमार सौरभ भारती के शब्दो मे —

साधक जब अलख जगाता है प्रतिमाए बोला करती हैं।
सप्तक पर अगुली धरते ही पाषाण शिलाए बहती है।
आलस को छोड कमर कसलो अपनी ताकत को पहिचानो।
मेरे युग के हे ! राम कृष्ण "सौरभ" की बोली पहिचानो ॥

वस्तुत आज अकर्मण्य बैठने का युग नही है। अत प्रगतिशील कवि सत्यनारायण लाला की कल्पना को कर्त्तव्य मे परिणत करने हेतु —

उठो नई किरण लिए जगा रही नई उषा
इठो, उठो, नये संदेश दे रही दिशा दिशा
खिलो कमल अरूण तरूण प्रभात मुस्करा रहा
गगन विकास का नवीन साज है सजा रहा
उठो, चलो, बढो समीर शख है बजा रहा
भविष्य सामने खडा प्रशस्त पथ बना रहा ॥1॥

अत आज फिर बिना किसी धार्मिक प्रहार के सामुदायिक विकास के युग मे जन समुदाय के स्तर को ऊचा उठाने हेतु स्वावलम्बन की प्रतिज्ञा करना मानव का कर्त्तव्य है कि —

हम मर्द समझा है कोई हीज नही है
दुनिया में गई गुजरी हुई कोई चीज नही है।
हम मर्द हैं गैरो का सहारा नही लेते।
तैराक हैं दरिया का किनारा नही लेते ॥

प्रसन्नता

जन्म मरण के चक्कर मे बंधा जीव चौरासी (लक्ष योनियों मे) चक्कर मे चक्कर काटता रहता है परन्तु उसे कही प्रसन्नता नही मिलती, अंत में परमदयालु भगवान उसे मानव जीवन देते हैं जिससे वह प्रसन्नता प्राप्त कर सके क्योकि मानव जीवन मे ही जीव बोल सकता है, हंस सकता है हसा सकता है, स्वयं जी सकता है और औरो को भी जिला सकता है, केवल मनुष्य योनी मे ही जीवन को महाप्रकृति ने प्रसन्नता प्राप्त करने की शक्ति प्रदान की है, क्योकि मनुष्य के शरीर मे एक आनन्दमय कोष प्रकृति ने प्रदान किया है जिससे हास्य की उत्पत्ति होती है और हास्य प्रसन्नता प्रदान करता है परन्तु मानव जीवन प्राप्त होने पर भी पुरुष अपनी प्रकृति (स्वभाव) के आधीन हो पशुवत प्रसन्नता प्राप्त करने से वंचित रहता है अपने विचारो ही के कारण कुछ एक तो अपनी आदत से इतने लाचार हो जाते है कि उनके ललाट पर सर्वदा सलवटें ही पड़ी रहती है, हमेशा उदास निराश और दिल जले ही नजर आते हैं क्योकि:—

दिल जलो का हाल न कभी बदलते देखा।
महफिले शादी मे भी शम्मा को (तो) जलते ही देखा॥

और "खुदा दिल जलों की नजर से बचाय" क्योकि ऐसे लोग ससार प्रेम एवं प्रसन्नतापूर्ण . सर्व खल्विद ब्रह्म होते हुए भी अपने ही विचारो के संकल्प विकल्पो की लहरो मे तरंगित हो स्वय को दुखी, विषादी, उदासीन, हताश, रोगी, दरिद्री, अशक्त बना लेता है। गीता मे हर्षशोक युक्त कर्त्ता राजस तथा शोक स्वभाव वाला कर्त्ता तामस बताया गया है तथा हर्ष शोकादि से रहित प्रसन्नचित्त वाला सात्विक कहा गया है।

निराशा एव उदासी मनुष्य के जीवन को सत्वहीन कर देती है। उदासी की उष्णता मे मन का सुकुमार कल्पनाएं शुष्क हो जाती है। नैराश्यता मस्तिष्क के स्नायु ततुओं को शून्य कर देती है, जिससे मानव चिडचिडे स्वभाव का हो जाता है और बात बात मे क्रोध करने लगता है जिससे ज्ञान शक्ति नष्ट हो जाती है और मानव विषादी (रुदन करने वाला) बन जाता है

और विषाद रोग पैदा करता है और मानव अनेक मानसिक रोगों का शिकार हो जाता है अतः स्वस्थ रहने के लिए प्रसन्नता परमावश्यक है।

जीवन मे उदासी के अनेक कारण होते हैं। जीवन एक संग्राम है। संसार रूपी सागर मे उतार चढाव आते ही रहते है क्योंकि "चक्रवत् परिवर्तन्ते दु खानि च सुखानि च" अर्थात् दुख सुख जीवन मे चक्रवत चक्कर काटते ही रहते हैं, "खुशी के साथ दुनिया मे हजारो गम भी होते हैं," जीवन एक खेल है जिसे प्राप्त कर सभी गम उठाते है तो फिर "गम से घबराना कैसा जब गम सौ बार मिला" अतः जब मनुष्य यह समझ लेता है कि मैं और मेरे मे सम्बन्धित सभी सम्बन्धी अपने अपने प्राक् संस्कारो वश सुख दुख भोगेंगे तो वह होनहार को स्वीकार कर लेता है और होनहार को स्वीकार कर लेने पर उसे प्रसन्नता प्राप्त हो जाती है, जो सांवरिया सेठ (ईश्वर) के चरणों मे अपना सर्वस्व समर्पण करते हुए आत्मसात करता है वही प्रसन्नता प्राप्त करता है क्योंकि आत्मसात होना प्रसन्नता का हेतु है आत्मा से परे होना वियोग का कारण है।

जीवन में अत्यधिक महत्वाकांक्षी होकर दिवा स्वप्न (ड्रीम) देखना भी उचित नहीं क्योंकि महत्वाकांक्षाएं कठिन तथा ही पूर्ण हो पाती है अतः एक लोकोक्ति के अनुसार यदि आकांक्षाएं घोड़े बनपाती तो प्रत्येक भिखारी के पास घोड़ा होता।

विदेशी विद्वान तालमद के कथनानुसार महत्वाकांक्षा अपने स्वामी को नष्ट कर देती है जिससे जीवन में उदासी आ जाती है, यही हाल कामनायुक्त व्यक्ति का भी होता है कामनाओ से दुःख और भय आता है अतः न तो स्वय से अधिक कामना करो न अपने मित्रो से और न ही अपने परिवार के सदस्यो से प्रसन्नतायुक्त रहने हेतु अपनी कामनाओ पर अपने विचारों द्वारा नियन्त्रण रखना नितान्त परमावश्यक है, इसका अर्थ यह भी नही कि अपनी समस्त महत्वाकांक्षाओं एव कामनाओं को नष्ट ही कर दिया जाय क्योंकि महत्वकांक्षा से भी आदमी प्रगति करता है और कामनाओं पर अधिक नियन्त्रण करने पर वही होता है जो सितार का तार अधिक कसने पर तार की दशा, अत प्रत्येक वस्तु अपनी सीमा में ही ठीक रहती है। गीता मे इसलिए भगवान कृष्ण ने कहा है कि जो पुरुष कामनाओं को त्याग कर ममतारहित, अहंकार रहित, स्पृहा रहित हुआ बर्तता है वही प्रसन्नता प्राप्त करता है। यही ब्राह्मी स्थिति है जिसमें मोह का नाश होकर मानव प्रसन्नता युक्त रहता है।

अपनी त्रुटियो एव दोषो को छिपाने से भी उदासी बढती है और इसीलिए गाधी जी ने कहा था कि अपने दोष स्वीकार करना महान गुण है। सोते समय यह विचार कर देखना कि आज मुझ से क्या त्रुटि हुई है और उस त्रुटि को फिर न करने हेतु सकल्प करना परमावश्यक है, क्योकि अपनी भूल स्वीकार करने से भी प्रसन्नता आती है। क्रोध लोभ, अह, गर्व, फरेब की हसी रज, डर, घृणा, बाह्य प्रदर्शन है थोथा दिखावा, आडम्बर जवानी के जोश मे होश खोना अपने कर्त्तव्य पर उचित समय पर न पहुचना, अपने कर्त्तव्य का सकुशलता से पालन न करना आदि हमारी भूलें हैं और भूल पर विचार कर भूल से शिक्षा ग्रहण करना मानव का कर्त्तव्य है क्योकि गये हुए तथा अप्राप्त धनादि पदार्थों, रिश्तेदारो, दोस्तो एव विषय सुखो का चिन्तन करके रोना, उदास रहना, वर्तमान की समस्याओ को सुलझाने के उपाय न करके मात्र उन विषयो मे चिन्तन ही करते रहना अथवा अपनी नासमझी, लापरवाही पर पश्चाताप करते रहना और उदासी जो कि सर्वदा त्यागने योग्य है में निमग्न रहना समत्व बुद्धि वाले मानव का कर्त्तव्य नही। अपने कर्त्तव्य कर्मो से विमुख रहने से, कुकर्म करने से प्रसन्नता घटती है अत अपने कर्त्तव्य को पूरा करते रहना, कुकर्मों से बचे रहना एव अपनी आत्मा से अपने को परे करने वाले दुरितकर्म तथा रजो गुणी तमो गुणी विचारो को सुधारने हेतु विचारना ही श्रेयस्कर है।

असत्य बोलने से भी प्रसन्नता घटती है। एक सत्य को छिपाने हेतु अनेक असत्य बोलनी पडती है। एक पाप को छिपाने हेतु सौ पाप करना भी मानव का कर्त्तव्य नही है, इसलिए राजस्थानी कवि भैरिया ने कहा है कि —

रहणा इक रगाह कहणा नही कूडा कथन।
चित्त उज्जवल चगाह भला जो जग मे भैरिया ।।

अर्थात सत्य बोलने के एक ही रग मे रगा हुआ व्यक्ति ही प्रसन्नता प्राप्त करता है। कुछेक अपने अपमान को भी सहन नही कर सकते और उदास हो जाते हैं जबकि हानि, लाभ, जीवन, मरण, यश, अपयश विधि हाथ है। अत मानव सम्मान को विषवत एव अपमान को अमृत तुल्य समझता रहे तथा दुखी होने पर भी ऐसी बात न करे कि जिससे दूसरो के चित्त को घाव लगे। अपनी वाणी से किसी को बिच्छू की तरह (वृश्चिक राशि वाले व्यक्ति मे यह आदत होती है) डक न मारे प्रतिशोध की भावना न रखे, अपने अन्तर मे राग

द्वेष न रखे क्योकि गीता के अनुसार स्वाधीन अन्त करण वाला पुरुष राग-द्वेष रहित अपने वश की हुई इन्द्रियो द्वारा विषयो को भोगता हुआ अन्त-करण की प्रसन्नता पाता है।

सम्पन्नता के अभाव मे कुछ लोग उदास हो जाते हैं। एक राजस्थानी कवि तो अर्थ के अभाव मे रोकर भगवान से कह उठा कि —

जे चित दें तो वित्त दें बिन वित्त चित्त न उदार।
एक दाता एक निर्धनी, दोय दोय धक्का न मार।।

सचमुच मे सम्पन्नता के अभाव मे व्यथित हो कुछ लोग तो अपना दुखडा दूसरों को सुना सुना कर रोने भी लगते हैं जबकि आदमी वह है जो खेला करे तूफानो से, अपना दुख किसी से न कहे और अपना अमृत (प्रेम प्रसन्नता) बांट दे जमाने भर को, अपने प्याले मे जहर भरले जमाने भर का भगवान शिव सदृश तथा विविध विघ्न बाधाओ को देख कर व्यथित न हो वही सब जगह काल मे फूला फला 'प्रसन्न रह सकता है क्योकि सम्पन्नता और प्रसन्नता एक ही वस्तुए नही अपितु दो विभिन्न वस्तुए हैं। प्रसन्नता एक मन की अवस्था है, मूड है जो बाहरी दशा पर निर्भर नही है। अपितु मानव की आन्तरिक स्थिति पर निर्भर करती है। सत्य की पहिचान प्रसन्नता से ही सम्भव है क्योकि प्रभु प्राप्ति हेतु जीवन मे प्रसाद गुण की ही प्रधानता है। अत पाश्चात्य विद्वान आरोनवर के मतानुसार अपने व्यापार को प्रसन्नता और प्रसन्नता को व्यापार मे परिणत कर देना जीवन का नियम है। यह बात अक्षरस सत्य है क्योकि —

यह दुनिया जो गम का भी गलत अन्दाज करती है।
खुदाई खूब वाकिफ है कि किस पर क्या गुजरती है।।

अत सदैव प्रसन्न रहने का प्रयास करना चाहिए और अन्तर की पीडा किसी से भी नही कहनी चाहिए क्योकि अपनी पीडा दूसरो से कहना भी एक मुसीबत है यथा —

मुसीबत का इक इक से अहवाल कहना।
मुसीबत से यह है मुसीबत ज्यादा।।

और इसीलिए "य य पश्यसि तस्य तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीनन वच" आप

जिस जिस को देखो उसे अपने दुःख के दीन वचन मत कहो और दुःख मे भी सदैव प्रसन्नचित्त रहो।

जो अभावो मे तृप्त रहकर समस्याओ पर गम्भीरतापूर्वक विचार कर कर्त्तव्य-मार्ग पर, प्रसन्नतापूर्वक दुखो से घबरा कर अभावो को मिटाने हेतु संघर्ष कर स्वयं मे शक्ति पैदा करता है क्योंकि "संघर्षो शक्तिरभिजायते" और जो कुछ लोग उसे कहते हैं कि तुम निकम्मे हो कुछ नही कर सकते उस अपमान को चुपचाप सहन कर लेता है और सफलता प्राप्त करके दिखा देता है तो जीवन मे बहुत बडी प्रसन्नता प्राप्त करता है। ईश्वर की उपासना करने से ऐसी शक्ति प्राप्त होती है और ईश्वर के चरणो मे सर्वदा अपना ध्यान रखने से प्रसन्नता मिलती है। प्रसन्नता ईश्वर की प्रसन्नता पर प्राप्त हो जाती है और प्रसन्नता प्राप्त होने पर सम्पूर्ण अभावो का अन्त हो जाता है और उस प्रसन्न चित्त वाले पुरुष की बुद्धि भी अच्छी तरह स्थिर हो जाती है। अधिक विषय भोगों से भी प्रसन्नता घटती है क्योंकि पुरुष में ईश्वर पौरुष्य रूप में होता है जो वासना मे नष्ट होता है। वासनात्मक प्रसन्नता पूर्व तो आनन्द देती है पर उसका अन्त दुखदाई होता है इसीलिए भर्तृहरि ने कहा है कि जो शून्य स्थान में निर्मल ध्यान करता है तथा जिसके समस्त विकार नष्ट हो गए हैं ऐसा योगी प्रसन्न होकर सुख पूर्वक रहता है और संयमशील, शान्त, सबमें समान व्यवहार रखने वाले सदा प्रसन्नचित्त वाले मनुष्य के लिए सर्व दिशाएं सुखमय हैं। गीता मे श्रीकृष्ण ने सन्तुष्ट अर्थात प्रसन्नचित्त सततयोगी, यतात्मा, दृढनिश्चय वाले और मन बुद्धि से भजन करने वाले भक्त को ही अपनी प्रसन्नता का प्रिय पात्र बताया है।

रिश्वत, जुआ आदि भी प्रसन्नता नष्ट करते हैं लेकिन कुछ लोग इन कर्मो मे प्रसन्नता प्राप्त करते है जो दुःख का कारण है अतः विद्वान हरबर्ट के कथनानुसार जो प्रसन्नता कलंकित करने वाली हो उसे ठुकराना मानव का परम कर्तव्य है क्योंकि जो रिश्वत प्राप्त कर प्रसन्नता प्राप्त करना चाहता है वह एक दिन अवश्य जेल जायेगा और साथ ही निर्धन भी हो जायगा।

कुछेक व्यसनात्मक प्रसन्नता शराब आदि नशीली चीजो का सेवन कर प्राप्त करते हैं। शराब ब्रह्मरन्ध्र, (सहस्त्र, कमलदल) अर्थात दिमाग के भीतरी भाग के केन्द्र मे पहुच कर चन्द्र जिसे शरीर बढ़ता है, को नष्ट कर

देती है और शरीर में गर्मी का माद्दा बढ़ जाता है जिससे प्रसन्नता नष्ट हो जाती है। नकली आमोद प्रमोद, सुरासुन्दरी भौतिक प्रसन्नता की चीजें निधनता पैदा करती है जिसे प्रसन्नता घटती है। फिर भी लोग पीते हैं, कुछ इसलिए पीते है कि पी पी कर जीते हैं और दिल के जख्म आंसुओं से सीते हैं, क्योंकि पूछने पर वे कहते हैं कि खुदा के घर से भी आती नही है मौत, इसलिये भी पीकर बेमौत जिन्दगी जीते है। पर इस तरह पी पी कर जीने वाले शीघ्र ही मानसिक एवं अन्य अनेक रोगों के शिकार हो जाते हैं। ऐसे व्यक्ति यदि संगीत का रसमान अपने कानों से कर जीए तो कितना सुन्दर हो क्योंकि संगीत सुनने से अनेक रोगों का निवारण होता है। विहाग राग हृदय मे अनुराग पैदा करती है जिसे प्रसन्नता प्राप्त होती है जीवन मे जब रजनी काली हो तो एकान्त में स्वयं गाने से भी प्रसन्नता मिलती है।

परिवार के लोगों से परस्पर स्नेह, सौहार्द एवं परस्पर सहयोग के अभाव में भी प्रसन्नता घटती है अतः मनुमहाराज ने कहा है कि माता-पिता जमाता, भ्राता, पुत्र, पुत्री, पत्नी तथा अपने दास वर्गों से कभी लड़ाई न करें और करें तो प्रसन्नता की आशा छोड़दें क्योंकि इन सबसे विवाद न करने पर परस्पर प्रेम बढता है जिससे सब दुखो से मानव छूट जाता है तथा जो इन सबसे हार मानकर संतोष सहित इनकी बात सहन करता है वह सारे ससार को जीत लेता है और प्रसन्नता प्राप्त कर लेता है।

समाज में अनेक पत्नियां पतियों से दुखी है, अनेक पति, पत्नी, पीड़ित दल के सदस्य हैं क्यों कि :—

बांट सब्यो नही आपडो वैल तणी असवार।
मारयां चंगा नर नहीं नरां न चंगी नार।।

अर्थात पति पत्नी के जोड़े मिलाना भगवान शंकर का काम है जो नशेबाज है अतः पति के मनोवृतानुसारिणी (मन मुताबिक चलने वाली) पत्नी नहीं, और पत्नी के मनोवृतानुसरण करने वाला पति नहीं मिलता। फलस्वरूप मानसिक रोगों से पति पत्नी पीड़ित रहते है और दोनों के जीवनमें पास रहते हुए भी—

गमे दूरी से जिगर जलता है, अश्क आंखों से जारी है।
तपिश है, रंज है, गम है, अलम है, बेकरारी है।।

अतः पत्नी का कर्तव्य है कि पति को प्रसन्न रखे क्योंकि इसी में उसके

प्रसन्नता है और पति का कर्त्तव्य है कि पत्नी का पूर्णतया पालन करे, क्योंकि रक्षा करने वाले वे पति कहते हैं, पत्नी को गृहस्थी का प्रबन्ध का अधिकार देने, समानता का व्यवहार करने एव उनके साथ पवित्र स्नेह सम्बन्ध रखने पर वह प्रसन्न रहते हैं। पत्नी के प्रसन्न रहने से सब कुल प्रसन्न रहता है और स्त्री के अप्रसन्न रहने से सब कुल अप्रसन्न रहता है। अत पत्नी को प्रसन्न करने हेतु उसकी प्रशसा एव आदर करना भी पुरुष का कर्त्तव्य है जिसमे दोनो को ही प्रसन्नता प्राप्त होती है। यदि पत्नी कभी उदास हो नाराज हो तो उस वक्त पति को यह अस्त्र काम मे लेना चाहिए और उससे कहना चाहिए कि आज—

इक बर्क सरे तूर है लहराई हुई सी।
देखू तेरे होठो पै हसी आई हुई सी॥
बेकैफ सी बेनूर सी मुरझाई हुई सी।
हर चीज मे है तुझ बिन कमी आई हुई सी॥
बहार तेरी वजह से तो है निखार लाई हुई सी।
ये मेरी जिन्दगी तुझसे ही तो है मुस्कराई हुई सी॥

पति पत्नी के प्रेम एव सेवा से प्रसन्न रहता है। मनुमहाराज ने मनु स्मृति में लिखा है कि जिस कुल मे पति पत्नी प्रसन्न रहते हैं वहा कलह न होने से सुख मिलता है।

स्वच्छता की कमी से भी मन उदास हो जाता है। प्रसन्नता की प्राप्ति हेतु शरीर एव कपडे तथा मन की स्वच्छता की नितान्त आवश्यकता है। स्वच्छ वस्त्रो का चित्त पर प्रभाव पड़ता है। शरीर की स्वच्छता से शरीर सुदृढ रहता है जिससे काम करने मे मन लगता है। अच्छी पुस्तको के अध्ययन से एव सत्सगति से सुन्दर विचारो का विकास होता है और विचार ही एक ऐसी शक्ति है जिसके द्वारा समस्त ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है और ज्ञान प्राप्त होने पर पुरुष परम प्रसन्न रहता है। अत निज प्रसन्नता, समाज प्रसन्नता एव राष्ट्र की प्रसन्नता हेतु दिल दिमाग शरीर एव वस्त्रो को स्वच्छ रखना मानव का परम कर्त्तव्य है।

शरीर की क्षमता से अधिक कार्य करते रहने पर एव मनोरजन न करने पर भी उदासी आ जाती है जिससे मस्तिष्क मे तनाव पैदा हो जाता है तथा

मानव रोगी हो जाता है अत जीवन मे प्रसन्न रहने हेतु हास्य, विनोद एव मनोरजन भी आवश्यक है। दिन भर की थकान मिटाने हेतु, हसना भी जरूरी है। स्वामी रामतीर्थ के कथनानुसार हास्य वह यन्त्राश है जिसके प्रभाव मे जीवन रूपी यन्त्र बिगड जाता है। हसना दीर्घ आयु होने का सर्वोत्तमसाधन है क्योकि हसी अन्दर की गन्दी हवा शीघ्रता से बाहर निकालती है जिससे शुद्ध वायु शरीर मे जाती है और हम स्वस्थ रहते है। विदेशी विद्वान स्टर्न के कथनानुसार जब मनुष्य मुस्कराता है या अधिक हसता है तो तो वह अपने जीवन की वृद्धि करता है क्योकि हसी का नाम ही जवानी है और इसीलिए महात्मा गाधी ने एक बार कहा था कि मुझ मे यदि विनोद वृत्ति न होती तो मैंने बहुत पहले ही आत्म हत्या करली होती। सचमुच मे हसी मन की गाठे बडी आसानी से खोल देती है। मेरे मन की ही नही तुम्हारे मन की भी। फ्रास देश के निवासी अधिक प्रगतिशील इसलिए हैं कि वे प्राय हसते एव प्रसन्न रहते है क्योकि वे उस दिन को गवाया हुआ समझते हैं जिस दिन वे हसे न हो अत प्रसन्न रहने हेतु हसी जरूरी है। परन्तु अश्लील हसी मजाक एव अधिक हसी मजाक भी उचित नही रहती क्योकि अश्लील मजाक से विचार बिगडते हैं और फिर "रोग का घर खासी और लडाई का घर हासी" अत मनोरजन हेतु बच्चो के साथ खेलना अच्छा रहता है। मजा तो हसने का वह है जब मानव स्वय की गलतियो को याद कर अपने आप पर हसे और विचार करे कि भविष्य मे ऐसी गलतिया न करेगा कि जिस पर वह भी हसे और जग भी हसे अपितु ऐसे कर्म करेगा जिससे वह भी प्रसन्न रहे और अन्य भी प्रसन्नता प्राप्त करें।

जब कभी समस्याओ की गुत्थी विचारो से सुलझ नही रही हो तो और "जज्बए गम से घबराता हो तो दिल दर्द बनकर" तो उस समय स्वय से कह दो "मुस्कराओ कि जी नही लगता" एकान्त मे जाकर अपने अन्तर की शक्ति से, और कुछ काल हेतु समस्याओ को दिमाग से निकाल कर विचार शून्य एकात मे बैठ जाओ और वहो स्वय की आत्मा से "प्रसीद परमेश्वरी" तो निश्चित रूपेण प्रेम की शक्ति आपके पास प्रसन्नता के रूप मे आयेगी और आप हस जायेंगे, आनन्दित हो जायेंगे और अनुभव होने लगेगा कि आप आत्म विभोर हो नाच उठे हैं। आपके साथ कण कण नाच रहा है और मन मन्दिर मे महाशक्तिशालिनी मा शक्ति का सचार कर रही है। इससे शरीर मे प्रसाद गुण बढेगा जिससे आप प्रसन्न रहेंगे। हम हसेंगे तो ससार भी हमारे साथ हसेगा और रोयेंगे तो कोई भी साथ नही देगा क्योकि "नानक दुखिया सब

ससारा" और फिर बात साथ यह भी है कि जब जीव पैदा होती हैं तो वह राता है और जग सारा हसता है, प्रसन्न रहता है और जीव जब मरता है तो उसके मुह पर मुस्कान होती है समार रूपी जेल से मुक्ति पाने की परन्तु जग रोता है अत जीव का कर्त्तव्य है कि वह प्रसन्नता प्राप्त करने हेतु हसे। पुरुप को हसाने हेतु पत्नी बडी भारी मात्रा मे सहयोगिनी होती है क्योकि पत्नी की स्नेह भरी मधुर मुस्कान। पुरुप की शीघ्र कर देती है दूर थकाने। अत, पति-पत्नी को जीवन के हर उतार-चढाव मे परस्पर प्रसन्नतायुक्त ऐसे रहना चाहिए जैसे फक्कड लोग स्वय के लिए कहते है 'मस्त रहो मस्ती मे आग लगे बस्ती मे" परन्तु ध्यान रहे कि आसक्ति अधिक न बढ जाय क्योकि पत्नी का अपनी ओर आकर्षित रखने हेतु अपने अस्त करण मे उसको अनाशक्ति की भी आवश्यकता है अन्यथा वह फिर अधिक आसक्ति मे घृणा करने लगती है और फिर अधिक आसक्ति दोनो ही को अशक्त भी तो करती है जिससे प्रसन्नता नष्ट होती है।

कुछेक प्रेमाशक्ति मे "आशिक" के रूप मे इश्क मिजाजी मे जलते हैं क्योकि 'इश्क नाजुक मिजाज है बेहद। अक्ल का बोझ उठा नही सकता॥"

और

"जो गैरो की सूरत में होते है शैदा।"
वो दुनिया मे रजो अलम देखते है॥

सचमुच मे जलने की धुन है सबको पर जलना न जाने कोई' क्योंकि यदि जलना ही है तो जल जल कर हिज्रे यार मे जाना कमाल है", ब्रह्म सत्यम् जगत्मिथ्याम् (जगन्मियम्) जानकर अत —

जीओ तो ऐसे जीओ जैसे सब कुछ तुम्हारा है।
और मरो तो ऐसे कि जैसे कुछ भी तुम्हारा नहीं॥

क्योकि राग द्वेपादि से भरपूर सस्कार उदासता युक्त है। ज्ञानि पहिचानने हेतु मूढता है। सुख पहिचानने हेतु दुख है। प्रसन्नता पहिचानने हेतु उदासीनता बनी है जो उदासी की उन्मुखी मुद्रा (अपने गले के गड्ढे मे अपनी ठोडी को लगाकर सिर झुका कर ध्यान करना) मे अनुभूत होती है। अशांति अनावश्यक विचार-प्रवाह से हम अनावश्यक उदास हो जाते है तो फिर उदासीनता क बदले हमे उदासीनता ही तो मिलेगी और प्रसन्नता के बदले मे

प्रसन्नता ग्रत: सकल्प विकल्पों का नाश कर, देवेच्छा से प्राप्त वस्तु में संतोष मानने वाला दु ख सुख ग्रादि द्वन्दो से रहित मत्सर रहित, कार्य की सिद्धि ग्रसिद्धि को समान मानने वाला, ग्रनेक कर्म करने पर भी बन्धन मुक्त होने हेतु परम सत्य के स्वरूप मे लीन होकर, ग्राशा-निराशा रहित होकर विचार शक्ति द्वारा ग्रपने हृदय मे सद्विचारो के गम्भीर भाव भरकर स्वयं सद चित्त ग्रानन्द स्वरूप बन कर प्रसन्नता प्राप्त कर सकते हैं। फिर जीवन सर्वदा हेतु प्रसन्नता युक्त बन जायगा। पर ध्यान रहे कि उस व्यक्ति को ब्रह्मा भी प्रसन्न नहीं कर सकता जो ज्ञान के लेखमात्र से स्वयं को विद्वान समझता है। ग्रत. ज्ञानाग्नि मे ग्रपनी कुंठाग्रो को भस्म कर चाहे ग्रति दुस्तर हो पथ तेरा, विपदाग्रो ने तुझको ही घेरा तो भी प्रात: काल सूर्योदय पूर्व उठकर मन की वीणा छेड छेड कर सर्वदा गीत खुशी के गाना (प्रभु प्राप्ति हेतु) मानव का परम कर्त्तव्य है ग्रत: झूम झूम कर नाचो, गाग्रो खुशी के गीत। मेरे मानव मौत ग्रौर प्रसन्नता प्राप्ति हेतु "दिल दिमाग देकर कदमों पे होंगे कुर्बां" याने स्वयं को प्रभु की शरण मे समर्पण कर कहदो उस सर्व शक्तिमान से कि :—

जैसी तेरी खुशी हो सब नाच तू नचावे,
सब छान बीन करले हर तौर दिल जमा ले,
राजी हैं हम उसी मे जिसमे तेरी रजा है,
यहा यों भी वाह वाह है ग्रौर यों भी वाह वाह है।

संसार मे इस तरह रहने से मानव स्वयं प्रसन्न हो जायगा ग्रौर जब मानव स्वयं प्रसन्न हो जायेगा तो चिन्तामणि या गुण उसमे ग्राजायेगा फिर संकल्प विकल्प के त्याग देने मे ऐसी कौनसी ग्रभिलाषा है जो पूर्णत: सिद्ध नही होगी बशर्ते :—

डटे रहो कर्त्तव्य पर, जब तक दम मे दम रहे।
इसकी परवाह मत करो, खुशी रहे या गम रहे॥

प्रतिक्रिया

क्रिया (एक्शन) की प्रतिक्रिया (री-एक्शन) अवश्य होती है। श्रेय कर्म उपासना आदि करने पर जीवन में मानव पर श्रेय प्रतिक्रिया होती है जिससे वह प्रगति पथ पर अग्रसर होता है और प्रेम कर्म (वासना भोग आदि) की प्रतिक्रिया से मानव अवनत एवं अस्वस्थ्य होता है। जीवन में उपासना के माध्यम से शक्ति का सचय करना अति सरल है परन्तु शक्ति को जब्ब रखना अति दुर्लभ जैसे पहाड पर चढना अति दुर्लभ है परन्तु गिरना अति सुगम।

प्रतिक्रिया देने की प्रवृत्ति मानव मे जन्म जात होती है जिससे शक्ति ह्रास होता है। जैसे किसी ने गाली दी अथवा दुर्व्यवहार किया तो हम भी गाली के बदले यदि गाली दे या दुर्व्यवहार के बदले उस पर क्रोध करें तो यह प्रतिक्रियात्मक प्रवृत्ति कहलाती है लेकिन यदि हम अपनी इस प्रतिक्रियात्मक प्रवृत्ति पर नियत्रण रखकर यदि किसी के दुर्व्यवहार के बदले मे प्रतिक्रिया न देना अपना कर्त्तव्य मान लें तो हम जीवन मे बिना उपासना किये ही महान सत बन सकते है क्योकि प्रतिक्रिया न देने की प्रवृत्ति हमारे जीवन मे भौतिक एव अध्यात्मिक विकास करती है जिससे हमारा चरित्र निर्माण होता है। प्रतिक्रिया के सम्बन्ध मे एक राजस्थानी लोक कहावत है कि "जीभडली म्हारी म्हारी आल पताल, ठोलो खावे सामे लिलाड" अर्थात यदि मानव अपनी जीभ पर नियंत्रण नही रखता है और प्रतिक्रिया वादी होता है तो फिर समाज मे रस्ते चलते ही उसकी पिटाई होती है। इससे यह प्रमाणित होता है कि मानव का व्यवहार ही उसे उठाता-गिराता है क्योकि मृदुता, सज्जनता, इतर जनो के प्रति नम्रता का व्यवहार ही प्रतिदिन का सुनहरा नियम है जो प्रगति कराता है। महात्मा मनु ने इसीलिए कहा है —

अतिवादास्तितिक्षेत नावमन्येत कचन।
न चेम देह माश्रित्य बैर कुर्वीत केनचित्" (मनुस्मृति 6/47)

अर्थात लोगो के अपशब्दो को सहन करे, किसी का अपमान न करे, न किसी से शत्रुता करे तथा अपने चित मे सासारिक मनुष्यो को नाशवान जानकर किसी से प्रीति व बैर का ध्यान भी न करे तो मानव जीवन मे कल्याण को प्राप्त होता है।

पूज्य बापू ने इसीलिए कहा है कि क्रोध के सामने शक्ति, अवगुण के सामने गुण, गाली के बदले प्रेम और बुराई के बदले भलाई, यह धर्म है। बापू के इस कथन की पुष्टि एक राजस्थानी लोक कथा में होती है —

एक बार एक भिखारी एक सेठ से भीख मांगने गया। सेठ अपने काम में व्यस्त था अतः वह उस साधु की याचना न सुन सका। जब काफी देर तक याचना करने पर भी साधु को भीख नहीं मिली तो उसे सेठ पर क्रोध आगया और वह सेठ को गालियां बकने लगा। सेठ उसकी गालियां सुनता जाता था और मुस्करा जाता था पर पास बैठे मुनीम से अपने मालिक का अपमान सहन नहीं हुआ। उसने एक छड़ी उठाई और भिखारी को मारने ज्यों ही हाथ उठाया कि सेठ ने उसका हाथ पकड़ लिया और कहा "यह क्या नादानी करते हो! वह बेचारा मुझे कुछ दे ही रहा है। मुझसे कुछ ले तो नहीं रहा है। हमेशा याद रखो, गुस्सा किस पर करना, अपने पर। यह तो रोज करें दूसरों पर यह तो करने का कारण ही क्यों? प्रतिक्रिया के रूप में क्रोध मत करो क्योंकि चरित्रबल से ही बुरे और दुष्ट लोगों पर विजय प्राप्त करना मानव का कर्त्तव्य होता है। किसी की गलती पर उसे भला बुरा कह कर स्वयं को दोषी मत बनाओ बल्कि पछताने का मौका दो। किसी भी समय व्यक्ति का श्रेष्ठ गुण प्रतिक्रिया न देना है। क्या तुम नहीं जानते कि प्रतिक्रिया न देने की प्रवृत्ति एवं नम्रता के कारण रघु तथा मनु ने राज्य पाया, कुबेर भगवान के कोषाध्यक्ष हुए। गाधि के पुत्र विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राह्मण हुए।" सेठ की ज्ञान युक्ति सुनकर मुनीम की गर्दन झुक गई। और साधु अपने दुर्व्यवहार पर मन ही मन पछताने लगा। और स्वयं मन में कहने लगा "साधो मन का मान त्यागो" और चुपचाप वहां से चल दिया। उर्दू के महान शायर ने भी प्रतिक्रिया न देने हेतु कहा है कि —

न सुनो गर बुरा कहे कोई,
न कहो गर बुरा करे कोई,
रोकलो गर गलत चले कोई,
बख्श दो गर खता करे कोई।

वस्तुतः प्रतिक्रिया न देने की प्रवृत्ति सर्व श्रेष्ठ गुण है। जो काम स्त्री का सौन्दर्य करके दिखा सकता है वही प्रतिक्रिया न देने की प्रवृत्ति कर सकती है क्योंकि प्रतिक्रिया न देने की प्रवृति का प्रभाव तत्काल दूसरों पर पड़ता है। पूज्य बापू ने प्रतिक्रिया न देने की प्रवृत्ति के कारण ही अंग्रेजों को चरित्र बल

से पराजित किया क्योंकि वे यह जानते थे कि नम्रता, प्रेम पूर्वक व्यवहार तथा सहनशीलता से मनुष्य तो क्या देवता भी वश मे हो जाते हैं और उनमे आत्मविश्वास, आत्म ज्ञान और आत्म सयम तीनो ही प्रचुरमात्रा मे थे जो जीवन को परमशक्ति प्रदान करते है वापू इसीलिए कहा करते थे कि बुद्धिमत्ता ज्ञान का उचित व्यवहार है। कई व्यक्ति वहुत कुछ जानते हैं, परन्तु उतने ही मूर्ख होते हैं। अपनी अपनी जानकारी का उचित व्यवहार ही बुद्धिमत्ता है। दोष से ही हम सभी भरे हैं, अगर दोषमुक्त होने का प्रयास करना हम सब का कर्त्तव्य है। प्रतिक्रिया न देना चरित्र का वह रूप है जो मनुष्य को कर्त्तव्य मार्ग दर्शाता है। घृणा के द्वारा कभी घृणा पर विजय नही प्राप्त की जा सकती। प्रम के व्दारा ही घृणा पर विजय पाई जा सकती है। यही सनातन नियम है।

वापू के इस कथन की पुष्टि भी एक राजस्थानी लोक कथा से होती है —

एक पडित वहुत सहनशील था। उसके कोई पत्थर भी मार देता तो तो वह कभी प्रतिक्रिया नही देता। एक वार उसकी परीक्षा लेने एक विद्वान ब्राह्मण गया। पडित ने पडितानी से खीर पुडी वना कर उसको भोजन कराने को कहा। पडितानी थोडी ही देर मे रसोई वनाकर आगन्तुक को जिमाने लगी। वह विद्वान जब आधा भोजन कर चुका और पडितानी जब उसे और खीर परोसने आई तो उसने भोजन करना तो छोड दिया और पडितानी का हाथ पकड लिया और उसे जवरदस्ती घोडी वनाकर उस पर चढ बैठा। पंडित यह सब अपनी आखो से देख रहा था। उसने उस आगन्तुक को कोई प्रतिक्रिया देने के वजाय अपनी पडितानी से कहा कि पडितानी! जरा ध्यान रखना मेहमान कही नीचे न गिर पडे और इसके कही चोट न लग जाय। पडित की यह वात सुनकर वह विद्वान वहुत शर्मिन्दा हुआ और उसने माफी मागी तथा कहा कि मैं आपकी सहनशीलता की परीक्षा लेने आया था।

इसी प्रकार की घटना महात्मा वुद्ध के जीवन मे भी घटी है। वे एक वार गर्मी के मौसम मे एक ब्राह्मण के घर मे गये। ब्राह्मण ने उन्हे वहुत गालिया दी। जब वह गालिया देता देता थक कर चुप हो गया तो महात्मा वुद्ध ने उससे पूछा "विप्रवर। यदि आपके घर पर कोई अतिथि आता है तो

तो आपका कर्त्तव्य क्या हो जाता है।" "हम उसे आदर सहित घर मे बिठाते हैं और सुन्दर भोजन करवाते हैं। पंडित ने उत्तर दिया। यदि अतिथि की थाली मे अधिक भोजन रख दें और अतिथि उस अधिक भोजन को अपनी थाली से निकाल कर बाहर किसी प्याली मे रख दें तो क्या आप उस भोजन को नाली मे फेंक देंगे। महात्मा बुद्ध ने पुन उस पंडित से पूछा।" नही। नही।। यह तो मूर्खता होगी क्योंकि अन्न भगवान का स्वरूप है उसका दुरुपयोग करना महा पाप है। उस शेष भोजन को हम खा लेंगे।" पंडित ने उत्तर दिया। बुद्ध ने उससे फिर कहा, विप्रवर! आपने जो गालियों का भोजन मुझे परोसा। वह मैंने थाली के बाहर रख दिया है। अब आप इस भोजन को स्वय ही खा लेवें। 'महात्मा बुद्ध की ज्ञान युक्ति से वह ब्राह्मण बहुत शर्मीन्दा हुआ और उनका शिष्य बन गया। किसी के द्वारा गाली देने पर भी प्रतिक्रिया न देने हेतु भर्तृहरि ने कहा है कि —

ददतु ददतु गाली गलिमन्तो भवन्तो,
वयमपितद भावाद गालिदाने ऽसमर्था।

जगति विदितमेलोध्दयते विद्य मान,
नहि शशक विपाण कोऽपि कस्मै ददाति।।

अर्थात आप लोगो के पास गाली है अत मन चाहे जितनी गाली देवो। तुम्हारे पास उनका अभाव है अत हम गाली देने मे असमर्थ हैं। जगत मे यह प्रसिद्ध है जो जिसके पास है उसी को वह दे सकता है। कोई किसी को खरगोश का सीग नही दे सकता क्योकि वह है ही नही।

अब जहा सत तुकाराम की प्रतिक्रिया न देने की प्रवृत्ति की प्रतिक्रिया देखिये। गोगा पडित अपने समय माना हुआ काशी का विद्वान था। जब उसे मालूम पड़ा कि तुकाराम लोगो को वेदो पर व्याख्यान देता है तो वह उसके पास पहुचा और अपनी सोटी से तुकाराम को इतना मारा इतना मारा कि मारते मारते खुद बेहोश होकर गिर पडा। गोगा पडित को धरा पर धराशाही देख भक्त शिरोमणि तुकाराम उठे और उनके चरण दबाते हुए कहा, 'भगवान। आप मारते मारते थक गये। बहुत कष्ट हुआ आपको। मुझे क्षमा करें।" सत तुकाराम के इस व्यवहार से गोगा पडित पानी पानी हो गया और उनका शिष्य बन गया।

हितोपदेश मे इसीलिए लिखा है विजय प्राम्रता प्रदान करती है, तो महाकवि बिहारी ने प्रत्येक मानव के हित मे उपदेश किया है कि —

नर की अरु नल नीर की, एकै गति करि जोय ।
जैतो नीचो ह्वै चलें, तेतो-ऊचो होय ।।

महाकवि गालिब भी प्रतिक्रिया वादी नही थे । एक बार एक एक आदमी उनके पास गया और उन्हे गालिया दी और उनका बहुत अपमान किया परन्तु वे चुपचाप सब कुछ सुनते रहे । जब वह चप हो गया तो गालिब साहब ने उसे एक शेर सुनाया ।

करेगा बद क्या मुझसे वो अपनी बद शुवारी से ।
कि मैंने खाक भरदी मु ह मे उसके खाक्सारी से ।।

अर्थात बुरा आदमी अपनी बुराई से मेरा क्या बिगाड सकता है क्योंकि मैंने अपनी विनम्रता के बल से उसे नीचा दिखा दिया है ।

गालिव साहव ने लोगो को जीने की कला सिखाने हेतु प्रतिक्रिया वादी न बनने का महामन्त्र बताया है कि —

न बुरा मान अगर तुझको बुरा कहते है ।
होती आई है कि अच्छो को बुरा कहते हैं ।।

समाज मे कुछ लोग जन्म जात ही प्रतिक्रिया वादी होते है । प्राय आशिक्षित औरतो मे यह प्रवृति प्रचुर मात्रा मे होती है । कई ऐसे एक तो प्रतिक्रियारूप मे शाप तक दे उठती है और कह उठती है "तेरा सत्यानाश जाय" जीवो के शाप से व्यथित न होने हेतु राजस्थान के विद्वान पूर्वजो ने एक कहावत प्रचलित की जो यथार्थ मे सत्य भी है कि 'सती शाप देवे नही और फूहडराड को लागे नही" अर्थात सन्त आत्मा या शुद्ध आचार विचार वाला व्यक्ति कभी प्रतिक्रिया नही देता और क्षुद्र आत्माओ का शाप कभी सफूली भूत नही होता अत ऐसे जीवो से घृणा नही करनी चाहिए व पाश्चात्य विद्वान बर्नाडशाह ने इसीलिए कहा है कि किसी से घृणा मत करो । व्यक्तियो के दुर्गुणो से घृणा करो व्यक्तियो से नही तो जर्मन लोकोक्ति है कि घृणा करना शैतान का काम है, क्षमा करना मनुष्य का धर्म है, प्रेम करना देवताओ का गुण है ।

महत्ता के सुमन में नम्रता का सौरभ ही शोभा पाता है तो भर्तृहरि ने लिखा है कि चांडाल है अथवा ब्राह्मण, शुद्र है या तपस्वो या तत्वज्ञान से सुन्दर बुद्धि वाला कोई योगोश्वर है, इस प्रकार के शब्द कहते हुए मनुष्यों से सम्भाषण किये जाने पर भी क्षुब्ध न तुष्ट योगी लोग मार्ग में चले जाते हैं अर्थात प्रतिक्रिया देकर अपनी शक्ति का ह्रास नही करते क्योंकि योगी मे समता होती है ज्ञान होता है । सचमुच में विदेशी विद्वान फैंकलिन के कथनानुसार संसार मे कोई वास्तव में महान व्यक्ति नही हुआ जो वास्तव में सदाचारी, सदव्यवहारी न रहकर प्रतिक्रिया वादी रहा हो ।

ब्राह्मण को तो कभी प्रतिक्रिया देने वाला होना ही नही चाहिए क्योंकि भगवान कृष्ण के आदेशानुसार :—

शमो दमस्तप शौच क्षान्ति राजवं मेवच ।
ज्ञान विज्ञान मास्तिक्य ब्रह्म कर्म स्वभावजम् ।।

अर्थात अन्तःकरण निग्रह इन्द्रिय दमन धर्म हेतु कष्ट एवं मन इन्द्रिय और शरीर की सरलता आस्तिक बुद्धि शास्त्र विषयक ज्ञान, परमात्मा तत्व अनुभव ये ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म है ।

इसी प्रकार राजनीतिज्ञ को भी प्रतिक्रिया देने वाला नही होना चाहिए क्योंकि राजनीति क्षेत्र में जब नेता मे प्रतिक्रिया देने की आदत आ जाती है तो वह असफल होने लगता है चाहे वह होन हार ही क्यों न हो ।

अमेरिका के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन में यह गुण जन्म जात था जो उन्हें एक साधारण एवं निर्धन परिवार से राष्ट्रपति बना बैठा । उसका एक ज्वलन्त उदाहरण देखिये :—

एक बार वे एक पार्टी में बैठे चाय पी रहे थे कि उनकी पत्नी ने गर्म चाय की प्याली उनके मुंह पर फैंक दी । यदि वे चाहते तो पत्नी के इस दुर्व्यवहार पर उसे मृत्यु दण्ड देने तक सक्षम थे परन्तु वे पत्नी के इस अशोभनीय व्यवहार पर मात्र मुस्करा दिये । उनकी मुस्कराहट देखकर उनकी पत्नी की गर्दन शर्म से नीची हो गई ।

राजस्थान के भूतपूर्व मुख्य मन्त्री माननीय श्री मोहन लाल जी सुखाड़िया

मे वह गुण विद्यमान है यही कारण है कि वे भारत मे सबसे अधिक सयम तक शासन करने वाले मुख्य मन्त्री रहे। तथा इन्होने सत्रह वर्ष अविरलरूप से राजस्थान पर शासन किया। श्री सुखाडिया विपरीत से विपरीत परिस्थिति मे भी जानी दुश्मन को भी कभी प्रतिक्रिया नही देते और उनसे भी आदर एवं प्रेम एवं नम्रता सहित व्यवहार करते हैं। वे यह जानते हैं कि विनम्रता एव मुस्कराहट पूर्ण व्यवहार एक राष्ट्रीय गुण है। विनम्र लोग प्रसन्नचित रहते है और स्वस्थ भी। श्री सुखाडिया जी के सदैव स्वस्थ एव प्रसन्नचित रहने का मुख्य कारण उनका प्रतिक्रियावादी न होना ही है। प्रेम सहित शासन करना शासक का परम कर्त्तव्य है और सफलता की कुंजी भी, यही कारण है कि श्री सुखाडिया जी प्रत्येक चुनाव मे पूर्णत सफल होते रहे।

व्यापार के क्षेत्र मे भी विनम्रता का विनिमय व्यापार के विनिमय को आगे बढाता है। पाश्चात्य पडित कन्फ्यूशियस ने इसीलिए कहा है कि अपने प्रति दूसरो के जिस व्यवहार को तुम पसन्द नही करते वैसा व्यवहार स्वयं भी दूसरो के प्रति मत करो क्योकि शिष्टाचार के द्वारा ही मानव प्रगतिपथ पर अग्रसर हो सकता है। स्वेट मार्डन के मतानुसार शिष्टाचार शारीरिक सुन्दरता की कमी को पूर्ण कर देता है, दूसरो के हृदय पर विजय प्राप्त कर सकता है बिना शिष्टाचार के सौन्दर्य का कोई मूल्य नही है।

दफ्तरो का कार्य भी एक किस्मका व्यापार ही होता है। दफ्तरो मे अनेक अफसर एव बाबू प्रतिक्रियावादी है जिनमे बाबू लोग तो दबे रहते हैं परन्तु अधिकारी को तो "समर्थ को नही दोष गुसाईं" अतः अफसरों के दुर्व्यवहार से एव प्रतिक्रियात्मक प्रवृतियो से अधिकाश बाबूलोग बीमार एव मानसिक सन्ताप के रोगी है। यहा एक बात आवश्यक रूप से कहनी है कि अफसर (अधिकारी) चाहे कैसा भी हो वह सदैव यही चाहता है। कि उसके मातहत लोग उसका सम्मान करे, अनुशासन मे रहे क्योकि महान कूटनीतिज्ञ चाणक्य के शब्दो मे यदि :—

> दुष्ट भार्या शठं मित्र भृत्योश्चोत्तर दायकः।
> ससर्पे च गृहे वासो मृत्युरेव न सशयः॥

अर्थात यदि किसी की स्त्री दुष्ट हो दुष्ट मित्र हो और उत्तर देने वाला नोकर हो तथा सर्पवाले घर मे निवास हो तो उसकी मृत्यु है ही इसमे सशय नही है।

अत यदि अधिकारी दुर्व्यवहारी हो तो भी मातहत कर्मचारी को विनम्र होना चाहिए क्योंकि -

मधुर वचन ते जात मिट, उत्तमजन अभिमान् ।
तनिक सीत जल सो मिटें, जैसे दूध उफान ।। (कविवृन्द)

अधिकारियों को भी चाहिए कि वे अपने मातहत कर्मचारी का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कर प्रत्येक के साथ वैसा वैसा ही वर्ताव करें जैसा कि कर्मचारी है।

पाश्चात्य सुप्रसिद्ध विद्वान फ्रेंकलिन ने एक जगह लिखा है कि प्रतिक्रिया न देने मे प्रभु यीसू एव सुकरात का अनुकरण करो। वास्तव मे यह सत्य है क्योंकि भगवान ईसा मसीह को लोगो ने बहुत सताया पर उन्होंने कभी प्रतिक्रिया नही दी।

सुकरात की पत्नी उन्हे बहुत सताती थी। एक बार वे भीषण गर्मी मे बाहर से जब घर लौटे तो उनकी पत्नी ने गर्म गर्म उबलता हुआ पानी उन पर उढेल दिया जिससे उनके शरीर पर फफोले हो गये। इस पर भी उन्होने अपनी पत्नी को कहा, "तुमने कितना अच्छा किया कि गर्म पानी मुझ पर डाला। यदि ठण्डा डालते तो शायद् मुझे जुकाम हो जाता।"

सन्त तुकाराम के घर मे एक दिन आटा नही था अत वे खेत मे से गन्ने तोडकर ले आये रास्ते मे बच्चों ने गन्ने मागे तो उन्होने बाट दिये। जब घर पहुचे तो उनके हाथ मे मात्र दो गन्ने के टुकडे देखकर उनकी पत्नी आग बबूला हो गई और उनके हाथ से गन्ने छीनकर उन्हे बहुत पीटा परन्तु वे पाडुरग पाडुरग अर्थात हे कृष्ण हे कृष्ण करते रहे।

वास्तव मे गृहस्थ जीवन मे "बडका बोलीनार" अर्थात प्रतिक्रिया देने वाली और कटु बोलने वाली पत्नी मिल जाय तो वह मृत्यु का कारण होती है अत ऐसी गृह लक्ष्मी हो तो याद रखिये कि —

कछु कहि नीच न छेडिये भलो न वाको सग।
पाथर डारे कीच मे उछरि बिगारे अग ।।

अर्थात कभी प्रतिक्रिया रूप मे कीचड मत उछालो, हो सकता है कि तुम अपने लक्ष्य से चूक जावो किन्तु तुम्हारे हाथ तो गदे हो ही जायेंगे।

अत ऐसे सक्ट मे गृहस्थ एव सासारिक जीवन मे सुन्दर एव स्वस्थ जीवन जीने के लिए विद्वान तिरुवरलुवर के ये शब्द याद रखो कि धरती उनको भी आश्रयदात्री है जो उसका उत्खनन करते है इसी प्रकार तुम भी उनकी बातें सहन करो जो तुम्हे सताते है और तुम्हारा अपमान करते हैं, क्योंकि महानता इसी मे निहित है पर साथ ही बापू का यह उपदेश भी कर्तव्य मे परिणत करो कि तुम जिन्हे हीन समझो उनसे घृणा मत करो, उन्हे गले लगाओ, महान बनाओ।

भगवान महावीर स्वामी को लोग पत्थर मारते थे। कई बार उनके खून निकल आते थे परन्तु उन्होने कभी प्रतिक्रिया रूप मे किसी को वापिस पत्थर नही मारा यही कारण है कि वे महावीर कहलाये अत प्रेमपूर्वक जीने हेतु प्रतिक्रिया की प्रवृत्तिका त्यागकर महावीर सदृश क्षमाशील बन जाइये। गुरु नानक के जीवन मे भी अनेक लोगो ने काटे बोये उन्हें सताने मे कसर नही छोडी तथा हजरत मौहम्मद साहब को भी सताने मे लोगो ने कोई त्रुटि नही रखी लेकिन इन महापुरुषो ने कभी भी प्रतिक्रिया नही दी क्योकि यदि किसी को —

मारना है जीते जी तो, छोड दे अहसान कर।
वो आप ही मर जायगा, अहसान का मारा हुआ॥

तथा सफलता प्राप्त करने हेतु अपने काम से काम रखिये जिसे अग्रेजी मे Mind your own business and let the others alone कहा है क्योकि गीतानुसार "स्वे स्वे कर्मण्यभिरत स सिद्धि लभतेनर" याने अपने अपने कर्म का पालन सकुशलता से करने से सफलता मानव को मिलती है।

हम सब उस सच्चिदानन्द परमेश्वर के अश है और अपनी अच्छाईया तथा बुराईया पहिचानना हमारा परम कर्तव्य है। अत नित्य रात्रि को सोते समय आत्म निरीक्षण कर यह देखना कि मैं कही प्रतिक्रियात्मक प्रवृति का आदी तो नही बन रहा हू, प्रत्येक मानव का कर्तव्य है और शायर जौक के इस कथन पर विचार करना चाहिये —

तू भला है तो बुरा हो नही सकता, ए जौक!
है बुरा वही जो तुझ को बुरा जानता है,
और अगर तू ही बुरा है तो वह सच कहता है—
क्यो बुरा कहने से तू उसको बुरा मानता है।

अर्थात यदि कोई हमारी आलोचना करता हो तो हमे उसे ध्यान से सुनकर उसकी प्रतिक्रिया न कर शान्ति रख कर अपनी समालोचना करना चाहिए और अपने आपको सुधारना चाहिए।

———

मनुष्यता

मनुष्य किसे कहते हैं ? यह एक अजीब सा प्रश्न है और महाराज मनु के अनुसार इसका सीधा सा उत्तर है कि "मनु पुत्राश्च मानवा" अर्थात मनुष्य का बेटा ही मनुष्य है परन्तु ऐसी बात नहीं है क्योंकि व्याकरण से यदि मनुष्य शब्द का संधि विच्छेद करें तो इस प्रकार होगी मन+इष्य बराबर मनुष्य है। इष्य कहते हैं किरणों को चचलता को अत स्पष्ट हुआ कि मन की चचलता को नियन्त्रण मे रखकर चलने वाले व्यक्ति को मनुष्य कहते हैं और इसीलिये हमारे ऋषि हमे यह कहते आये है कि "मन के मते न चालिए, पलक पलक मन और।" मनुष्य शरीर धारण कर लेने से केवल मनुष्य मनुष्य नही होता सचमुच मे मनुष्य होना बडा ही कठिन कार्य है कोई भी व्यक्ति असुर बन सकता है। कोई भी देवता बन सकता परन्तु मनुष्य होना बडा ही कठिन है।

शेखजी साहब फरिश्ता हो तो हो। आदमी होना बहुत दुश्वार है ।।

महान शायर मिर्जा गालिब ने भी मनुष्यता पर कहा है कि —

वमकि दुश्वार है हर काम का आसा होना।
आदमी को भी मयस्सर नही इन्सा होना ।।

अर्थात ससार मे सरल कार्य ही अधिक कठिन होता है इन्सान बनकर रहना आसान नही। इन्सानियत का गुण पैदा करना बहुत मुश्किल है।

वस्तुत मनुष्यता, मोक्ष की इच्छा एव महान पुरुष का ससर्ग महान सौभाग्य से ही प्राप्त होता है। पाश्चात्य विद्वानो के मतानुसार ससार मे तीन प्रकार के मनुष्य होते है पहला डिस्ट्रक्टिव यानि नाशक, दूसरा ऑब्सट्रक्टिव याने बाधक और तीसरा कन्स्ट्रक्टिव याने सृजक। हमारे भारतीय दर्शन मे भी तीन प्रकार के मनुष्यो का वर्णन है पहला पशुवृत्ति वाला मनुष्य जो केवल भोग और विलास मे ही निमग्न रहता है। पशु शब्द की परिभाषा पर यदि विचार करें तो विदित होगा कि प्रकृत्या आशु गतिन-इति पशु अर्थात प्रकृति के अधीन होकर जो चलता है वही पशु है और इसीलिए महर्षि

वात्सायन ने कहा है कि प्रकृति विजायते पुरुष याने प्रकृति को जीतने वाला पुरुष कहलाता है जिसमे धारण, सृजन एव सहार करने की शक्ति हो उसे प्रकृति अर्थात नारी कहते हैं और जो प्रकृति के भोग म निमग्न रहते है वे पशु ही कहलाते हैं। यद्यपि वे दिखने म मनुष्य ही दिखते हैं। दूसरी किस्म मनुष्य की है असुर, जो अर्थ और अधिकार के लिए दूसरो को कष्ट पहुचा कर अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं ऐसे मनुष्य को समाज दुष्ट की सज्ञा दे देता है। मनुष्य की तीसरी किस्म देवता है जो अपना सर्वस्य त्याग कर दूसरो को देता है। अपने कर्तव्य का पालन योग कर्मसुकौशलम् को ध्यान मे रखकर करता है। सबसे प्रेम करता है, उसकी निगाहो मे ऊच-नीच, छूत-अछूत का भेद नही होता। वह सबकी सेवा करता है और वही मनुष्य कहा जाता है और इसीलिए स्वर्गीय राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने मनुष्य की परिभाषा की है कि "वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे।" हमारा भारतीय दर्शन भी हमे कहता है —

येषा न विद्या न तपो न दान
न चापि शील न गुणो न धर्म।
ते मृत्युलोके भुवि भारभुता,
" मनुष्य रूपेण मृगाश्चरति ।।

अर्थात जिसमे विद्या विवेक, सयम, दान, धर्म, सद्गुण, शील, स्नेह, सगठन नही है वह भूतल पर भाररूप पशु है। वास्तव मे आज मनुष्य ने भौतिकवाद को ही अपना आनन्द मान रखा है। वह यह भूल गया है कि मैं कौन हू ? कहा से आया हू ? कहा जाउगा ? मेरा कर्तव्य क्या है ? वह तेजी से बढ रहा है अज्ञानता की ओर, और उसका भविष्य अधकारमय होता जा रहा है। वह एक प्रबल बहाव मे बह रहा है और उसे पता नही कि इस लहर ही लहर मे किनारा कहा है ? जबकि भगवान ने विचार शक्ति दी है, निर्णय शक्ति दी है कर्तव्य के पहिचानने की, निर्माण शक्ति दी है अपना भविष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वय बनकर उज्जवल करने की, परन्तु आज का मानव इन बातो पर विचार करे तो स्पष्ट होता है कि—

अभी आदमी आदमी का है दुश्मन।
अभी आदमी को है समझा नही आदमी ।।

आज का मानव अविद्या के अंधकार में स्वयं फंसता जा रहा है और जब वह गर्त में गिर पड़ता है तो शैतान को दोष देता है और शायर विवश होकर कह उठता है :—

हंसी आती है मुझे हजरते इन्सान पर।
फैलेबद तो खुद करे लानत करे शैतान पर ॥

और इसी कारण आज हालत यह हो गई है कि :—

खुदा ढूंढे से मिलता है अगर इन्सान हो जोया।
मगर इन्सान को इन्सां बडी मुश्किल से मिलता है ॥

सचमुच में मनुष्य वह है जो भावुकता को त्यागकर निष्ठावान हो। बाधाओं से घबराने वाला न हो। दुःख-सुख में धैर्यवान हो जिसे गीता में "स्थित प्रज्ञ" कहा है क्योंकि—

आदमी वह है जो मुसीबत से परेशान न हो।
कोई मुश्किल नही ऐसी कि जो आसान न हो ॥

क्योंकि इस संसार का नाम भवसागर है। इसमें मानव जीवन में उतार चढाव आता ही है। जीवन एक यात्रा है। एक कठिन यात्रा जिसमे अनेक संकटों को झेलते हुए ऊबड़ खावड रास्तों को पार करते हुए मनुष्य को अपने लक्ष्य तक पहुंचना है। सत्य बोलना, बेईमानी न करना, क्रोध न करना, सद्बुद्धि रखना, इन्द्रियों को वश मे रखना मनुष्य का धर्म है। निर्व्यसन रखना, शूरता, कृतज्ञता और मित्रता का कर्त्तव्य निभाना, कर्त्तव्य पालन का तरीका जिसे गीता में योग कहा है जानना, उत्साह रखना, कृतघ्न न होना मनुष्य का गुण है। जगत की आत्मा सूर्य को भी ग्रहण लगता है। काल विपरीता सभी पर आती है तो फिर जो संकट काल मे बहुविघ्न बाधाएं देखकर घबरा उठे और जीवन संग्राम मे धनुष फेंककर अर्जुन की सदृश नपुंसकता धारण करले तो वह मनुष्य कैसा-?, जो अहंपूरित हो वह मनुष्य कैसा ? जिनकी कथनी व करनी में अन्तर हो वह मनुष्य कैसा ? मनुष्य का सबसे बड़ा कर्म है देश, समाज एवं राष्ट्र की मर्यादाओं को निभाते हुए आत्मतत्व को प्राप्त करे और यही आज मातृभूमि कह रही है कि :—

मजवहब को कोई ले ले बदले में मुझे दे दे।
सहजीव सलीके की इन्सान करीमे के ॥

मनुष्य का मूल्याकन करने का साघन उसका धन नही होता अपितु उसकी बुद्धि होती है आज राष्ट्र को वस्तुत बुद्धिमान, सच्चे मनुष्य की आवश्यकता है। अब प्रश्न उठता है कि मनुष्य बना कैसे जाय ? आत्म तत्व प्राप्त कैसे किया जाय तो इसका उत्तर विदेशी लेखक चैनिंग ने दिया है कि यदि तुम पढना जानते हो तो प्रत्येक मनुष्य स्वय मे पूर्ण एव ग्रन्थ है जिसका अर्थ यह हुआ कि मनुष्य यदि अपने आपके अन्तर मे पैठकर अपने आपको पहिचाने अपना आत्म निरीक्षण करे तो वह मनुष्य बन जायगा और अन्तर में जो निहित सत्य है जिसे ईश्वर कहते हैं जो अजर अमर है उसके साथ अपना योग याने मिलान कर लेगा तो वह आत्म तत्व को पहिचान जायगा जो परमानन्द का हेतु है अन्यथा जल सदृश चचलता रखने पर मनुष्य भटक जाता है जो मनुष्य ससार मे जितनी भलाई करेगा वह उतना ही ईश्वर के निकट पहुचता जायगा। स्वामी विवेकानन्द ने इसीलिए कहा है कि खुदा को खुश करना चाहते हो तो खुदा के बन्दो को खुश करो। क्योकि "आदम को खुदा न कहो आदम खुदा नही है। लेकिन खुदा के नूर से आदम जुदा नही है । अत स्पष्ट है कि मनुष्य जब अपने स्वरूप को पहिचानता है तब ही वह सही अर्थों मे मनुष्य बनता है।

यह मनुष्य जीवन बडी कठिनाई से मिलता है जिसका उद्देश्य स्वय का एव राष्ट्र का कल्याण एव विकास करना है। रामचरित मानस मे महाकवि तुलसी ने भी यही कहा है कि —

बडे भाग्य मानुष तन पावा, सुर दुर्लभ सद ग्र थन गावा।
बड भाग्य पाइय सत्सगा, बिनहि प्रयास होय मन भगा ।।

यह सत्य भी है क्योकि धन मित्र स्त्री भूमि के सभी भोग बार बार मिल सकते हैं परन्तु नही ऐसो जनम बारम्बार। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि—

न हलुवा बन जो चट कर जाये भूखे।
न कडुवा बन जो खाये वो ही थूके ।।

एक लोक कहावत है कि मनुष्य को समाज मे इस तरह रहना चाहिए जैसे आखो मे काजल रहता है न कि आख मे पडी काकरी सदृश जो खटकती रहे इसलिए हमारे पूवजो ने हमे आदेश दिया है कि

न जग को भूलो न हर को त्यागो जिन्दगानी से।
रहो दुनिया मे तुम ऐसे कमल रहता ज्यू पानी मे ।।

हिंसा

आज देश में अधिकारों की प्राप्ति हेतु हिंसात्मक प्रदर्शन एवं प्रवृत्तियों को कुछ लोगों ने अपना प्रधान कर्म बना लिया है लेकिन, हिंसा कभी भी अधिकार प्राप्ति का कारण नहीं बनती क्योंकि हिंसा विग्रहात्मक है जो नाश की जड़ है। वह सग्रहात्मक बनकर सृजन नहीं करवा सकती। हिंसा वियोग का कारण बनती है उसमें योग नहीं बनता। योग बिना कर्म-कुशलता नहीं आती। कर्मयोगी ही लक्ष्य तक पहुंचता है हठयोगी नहीं। स्वयं का नाश ही करता है। जो स्वधर्म को नहीं जानते वे ही हिंसा का आश्रय लेते हैं। युद्ध में शत्रु का संहार करना हिंसा नहीं। योजनाबद्ध कार्यक्रम बनाकर दुःख पहुंचाना हिंसा है धर्म का लक्षण हिंसा नहीं इसीलिए भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है कि —

> अयुक्त प्राकृत स्तब्ध शठो नैस्कृतिकोऽलस।
> विषादी दीर्घसूत्री च कर्त्ता तामस उच्यते ॥

अर्थात नाशक एवं आलसी ही तामस कर्त्ता है तथा जो कर्म अज्ञान व हिंसा से प्रारम्भ किया जाता है वह कर्म तामस है। बापू गीता के परम ज्ञाता थे और इसीलिए उन्होंने : अहिंसा परमोधर्म का पाठ पढ़ाकर संसार की महान शक्तियों को झुका दिया तथा अहिंसा के अस्त्र से आजादी प्राप्त की क्योंकि अहिंसा कायरों की नीति नहीं बलवानों का शस्त्र है। अहिंसा की भावना हिंसक को भी अहिंसक बना देती है। सर्प जैसे जीव भी अहिंसात्मक होते हैं। जब सब ओर से वह असहाय हो जाता है तभी हिंसा करता है अन्यथा अपने आप वह किसी को नहीं काटता। लेकिन आज हम अधिकारों की प्राप्ति हेतु हिंसात्मक प्रदर्शन करते हैं और यह भूल गये हैं कि कर्म का पालन करने वाले को तो अधिकार स्वतः प्राप्त हो जाते हैं जिस अहिंसा के अनुष्ठान से हमने आजादी हासिल की आज हमने उस आजादी का अर्थ मनमानी करने का बाना बना लिया है और आज अधिकारों की प्राप्ति हेतु हिंसात्मक प्रदर्शन करना ही हमने अपना कर्त्तव्य समझ लिया। यह तो सत्याग्रह नहीं कहा जा सकता कि एक पत्नी अपने पति से यह कहे कि मुझे सोने के जेवर बनवाकर दो अन्यथा मैं जान दे दूंगी यह तो दुराग्रह ही है। सत्याग्रह तो यह है कि पत्नी अपने दुश्चरित्र पति से यह कहे कि आप सही रास्ते पर आ जाएं अन्यथा

मैं आत्मबलि कर दूंगी। यदि एक बेटा अपने पिता से कहे कि मुझे तो कार लाकर दो नहीं तो मैं रेल से कटकर मर जाऊंगा तो समझदार और शक्तिवान पिता उस पुत्र से क्या कहेगा ? हमने बापू के सत्याग्रह का कितना दुरुपयोग करना प्रारम्भ कर दिया है जिसकी सीमा नहीं रही है। तोड़-फोड़, लूट खसोट, मार-काट के ये प्रदर्शन हमें ही नाश की ओर अग्रसर कर रहे हैं आज वस्तुतः यह विचारना हमारा कर्त्तव्य है कि —

कदम सूये मरकज नजर सूये दुनिया।
किधर देखते हो किधर जा रहे हो॥

क्या हिंसात्मक प्रदर्शन करना हमारा कर्त्तव्य है। क्या हिंसात्मक वृत्ति जो पशु वृत्ति से भी निम्न कोटि की वृत्ति है को त्यागना हमारा कर्त्तव्य नहीं ? क्या हम दैवी धरोहर स्वतन्त्रता सम्पदा की रक्षा हम अपनी हिंसात्मक वृत्तियों से कर सकेंगे क्योंकि एक सहस्र वर्ष में भी कठिनतया एक राष्ट्र का निर्माण हो पाता है परन्तु एक घंटे की हिंसात्मक कार्यवाही से वह धराशाई हो जाता है। कुरान शरीफ में लिखा है कि जो अपनी हिंसात्मक प्रवृत्ति पर काबू नहीं पा सकता वह स्वर्ग का अधिकारी नहीं है अतः आज वस्तुतः यह विचारना हमारा कर्त्तव्य है कि —

सम्भल ऐ इन्सां आज तू किधर जाता है।
समझकर देख तू अपना ही कोई घर जलाता है॥

हमारी इन हिंसात्मक प्रवृत्तियों पर आज संसार हंसता। सीमाएं आज सुरक्षित नहीं। आज आजादी को हड़पने नाग फुंफकार रहे हैं और हम ही स्वयं अपनी आजादी को तहस नहस करने पर आमादा है। जिन शहीदों ने अपने रक्त कणों के सुमन मां भारती की बलि वेदी पर चढाये हैं उनकी आत्माएं आज कह रही हैं कि —

चमन में तुम हो तुम्हें क्या खबर चमन वालो।
कफस में रहके जो सदमे उठायें जाते हैं॥

अतः अब भी सम्भल जाना हमारा कर्त्तव्य है। क्योंकि हिंसा एवं वासना की भूमि पर स्वतन्त्रता अंकुरित नहीं होती। स्वतन्त्रता ज्ञान के बीच उदित होती है। स्वतन्त्रता की रक्षा अनुशासन की शृंखलाओं से ही सुरक्षित रह सकती है।

यही उपदेश हमें स्वामी विवेकानन्द से मिलता है कि संसार हिंसकों के लिए नहीं सृजन करने वालों के लिये है अतः पलायन और संहार करने का प्रयत्न मत करो। सामाजिक जीवन में अधिकारों की रक्षा अहिंसा से ही सम्भव होती है। समाज में सुख एवं शांति की वर्षा हिंसा से सम्भव नहीं होती। समाज एवं राष्ट्र का कल्याण अहिंसा से ही होगा हिंसा से नहीं क्योंकि अहिंसा का सिद्धांत स्नेह सहानुभूति, सेवा, प्रेम, संगठन एवं "वसुधैव कुटुम्बकम" का पाठ पढ़ाता है।

भारत के निःस्वार्थ कर्मयोगी नेहरू ने एक बार कहा था आजादी महज एक सियासी चीज नहीं। आजादी तभी सही चोला पहिनती है जब जनता को उससे फायदा हो। आजादी से जनता को फायदा तभी सम्भव हो सकता है जब वह हिंसात्मक प्रवृत्तियों से उपर उठकर कर्मक्षेत्र में कर्मवीर बनकर उतरें तथा कुछ करके दिखायें। आज पूज्य बापू व नेहरू के नारों को दोहराने वालों की जरूरत नहीं जरूरत उनकी है-जो नाशक न बनकर सृजक बनें तथा उन नारों को साकार करके दिखाये। कर्महीन व्यक्ति ही हिंसक होते हैं। जिनके पास कर्त्तव्य की अवेहलना कर अधिकारों की प्राप्ति हेतु शिकायतों का बाहुल्य रहता है अतः आज हमें शायर आशफाक की उन पंक्तियों पर विचार करने की आवश्यकता है कि :—

वतन हमारा रहे शाद आम और आजाद।
हमारा क्या है, हम रहे रहे या न रहे॥

और आवश्यकता है योगीराज कृष्ण के आदेश पालन करने की कि कर्म करना ही मानव तेरा धर्म है तभी हम हमारे अधिकारों की प्राप्ति स्वतः कर पायेंगे अन्यथा हिंसात्मक कृत्यों से हम हमारा तो भविष्य अन्धकार में कर ही डालेंगे लेकिन साथ ही हमारी भावीपीढ़ी भी तिमिराछन्न हो जायेगी। यह भारत भूमि ही मां है श्री देव्यथर्वशीर्षम में भगवती मां कहती है कि अहम अखिलं जगत अर्थात सारा दृश्य जगत मैं ही हूं तो फिर मां की छाती पर हिंसा से घात करना सुपुत्रों का कर्त्तव्य नहीं होना है। सम्भवतः इसीलिए अब्राहम लिंकन ने कहा है कि जो हिंसक कृत्यों से अधिकारों की मांग करते हैं वे स्वतन्त्रता के अधिकारी नहीं और ईश्वर की सृष्टि दृष्टि में वे अधिक दिन तक अपनी स्वतन्त्रता कायम नहीं रख सकते।

प्रेम

हमारे हृदय मे अनेकानेक दिव्य शक्तिया है जिन्हे हम देख नही सकते किन्तु उनको हम विकसित कर उनका अनुभव अवश्य कर सकते है। हृदय मे एक अति ही विलक्षण शक्ति है जिसका नाम प्रेम है। जो हृदय को नवनीत सदृश कोमल बनाता है जो अतिशय समतायुक्त होता है एव जो घनीभूत आत्मभाव होता है उसे प्रेम कहते है स्वदेशभक्ति, पितृ भक्ति, ईश्वर भक्ति सबका मूल प्रेम है। सब दु खो की औषधि प्रेम है। भर्तृहरि ने कहा है कि जिसका जहा सच्चा प्रेमी है उसके लिए अमृत एव औषधि की आवश्यकता नहीं क्योकि वह प्रेमी स्वय अमृत पान करा देता है। क्योकि सब अभावो का पूर्णकर्ता प्रेम है इसीलिए महाप्रकृति ने अन्य सभी पदार्थों की भाति ही प्रेम की उत्पत्ति समस्त जीवधारियो के हृदय मे उनके जन्म के साथ ही की है। यह प्रेम ही केवल प्रेम है जो समस्त सृष्टि का सचालन करता है। क्योकि प्रेम मनुष्य मे, आर्य या मलेच्छ मे, ब्राह्मण या शूद्र मे यहा तक कि स्त्री पुरुष मे किसी प्रकार का भेद भाव नही रखता। प्रेम तो वह शक्ति है जिससे मनुष्य समस्त विश्व को अपना घर समझने लगता है। प्रेम ही है जो दैवी-शक्तिया प्रदान करता है, प्रेम भक्ति, मुक्ति प्रकाश प्रदान करता है । प्रेम ही मनुष्य मे भगवान की आराधना है। प्रेम की शक्ति अद्भुत है। प्रेम ही जीवन मे आनन्द का हेतु है। प्रेम ही साहस है, प्रेम ही बल है, प्रेम ही जीवन का अनन्त क्रम है। पाश्चात्य विद्वान डिजाराइली ने कहा है कि हम सभी प्रेम करने के लिए उत्पन्न हुए हैं यही अस्तित्व का सिद्धान्त है और एक मात्र अन्त। सच-मुच मे प्रेम करने का अर्थ है अपनी प्रसन्नता को दूसरो की प्रसन्नता मे लीन कर देना। विश्व को व्याप्त करने वाला, विश्व को दर्शन कराने वाला विश्व मे विश्व दृष्टि परिणत करने वाला प्रेम है। प्रेम जब समस्त विश्व मे व्याप्त हो जाता है तो "स भूमी विश्वतो वृत्वा अत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्" अर्थात् उस शुद्धरूप का दर्शन दशागुल मे होता है क्योकि प्रेम क्या है इस पर विचार करने से विदित होता है कि सब की एकता, सबकी समानता, सबकी अभिन्नता, सबकी सहायता, सबकी मधुरता, पवित्रता निर्मलता एव सबकी तत्परता है। प्रेम सबका मधुरभाव है सबका विरोध अभाव है। प्रेम का स्वरूप । है, अक्षर है, अदृश्य है, निरजन है, कूटस्थ है। प्रेम मनुष्य का जीवन

है, क्योंकि जीवन एक पुष्प सदृश है और प्रेम उसकी खुशबू है। प्रेम मनुष्य का सौभाग्य है। प्रेम मनुष्य का पराक्रम है। प्रेम को अंग्रेजी में लव (Love) कहते हैं। जिसका अर्थ है :—

L = Light = प्रकाश
O = Of = का
V = Virtue = गुण
E = Eve = Occassion = अवसर

अर्थात जीवन में गुणों को प्रकाश में लाने का सुअवसर प्रेम है क्योंकि प्रेम की विकास शक्ति अपरिमित है। प्रेम की विचार शक्ति अकुंठित है जो हर्षित करती है। प्रेम की ज्योति मे मुग्ध होकर पतंग के समान प्रेमानल में आत्मसमर्पण युक्त देह का विसर्जन प्रेम से मुक्ति है क्योंकि :—

जिन्हें है इश्क सादिक से यही कव वे याद करते हैं।
लबों पर मुहर खामोशी दिलों में याद करते हैं ॥
मुहब्बत के जो है कैदी न छूटेंगे वे जीते जी।
तड़फते है सिसकते है उसी को याद करते है ॥

सचमुच मे प्रेम की उपासना ही ईश्वर की उपासना है। भीलनी के झूंठे फलों का सेवन, कुत्ते का पांडवों के साथ स्वर्ग मे जाना और भगवान कृष्ण द्वारा अर्जुन का सारथित्व, सुदामा के तन्दुल गोपियों के साथ भगवान कृष्ण की रासलीला और "ताहि अहरी की छोहरियां छछिया भरी छाछ पै नाच नचावै" प्रेम का ही परिणाम है। प्रेम की आकर्षण शक्ति अद्वितीय है क्योंकि "जो जाहू के मन वसे तो ताहू के पास"। मिलटन के मतानुसार प्रेम विचारो को निर्मल करता है, अन्तकरण को उदार बनाता है, मनुष्य को तत्पर करता है और ईश्वर के पास पहुंचाता है। इडागेर्टलिंग पेनटे कोस्ट का इसीलिए कहना है कि इतने उदात्त बनो कि किसी पदार्थ के नजदीक से जाते हुए भी उसमे प्रेम को देखो क्योंकि प्रेम से कलाओ का आविष्कार होता है।

परमात्मा प्रेम का सूक्ष्म स्वरूप है और प्रेम परमात्मा का स्थूल रूप, जितने अंशों मे हम प्रेम करते हैं उतने ही अंशों मे हम परमात्मा मे और परमात्मा हमारी आत्मा में है और जितने अंशों मे हम प्रेम नही करते, हमारी आत्मा इस विश्व में या अन्यत्र कही भी परमात्मा से वंचित है। सभी

धर्म एव दर्शन शास्त्रो का आदर्श आराधना मदिर प्रेम है। दु खी जीवो को सेवा करने वाले महात्मा पुरुषा का यही सम्मिलित केन्द्र है। सभी कवियो ने, सभी भक्तो ने, सभी दार्शनिको ने प्रेम का पूजन एव प्रेम की स्तुति की है।

इस्लाम धर्म के ग्रन्थ हदीस मे लिखा है कि सभी प्राणी ईश्वर के परिवार रूप हैं और वही ईश्वर को अधिक प्यारा है जो उसके परिवार के साथ अधिकाधिक प्रेम करता है। तुम जानो अल्लाह का कायदा मोहोब्बत या प्रेम है कि जो अल्लाह के अर्श पर से दीख पडता है।

उपनिषदो ने भी प्रेम की महिमा गाते हुए मानव का कर्त्तव्य बताया है कि —

यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्ये वानु पश्यति।
सर्वं भूतेषु चात्मन ततो न विजिगुप्सेते। ततो न विचिकित्सते॥

अर्थात जो सभी प्राणियो को अपने आत्मा मे देखता है और अपने आत्मा को सभी प्राणियो मे देखता है, वह किसी से द्वेष नही करता और न ही उन पर सदेह करता है क्योकि प्रेम वह शक्ति है जो मानव मन के सभी भय भगा देता है।

वस्तुत प्राणी मात्र उसी ईश्वर का स्वरूप है। क्योकि गीता मे स्पष्ट भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है "ईश्वर सवभूताना हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति" याने ईश्वर सभी प्राणियो के हृदय मे निवास करता है। सबसे प्रेम करना सबका हित करना प्रेम का सदुपयोग है। अपना स्वार्थ सिद्ध करना एव निज स्वार्थ पूर्ति हेतु दूसरो का अहित करना प्रेम नही है अपितु पशुता है। विशेष व्यक्ति तथा पदार्थों मे प्रेम की आसक्ति मोह मे परिणत हो जाती है जो राग द्वेष पैदा करती है। राग द्वेप अनर्थ कारक होती है। अर्जुन को विशेष व्यक्तियो से मोह हो गया तो वह किंकर्तव्य विमूढ हो गया और गाण्डीव (पुरुषार्थ) उसके हाथ से छूट गया। भगवान ने उपदेश देकर उसका मोह दूर किया और उसे समझाया कि —

अद्वेष्टा सर्वभूताना मैत्र करुण एव च।
निर्ममो निरहकार समदु खसुख क्षमी॥

अर्थात विशेष व्यक्तियो मे ममत्व की आसक्ति और व्यक्तित्व के अहकार से रहित होकर दु ख सुख को समान समझकर सबके साथ यथा योग्य

प्रेम का वर्ताव करना चाहिए। पूज्य बापू ने इसी बात को सरल शब्दो मे कहा है कि प्रेम भरा हृदय अपने प्रेम पात्र की भूल पर दया करता है और स्वय घायल होने पर भी उससे प्यार करता है। जैन धर्म का सिद्धान्त है कि "सब प्राणियो के साथ मेरी मैत्री हो"—तो हमारे ऋषियो ने मित्रस्य चक्षुपा समीक्षा महें" अर्थात हम मित्र की आखो से ससार को देखें कहा है। यह अक्षरस सत्य वाणी है। व्यवहार यही बताता है कि जितना हम दूसरो के हृदय से अपना हृदय जोड़गे, सुखी होगे और जितना हम दूसरे मे दूर होते जायेंगे, दु ख को अपने पास बुलायेंगे। समाज शास्त्र का नियम है कि मानव एक सामाजिक जानवर है और वह कभी रोबिनसन क्रूसो सहना अकेला नही रह सकता। यह कथन प्रेम युक्त रहने से ही हम अपने अस्तिव की रक्षा कर सकते है की शक्षा हमे देता है।

ईसाइयो मे तो प्रेम को ईश्वर ही माना है। बाइविल मे प्रेम करने पर बार बार मानव जाति से आग्रह किया गया है कि हृदय की पूर्ण श्रद्धा के साथ परमात्मा से प्रेम करो। परमात्मा के प्रेम मे अपने आत्मा और मन को लगा दो। पडोसियो से ठीक उसी प्रकार प्रेम करो जैसा तुम अपनी आत्मा से प्रेम करते हो। सभी नियम और पैगम्बरो का आधार ये ही दो आज्ञाएँ हैं। सत ग्रेगोरी ने कहा है कि प्रेम स्वय ज्ञान है। समस्त ज्ञान की उत्पत्ति इसी से होती है। परिश्रम से जो काम सारे जीवन भर नही हो सकता वह प्रेम के द्वारा क्षण भर मे होना सम्भव है। बापू ने प्रेम को समझा और सोचा कि —

शासन मार से नहीं प्यार से जीता है।
भारत हिंसा नही अहिंसा की गीता है ।।

और उन्होने भारत की सारी जनता को हिन्दु-मुस्लिम, सिख, ईसाई को याने भाई भाई को प्रेम और एकता के सूत्र मे बांधकर भारत को अ ग्रेज दुश्यासनो के हाथ से जो कि भारत पर दुष्टवृत्युनासार शासन करते थे स्वतत्र करा दिया। यह प्रेम की शक्ति का उदाहरण है। बापू ने इसीलिए कहा है कि अपने प्रेम की परिधि इतनी बढानी चाहिए कि उसमे गाव आ जाएँ, गाव मे नगर-नगर, से प्रान्त, यो हमारे प्रेम का विस्तार सम्पूर्ण ससार तक होना चाहिए।

प्रेम बाजार मे विकने वाली वस्तु नही है और न ही उसमे ऊँच नीच, छोटे वडे का अन्तर है क्योंकि —

प्रेम न वाडी ऊपजे, प्रेम न हाट विकाय ।
राजा परजा जे रुचै, शीप देय ले जाय ।।

अर्थात् प्रेम खरीदने वाला चाहे राजा हो चाहे साधारण व्यक्ति दोनो को प्रेम की एक ही कीमत चुकानी पडती है और वह है जीवन और जीवन मे दान, त्याग, वलिदान एव हृदय मे शुद्ध भाव, शुद्ध विचार क्योंकि—

जहा भाव है भक्ति स्वय आ जाती है ।
जहा प्रेम है शक्ति स्वय आ जाती है ।।

जव ईसा ने कहा था कि अपने शत्रुओ से प्रेम करो तव समस्त ससार ने उनका उपहास किया । जव पूज्य वापू ने कहा कि हम अत्याचारी अग्रेजो पर अहिंसा के अस्त्र से प्रहार करेंगे तो लोगो ने उनकी मजाक उडाई किन्तु क्या हम उस कटु सत्य का मजाक उडा सकते है जिसके लिए ईसा ने क्रोस को अपनी मृत्यु का नही प्रेम का प्रतीक बनाया । महात्मा गाधी ने देश प्रेमवश सहर्ष सीने पर सहस्रो गोलियो की बौछार झेली ।

ससार के सुप्रसिद्ध महामानव सुकरात से एक वार उनके एक शत्रु ने कहा, "यदि मैं तुम से वदला न ले सकू तो मर जाऊँ ।" सुकरात ने तत्काल मुस्करा कर शान्त भाव से उत्तर दिया, 'यदि मैं तुमको अपना मित्र न बना सकू तो मर जाऊँ ।" कैसा सुन्दर उदाहरण है प्रेम का जिसमे हृदय की काई को तत्काल धो डालने की क्षमता है । पाश्चात्य पडित फ्रैकलिन ने इसीलिए कहा है कि यदि तुम प्रिय बनना चाहते हो तो प्रेम करो और प्रेम के योग्य वनो ।

यदि किसी व्यक्ति को कोई प्रेम नहीं करता तो इसमे कोई सन्देह नही कि उस व्यक्ति मे दूसरो से प्रेम करने का अभाव है अन्यथा "Love be gets love' अर्थात् हृदय को हृदय से राह होती है । यदि हमारे हृदय मे दूसरो के प्रति प्रेम का भाव है तो दूसरे क हृदय मे भी हमारे प्रति निश्चित स्पंदण प्र म उमडेगा क्योंकि प्रेम तो है तो हृदय स्पर्शी और इसीलिए एक उर्दू

शायर ने कहा है —

जज्वे इश्क सलामत है तो इन्शा अल्लाह ।
कच्चे धागे मे बधे आयेंगे सरकार चले ॥

एक बार एक बुढिया रामकृष्ण परमहंस के पास गई और उनसे निवेदन किया कि मुझे कोई उपासना का तरीका बतावें । तब उन्होने उस बुढिया से पूछा कि तुम्हे इस ससार मे किसी से प्रेम है ? बुढिया ने तपाक से उत्तर दिया कि मुझे किसी से प्रेम व्रेम नही है । बुढिया का उत्तर सुनकर रामकृष्ण जी ने कहा कि एक प्रेमहीन हृदय को प्रभु प्राप्ति स्वप्न मे भी सम्भव नही हो सकती इसलिए मैं तुम्हे ईश्वर दर्शन का रास्ता बताने मे असमर्थ हूँ । बुढिया अपना मुँह लटकाए लौट गई । सचमुच मे यदि हमें ससार म मनुष्य से तो क्या यदि किसी जानवर से भी सच्चा प्रेम है तो हम बहुत शीघ्र प्रभु दर्शन कर सकते हैं ।

एक राजस्थानी लोक कथा है कि एक गाँव मे एक बाबाजी रहते थे । एक दिन उनके पास एक जाट गया और हाथ जोडकर कहने लगा कि महाराज मुझे तो कोई भगवान से मिलने तरकीब बतादो तो मैं ससार सागर से तर जाऊँ । बाबाजी ने उस जाट से पूछा कि तुझे दुनिया मे सबसे प्यारी चीज कौनसी है । "महाराज मुझे तो मेरी भूरी भैस बहुत प्यारी लगती है ।" जाट ने उत्तर दिया । तब बाबाजी ने उसे कहा कि आज से उसकी सेवा खूब करना और अगली पूर्णमासी के दिन मेरे पास आना । जाट ने भैस की सेवा करनी शुरु की और महिने भर बाद बाबाजी के पास गया । बाबाजी ने उसे देखा और कहा भाई अभी कसर है इसलिए अगली पूर्णिमा के दिन आना । जाट ने फिर एक माह भैस की सेवा की और फिर बाबाजी के पास दूसरी पूर्णिमा के दिन गया और कहा बाबाजी आज तो मुझे कोई मत्र भगवान से मिलने का बतादो । बाबाजी ने फिर उसे कहा कि भाई अभी तुम्हारे मे थोडी कमी है अगली पूर्णिमा के दिन आना अभी और कमी है । जाट ने फिर एक माह तक और भैसे की सेवा की और तीसरी पूर्णिमा के दिन बाबाजी के पास गया । बाबाजी अपनी झोंपडी मे बैठे थे । उन्हे देखते ही जाट बोला, "महाराज ! मैं कैसे आपकी झोंपडी मे आ सकता हूँ । मेरा शरीर मोटा है और मेरे सीग भी चौडे है और आपकी झोंपडी का दरवाजा छोटा है ।" बाबाजी समझ गये कि अब इसे भैस से इतना प्रेम हो गया है कि इसमे तद्‍रूपता आ गई है । अब केवल इसके ध्यान को मोडना है । उन्होने उसे अपने

पास बुलाकर बिठाया और कहा कि अब तू एकान्त मे बैठ कर आख मीचकर तेरी भैस का ध्यान सुबह शाम किया कर। जाट ने वैसा ही करना शुरू किया। थोडे ही दिनो के अभ्यास से भैस का ध्यान करते करते जाट को भगवान की ज्योति के दर्शन हो गये। यह है प्रेम की तदरूपता का प्रमाण।

प्राय लोग प्रेम शब्द सुनते ही उसका अर्थ वासना से लगा लेते हैं किन्तु यह उनका भ्रम है। मु शो प्रेमचन्द जी ने इसका स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है कि प्रेम और वासना मे उतना ही अन्तर है जितना कचन और काँच मे। महाकवि रसखान ने प्रेम की व्याख्या करते हुए कहा है कि —

दम्पति सुख अरु विषय रस, पूजा निष्ठा ध्यान।
इनते परे बखानिए शुद्ध प्रेम रसखान।।

वस्तुत वासना मृत्युकारक है किन्तु प्रेम अमृत्व प्रदान करता है। प्रेम ने ही लैला-मजनू शीरीफराहद सोनी महीवाल मीरा आदि को अजर अमर किया है। प्रेम की फिलासफी (दार्शनिकता) बहुत गहरी है। केवल वही, जो प्रेम के बाणो से घायल हो चुका है, प्रेम की शक्ति पहिचान सकता है, प्रेम की फिलासफी समझ सकता है। प्रेम मे घायल मीरा विरह योग मे तडफ कर गा उठी थी —

हेरी मैं तो प्रेम दिवानी मेरो दर्द न जाने कोय।
घायल की गति घायल जाने जो कोई घायल होय।।

जैसे राम और काम एक साथ नही रह सकते वैसे ही प्रेम और काम एक साथ नही रह सकते। अपने प्रेमी से किसी प्रकार की कामना रखना प्रेम को नष्ट करता है प्रेम तो —

बिन गुन, जोवन, रूप धन बिन स्वारथ हित जानि।
शुद्ध कामना ते रहित प्रेम सकल रसखानि।।

हमारे दर्शनशास्त्रो मे इसीलिए नि स्वार्थ कर्मयोग सर्वश्रेष्ठ योग बताया है क्योकि प्रेम तो त्याग, बलिदान और सेवा चाहता है। भक्त शिरोमणि सूरदास जी ने कहा है कि —

देखो करणी कमला की, कीन्हो जल सो हेत।
प्राण तज्यो प्रेम न तज्यो, रूखो सरहि समेत।।

प्रेम की अटूटता, अविच्छिन्नता का वर्णन वृन्द कवि ने कितना सुन्दर किया है कि —

जैसो बघन प्रेम को, तैसी बध न और।
काठहि भेदै कमल को, छेद न निकरै भौर ।।

प्रेम तो केवल अपने प्रेमी पर दृढ निष्ठा, दृढ विश्वास एव दृढ धैर्य चाहता है । स्वामी रामतीर्थ का प्रेम मे देखिये —

आसन जमाये बैठे हैं दर से न जायेंगे ।
मजनू बनेंगे हम, तुम्हे लैली बनायेंगे ।।
बैठे हैं तेरे दर पै तो कुछ करके उठेंगे ।
या वस्ल ही हो जायगा या मर के उठेंगे ।।

सचमुच मे 'जीवन सूना प्रेम बिना" क्योकि प्रेम से भाई भाई की भावना से एक साथ रहने से बढकर और कोई आनन्द नही है, ऐसे ही चार साड थे जो प्रेम से एक जगल मे एक साथ रहते थे । उन्हे प्रेम से रहते देख उन पर कोई शेर हमला भी नही कर पाता था लेकिन उन्हे मोटा ताजा देख कर एक शेर का मन रोज उनकी शिकार करने को ललचाता था पर वह उनकी एकता शक्ति से डरता था ।

एक दिन उसने सोचा कि जब तक इनमे फूट पैदा नही होगी तब तक इन्हे मैं नही खा सकू गा इसलिए उसने मौका पाकर एक दूसरे के आगे एक दूसर की बुराई करनी शुरू की और उनका प्रेम तोड दिया । फलस्वरूप चारो साड एक साथ प्रेम से रहना तो दूर रहा एक दूसरे को फूटी आखो भी देखना छोड दिया ।

एक लोमडी शेर की चाल समझ गई । उसने एक दिन चारो सांडो को एक जगह इकटठा किया और समझाया कि कभी भी पराये जीव की भडकाने वाली बात पर भरोसा नही करना चाहिए और हमेशा प्रेम से रहना चाहिए क्योंकि फूट पैदा होते ही दो की लडाई मे तीसरा फायदा उठा लेता है किन्तु वे नही माने । नतीजा यह हुआ कि शेर मौका पाकर एक एक को बारी बारी स मार कर खा गया । सचमुच जिसमे फूट हो गई वे लोग किस काम के क्योकि वे तो नाश को प्राप्त होगे हो ।

वस्तुत प्रेम ही स्वर्ग का मार्ग है मनुष्यता का दूसरा नाम है और समस्त प्राणियों से प्रेम करना ही मनुष्य का कर्त्तव्य और यह जानते हुए भी हमने प्रेम के अभाव मे राष्ट्रीयत्व खोया है, धर्म खोया है, सर्वस्व खोया है और दासता की बेडिया सदियो तक पहनी हैं।

हमारी इस दयनीय दशा पर तरस खाकर पूज्य बापू ने हमे प्रेम सूत्र मे बाध कर स्वतत्र कराया किन्तु आज पुन भारतीय प्रेम भूल गये है और भाई भाई लडते है। देश मे साम्प्रदायिक झगडे हो रहे है जो हमारी स्वतत्रता की जडो को खोखली कर रहे है। हमारे कल्याण हेतु प्रेम की आवश्यकता है क्योकि प्रेम मानव को अजर अमर बनाता है। प्रेम हेतु स्वभाव की आवश्यकता है क्योकि सब मे ईश्वर अनाभूत है अतः प्राणीमात्र मे समभाव रखने से विश्व व्यापी प्रेम प्राप्त होता है। "तू भी बदल फलक कि जमाना बदल गया" क्योकि प्रेम दुर्लभ नही सर्वत्र सुलभ है। हर स्थान, हर व्यक्ति, हर प्राणी मे हम उसे प्राप्त कर सकते है। वास्तविक कठिनाई तो प्रेम मे यह है कि हमने हृदय का दरवाजा बन्द कर दिया है और निज स्वार्थ मे डूब गये हैं जबकि उदार हृदय व्यक्ति जिस जीव से प्रेम करते हैं, उससे अपना स्वाथ निकाल कर नही छोड देते किन्तु सदैव ही प्रेम करते है। कुत्ता पाण्डवो के साथ स्वर्ग गया यह प्रेम का ज्वलन्त उदाहरण है किन्तु आजकल सच्चे प्रेम का अभाव है जो हमे रसातल मे भेज रहा है—अत यदि हम प्रतिदिन मिलने वाले अनेकानेक व्यक्तियो से जरा सा मुस्कराकर बात कर जरा प्रेम से बोल ले, मीठा बोल ले तो प्रेम एक छोर से दूसरे छोर तक व्यापक होता जायगा और हमारे जीवन की पुस्तक मे प्रेम का एक नया अध्याय जुड जायेगा। तुलसीदास जी ने सर्वत्र प्रेम व्यापक करने हेतु कितनी सारगर्भित वाणी मे कहा है कि :—

तुलसी मीठे वचन ते, सुख उपजत चहु ओर।
वशीकरण इक मन्त्र है, तज दे वचन कठोर ॥

खूख्वार एव खतरनाक कठोर हृदयो मे भी प्रेम होता है। औरगजेब सदृश कठोर व निर्दयी व्यक्ति को हीराबाई नामक एक सगीतज्ञा से प्रेम था जिसने औरगजेब को शराब और अपने सगीत व नृत्य से पूर्णतः आसक्त कर रखा था। इस हीराबाई का नाम जैनाबादी भी इतिहास मे मिलता है। जैनाबादी की अकस्मात असमय मृत्यु ने ही औरगजेब को सगीत से घृणा दी और उसे अत्यन्त क्रूर बनाया।

सिकन्दर को वीरता से प्रेम था तो नादिरशाह को प्रेम था खूंख्वारता से। तात्पर्य यह है कि प्रेम मनुष्य तो क्या पत्थरों मे भी होता है जिसका प्रमाण उर्दू के एक शायर के निम्न शेर मे मिलता है—

संगे दिल प्यार किया करते है खूख्वारो को।
सान सीने से लगा लेती है तलवारो को।।

इस शेर ने संगे दिल व्यक्तियो से अर्थ पत्थर दिल इन्सानो से नही अपितु उन महान हृदय व्यक्तियो से है जो कण कण मे प्रेम की गंगा बहाते चलते हैं और सबको गले से लगाते चलते हैं। उनकी दृष्टि मे ऊंच नीच का भेदभाव नही होता, सम्प्रदावाद नही होता, फिरका परस्ती नही होती। स्वर्ग का द्वार प्रेम है। "वसुधैव कुटुम्बकम" सूत्र मे समस्त प्राणियों के प्रति प्रेम का व्यवहार करने का उपदेश हमारे ऋषियो का है। भगवान बुद्ध ने प्रेमयुक्त रहना मानव का परम कर्तव्य बताते हुए कहा है कि मुक्ति के लिए प्रेम की आवश्यकता है। जो प्रेम विशाल, सर्वगत एव सर्व प्राणियो में भरा हुआ है उसका कभी त्याग नही करना चाहिए। आओ महात्मा ईसा के शब्दो मे हम प्रतिज्ञा करे कि हम परस्पर प्रेम करेंगे क्योंकि प्रेम ही परमात्मा है, जो व्यक्ति प्रेम करता है वह परमात्मा की संतान है और उसे जानता है जो प्रेम नही करता वह परमात्मा को नही जानता क्योंकि वह प्रेम रूप है।

संसार मे शान्ति तलवार से नही मुहब्बत के जोर से ही सम्भव है मुहब्बत से बढकर जोडने वाली चीज दुनिया मे दूसरी नही है।

सचमुच मे प्रेम जादू की लकडी है, इसके स्पर्श की उपेक्षा करके कौन पडा रह सकता है? यह साधारण आदमी को भी असाधारण बना देता है। मनुष्य की समस्त प्रकृति को क्षण भर के अन्दर जगा देने वाला प्रेम ही है। इस प्रेम के अविर्भाव मे दुर्बल होने के कारण ही हम लोग सम्पूर्ण उपलब्धि या ज्ञान से वञ्चित हैं। हमारे पास क्या है यह हम जान ही नही पाते, जो गुप्त है उसे प्रकट नही कर पाते, जो संचित है उसका व्यय नही कर पाते अतः जो मानव प्राणी मात्र मे अपनी आत्मा देखता है और सभी को प्रेम करना अपना कर्त्तव्य समझता है उसका आध्यात्मिक लक्ष्य तक पहुंचना सुनिश्चित है।

प्रार्थना

संयम शब्द मे 'यम्' धातु है जिसको 'सम्' उपसर्ग लगाने से संयम' शब्द बना है। "यम" धातु का अर्थ है विग्रह करना याने किसी पर अधिकार जमाना है और 'सम' उपसर्ग का अर्थ समुच्चयता का सूचक है।

जीवन मे संयम युक्त रहना बहुत जरूरी है क्योंकि आरम सदम मानव का भूषण है। संयम युक्त जीवन बिताने से ही मानव जीवन संग्राम मे विजय प्राप्त कर सकता है क्योंकि संयम एक ऐसा साधन है जिसके बल पर जीवन की समस्त वेदनाएँ शान्त हो जाती हैं और जीवन की काली रात सुन्दर प्रभात मे बदल जाती है और उषा मुस्करा उठती है। जीवन मे सारे उत्पात, दैहिक, दैविक एवं भौतिक ताप संयमहीनता ही के कारण होते हैं। संयमहीन व्यक्ति स्वयं अपनी निगाहो मे गिर जाता है। इन्द्रिय जीत व्यक्ति को ही इन्द्र कहते हैं। इन्द्रिय भोग से छूटना ही वास्तविक मोक्ष है।

वास्तव मे "जग जीत लेने से बेहत्तर है नफस जीत लेना।" क्योंकि "बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वासमपि कर्षति "याने इन्द्रिया बहुत बलवान होती हैं जो पंडितो को भी कुमार्ग पर खीच ले जाती हैं। ईसा मसीह ने बाइबिल मे इसीलिए कहा है कि नारी के सौन्दर्य पर अपने हृदय को मुग्ध मत कर और न हो स्वयं को उसकी चल चितवन का शिकार बना। वास्तव मे सुन्दर स्त्री को देखकर भी जिसका मन विकृत नही होता वही धन्य है। जो जितेन्द्रिय है वह सबको अपने वश मे कर सकता है जो विषयी है वह अवश्य नष्ट होता है अत संयमयुक्त रह कर जितेन्द्रिय होना मानव का कर्त्तव्य बताते हुए महात्मा मनु ने कहा है कि —

इन्द्रियार्थेषु सर्वेषु न प्रसज्येत कामत ।
अति प्रसक्ति चैतेषा मनसा संनिवर्त्तयेत् ॥

अर्थात् इन्द्रिय विग्रह कर उनकी अतिशय आसक्ति को मन से बहिष्कृत कर देना चाहिए।

जब मानव सासारिक विषयो को धर्म के प्रतिकूल समझकर तथा उनके दोषों का ज्ञान लाभकर उन्हे त्याग देता है तो वह इहलोक एव परलोक मे सुख प्राप्त करता है। यद्यपि मद्य, मास भक्षण, मैथुन मे जीव अज्ञानवश दोष नही मानता परन्तु इनका त्याग कर सयमयुक्त रहना महाफल देने वाला है।

राजस्थानी लोक कथा साहित्य मे फल पर एक अति सुन्दर कथा है —

एक पडित ने एक बार अपने नगर के राजा से कहा कि राजन् । सयम से रहने वाले की बुद्धि बडी विलक्षण होती है जो राजा सयम से रहता है तो उसकी प्रजा उसके वश मे रहती है। राजा पडित के कहने से सयमयुक्त जीवन बिताने लगा। जब राजा कई दिनो तक रानी के महल में नहीं गया तो रानी ने इसका कारण ढूढा। जब उसे यह पता पडा कि राजा अमुक पडित के कहने से सयमयुक्त जीवन बिता रहा है तो उसने उस पडित की पत्नी को बुलाया और लोभ देकर पूछा कि क्या उसका पति सयमयुक्त रहता है ? "रानी सा पडित जी यदि सयम से ही रहते तो क्या बात थी ? उनकी सयम हीनता का ही फल है कि मेरे नौ लडके लडकिया है जिनके कारण हमारा गुजारा नही चलता और हमें भर पेट खाने को नही मिलता।" पडितानी ने उत्तर दिया। रानी ने पडितानी को दान दक्षिणा देकर विदा किया और राजा को बुलाकर कहा कि तुम्हारे पडित जी खुद तो बेंगण खाते हैं और दूसरो को परहेज बताते हैं। खुद तो सयम से रहते नहीं है और दूसरों को सयम से रहने की शिक्षा देते हैं। शिक्षा देने वाले को चाहिए कि वह पहले उस सीख का पालन करे। मैंने उसकी पडितानी को बुलाकर पूछा है।

राजा ने दूसरे दिन पडित को दरबार मे बुलवाया और पूछा कि महाराज आप जिस सीख का पालन खुद नही करते उसका उपदेश दूसरो को क्यों देते हैं ? पडित राजा की मनशा समझ गया। उसने कहा, 'राजन् ! मेरे किसी एक पुत्र को अभी बुलवाया जाय।" राजा ने सिपाही भेजकर उसके एक पुत्र को बुलवाया। उस ब्राह्मण बालक के वस्त्र गदे थे। हाथ मे गिल्ली डडा था। सारा शरीर मिट्टी मे भरा था। बाल भूतो की तरह बिखरे हुए थे। नाक से सेडा बह रहा था। उसने आते ही अपने बाप से कहा, "क्या है। मुझ क्यो बुलाया है। मुझे जाने दे नही तो मैं डडे से खोपटा फोडकर अभी भग जाऊगा।" पडित ने अपने पुत्र को तत्काल भेज दिया और राजा से कहा कि अब राजकुमार को बुलवाया जाय। तत्काल राजकुमार का

दरवार मे बुलवाया गया। उसने आते ही सब दरवारियों को नमस्कार किया और राजा से हाथ जोडकर प्रार्थना की कि पिताजी मेरे योग्य क्या आज्ञा है? मुझे फौरन हुक्म दे। किस कारणवश मुझे दरवार मे बुलवाया गया है। यदि मेरे से कोई गलती हो गई हो तो क्षमा याचना है। पडित ने राजा से निवेदन किया कि राजकुमार को वापिस भेज दिया जाय। राजकुमार को वापिस महल मे भेज दिया गया। उसके जाने के बाद पडित ने राजा से कहा कि देखा राजन् मुझ सयमहीन व्यक्ति की सन्तान का वर्ताव और एक राजकुमार का वर्ताव। सयमहीनता के कारण ही वह सन्तान एव निकृष्ट सन्तान होती है। सयमहीनता के कारण देश मे जब अनावश्यक सतति बढ जाती है तो देश मे काल विपरीतता आती है जिससे काल पडते हैं। अथाहवृष्टि एव अनाहवृष्टि होती है। आसुरी रोग फैलते हैं जिनका इलाज नही होता और प्रकृति महाकाल का रूप धारण कर सहार करती है। राजा पडित की बात से सन्तुष्ट हो उसे इनाम देकर विदा दिया।

इस कथा से स्वत प्रमाणित है कि स्वय के, समाज एव राष्ट्र के कल्याण हेतु सयमयुक्त रहना मानव का परम कर्त्तव्य है क्योकि जो व्यक्ति सयसयुक्त जीवन व्यतीत नही करता, वह उस नाविक के समान है, जिसके पास दिशा बोधक यन (कम्पास) न हो— हवा का तेज झोंका उसे किधर बहा से जायेगा, कौन जाने ? इन्द्र याने मन ऐरावत हाथी याने विषय भोग की मस्ती मे डूबा कि मानव की बुद्धि नाश हो जाती है क्योकि इन्द्रियो मे से एक इन्द्रिय अपने विषय मे लगी कि बुद्धि नष्ट हो जाती है जैसे चलनी से जल छन जाता है। महाभारत मे अश्वत्थामा एक पात्र है जिसका अर्थ है विषयो मे अधिक आसक्ति मानव को अस्वस्थ करती है। जीव (अर्जुन) सयमहीन हो जाता है तो गाण्डीव यानें पुरुषार्थ से गिर जाता है फिर "सीदन्ति मम गात्राणि" अर्थात शरीर छीजता है इसीलिए सयम युक्त जीवन बिताने का उपाय भगवान कृष्ण ने अर्जुन को समझाते हुए कहा है 'तस्मात योगी भवाऽर्जुन" अर्थात हे जीव तू योगी बन और जब जीव अर्जुन। उपरति धारण कर लेता है तो वह कहता है "नष्टो मोहा स्मृति लब्धवा त्वतप्रसादात मयाऽच्युत" अर्थात् हे भगवान आपकी कृपा से मेरा अज्ञान नष्ट हुआ और मेरी बुद्धि ठीक हुई।

जिव्हा भी एक इन्द्री है। बाइबिल मे इसीलिए कहा है कि जो अपने मुख और जिह्वा पर सयम रखता है वह अपनी आत्मा को अनेक सतापो से

बचाता है। मुख और जिह्वा पर संयम रखने का अर्थ है एक तो अपनी जीभ को स्वाद से बचाना क्योंकि जो चीजें जीभ को स्वादिष्ट लगती हैं वे पेट का खराब करती हैं और मानव को रोगी बना देता हैं जीभ के स्वाद पर संयम रखने की प्रेरणा हमें इस कथा में मिलती है —

एक बार एक साधू को बाग की सेब खाने की मन में आई। उसने अपने मन को बहुत समझाया किन्तु जब उसका मन नहीं माना तो वह बाजार से एक सेब ले आया और एक आले में रख दिया। उसका मन जब सेब खाने को चलता तो वह उस सेब को देखता और फिर मन से कहता कि अभी ठहर जा फिर खा लेना। इस तरह करते करते सात दिन बीत गये। सेब पड़ा पड़ा जब सिड़ गया और उसमें कीड़े पड़ गये तो सन्यासी ने अपने मन से कहा देख रही है न सेब का वास्तविक रूप जिस पर तू रीझा था अब इसे खाले। उसके मन ने उत्तर दिया नहीं यह तो उपयोग के योग्य नहीं है। इस तरह उस सन्यासी ने अपने मन पर संयम पा लिया। गीता में भीम दम का प्रतीक है जो इन्द्रिय विकार को नष्ट करता है। सचमुच में मन इन्द्रियन ते रोकनो समतिहि कहत सुधीर। इन्द्रियगन को रोकनो दम भाखत बुधवीर।

मुख पर संयम रखने का अर्थ वाणी संयम से भी है इसीलिए कबीरदास जी ने कहा है कि —

बोली तो अनमोल है, जो कोई जानै बोलि।
हृिय तराजू तोल के, फिर आपन मुरा खोलि।।

जीवन में अनेक संताप वाणी की संयमहीनता से हो जाते हैं। इतिहास साक्षी है कि अनेक युद्ध वाणी की संयमहीनता से हुए हैं। न जाने कितने संताप कितनी आत्म हत्याए, दंगे-फिसाद एवं सहस्रों जघन्य अपराध वाणी की संयमहीनता से हुए एवं हो रहे हैं। अतः जो कुछ बोलो सम्भल कर बोलो क्योंकि —

बात का जख्म है तलवार के जख्मो के सिवा।
कीजिये कत्ल मगर मुह से इरशाद न हो।।

सचमुच में जीवन में अनेक सन्तापो का मूल कारण विचारो का असंयम है। यदि हमारे विचार संयत हैं, यदि हमारा, हमारे मन और मस्तिष्क एवं

वाणी पर कठोर नियत्रण है तो हम जीवन मे स्वय को अनेक सन्तापो से बचा सकते हैं तथा प्रतिकूल परिस्थितियो में भी अपना निर्माण कर सकते हैं।

इस ससार में सुख एव शान्तिमय जीवन बिताने के लिए भक्त शिरोमणि चरणदास जी के इस दोहे को जीवन में कर्त्तव्य रूप में डाल लेना चाहिए कि —

जग माही ऐसे रहो, ज्यो जिह्वा मुख माहि ।
घीव घना भच्छन करे, तो भी चिकनी नाहि ।।

अर्थात जीभ न जाने कितने घी युक्त पदार्थों का रसास्वादन करने पर भी चिकनी नही होती उसी प्रकार मानव को ससार में रहना चाहिए। जीभ भगवान ने हमको इसलिए नही दी है कि हम उससे दूसरो का दिल दुखाये। जबान की कठोरता को प्रकृति भी पसन्द नही करती। इसलिए एक उर्दू के शायर ने कहा है कि—

फितरत को नापसन्द है, सख्ती जबान मे ।
पैदा हुई न इसलिए, हड्डी जबान मे ।।

जीवन मे यदि प्रगति का कोई उपाय है तो वह है मनो विकारो पर नियन्त्रण रखना, आत्म सयम रखना क्योकि जिसमे सयम नही, अपनी कामनाओ को नियन्त्रण मे रखने का सामर्थ्य नही, जो साधारण प्रलोभन पर चरित्रहीन हो जाता है तथा जो क्रोध के आवेश मे बह जाता है यह भूलकर कि अविचार की हर तरग उसे अन्धकार एव गर्त मे डाल देगी, वह व्यक्ति मनुष्य नही पशु है। विचारो के सयम से ही मानव ऊचा उठता है एव पशु-वृत्ति से छूटता है। काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह एव मात्सर्य षड्रिपु तो हमे डुबोने के लिए ही है क्योकि —

दरिया को अपनी मौज की तुगयानियो से काम।
कश्ती किसी की पार हो या दर्मिया रहे ।।

जो अपना स्वामी आप है, जिसने अपनी विचार शक्ति पर सयम रख रक्खा है उसे विपरीत परिस्थितियो मे भी सफलता प्राप्त होती है। महात्मा गौतम बुध ने कहा है कि जो क्रोध आने पर मन को शान्ति की दिशा मे बदल

सकता है, जैसे वह रथ का रास्ता बदलता है. उसे मैं सारथी कहता हू जो ऐसा नही कर पाते उन्होंने केवल बाहे थाम रखी है। महात्मा मनु ने इसीलिए कहा है कि जिस प्रकार सारथी घोडो को अपने अधिकार से इच्छानुसार चलाता है उसी प्रकार मनुष्यो को चाहिए कि परिश्रम और प्रयत्न करके विषयों से इन्द्रियो का सयम करे अर्थात आख को रूप से कान को सुनने से और नाक को सुगन्ध से और उसी प्रकार और इन्द्रियो को सयम युक्त रखे। भगवान श्रीकृष्ण ने भी कहा है कि जल मे वायु नाव को जैसे हर लेती है वैसे ही विषयो मे विचरती हुई इन्द्रियो के बीच मे जिस इन्द्रिय के साथ मन रहता है, वह एक ही इन्द्रिय रस युक्त पुरुष (जो योग युक्त जीवन व्यतीत नही करता) की बुद्धि हरण कर लेती है इसलिए हे अर्जुन ! कछुआ जैसे सब अगो को समेट लेता है वैसे ही पुरुष जब सब ओर अपनी इन्द्रिया को विषयो से समेट लेता है तब उसकी बुद्धि स्थिर होती है अत इन्द्रियो को वश करके ज्ञान-विज्ञान को नष्ट करने वाले इस काम को निश्चय पूर्व नियन्त्रण मे रख क्योंकि योगीजन स्वभाविक सब इन्द्रियो को सयम अर्थात स्वाधीनता रूप अग्नि मे हवन करते है यानि इन्द्रियो को विषयो से रोककर अपने वश मे कर लेते है। जितेन्द्रिय, श्रद्धावान पुरुष ज्ञान प्राप्त कर भगवत्प्राप्ति व शान्ति प्राप्त करता है।

वस्तुत सयम से ही आत्मा अथवा परम सत्य, तप सम्पूर्ण ज्ञान, साहस, धैर्य मिलता है। भर्तृहरि ने कहा है कि ' विकार है तो सति विक्रियन्ते, येषा न चेत्रासि न एव धीरा " अर्थात विकार के कारण मौजूद होने पर भी जो अपने चित्त को विचलित नही होने देता वही धीर पुरुष है।

अब प्रश्न यह है कि विचार सयम क्या है और कैसे किया जाय। एकाग्रता पूर्वक पदार्थ या विषय पर विचार की अचल सन्निहित स्थिति ही विचार सयम है। किसी प्रकार के विचार पर एकाग्रता होती है तभी उसका सयम होता है। योग उपासना से अपने चित्त की चचलता को स्थिर करना ही विचारो का सयम है। बार बार एक ही विषय पर विचार को अन्तर्मुख स्थिर करना सकल्प कहलाता है। विचार को बहिर्मुख करना विकल्प कहलाता है और उनके मिश्रण को सकल्प विकल्प कहते है जो विनाश का कारण है। सकल्प का त्यागी कभी योगी नही बन सकता। श्रेय मार्ग पर दृढता से बढने की प्रतिज्ञा ही सकल्प है। पूज्य बापू ने कहा है कि असली गुफा हृदय मे है और श्मशान भी वही है इसमे रहकर विकार मात्र को राख कर डालें तभी

सच्चा सन्यास है। जो अन्तर मे देखता है वाह्य नही, वह सच्चा कलाकार है। कर्त्तव्य पालन हेतु विचार की दृढता ही सबल्प है और यही जीवन है एव विचार शून्यता मृत्यु। विचार परिशीलन से निसवल्प हो जाने पर समाधि लग जाती है क्योकि सविकल्प समाधि तक विचार कायम रहता है। जब विचार ही मनुष्य का जीवन है तो उसके द्वारा मनुष्य चाहे जैसा अपने आपको बना सकता है अत जीवन मे विचार सयम परमावश्यक है क्योकि विचार सयम का सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्फुरण इतना बलशाली होता है कि मनुष्य चाहे जो कुछ कर सकता है और मनुष्य को यह शक्ति प्रकृति द्वारा प्रचुर मात्रा मे प्राप्त है। विचार सयम से मनुष्य साक्षात् ब्रह्म बन जाता है। योगाभ्यास द्वारा विचारो के सयम से सिद्धि तक प्राप्त की जा सकती है। चार्ल्स बक्सटन के कथनानुसार विचारो की एकाग्रता मे ही जीवनसग्राम मे विजय प्राप्त की जा सकती है तो पाश्चात्य पडित इमासन ने लिखा है कि जीवन मे यदि बुद्धिमानी की कोई बात है तो वह है विचारो की एकाग्रता (सयम) और यदि कोई खराब बात है तो वह है अपनी शक्तियो को बिखेर देना। बहुचित्तता कैसी भी हो इससे क्या ?

शाण्डिल्योपनिषद मे हमारे भारतीय ऋषियो ने विचार सयम के चमत्कारो का वर्णन लिखा है जैसे नासिका के अग्रभाग मे सयम करने से शाति मिलती है और इन्द्रलोक का ज्ञान हो जाता है। काल मे चित्त का सयम करने से यमलोक का ज्ञान हो जाता है। भ्रूमध्य (आज्ञा चक्र मे) सयम करने से प्रशासन शक्ति बढ जाती है। बायें कान मे सयम करने से वायु लोक का, कठ मे सयम करने से चन्द्र लोक का ज्ञान हो जाता है। शरीर के रूप पर चित्त का सयम करने से अपना शरीर दूसरो को नही दीखता इसी प्रकार शरीर के विभिन्न-विभिन्न भागो मे सयम करने से जो शक्तिया मानव को मिलती है, उनका वर्णन उक्त उपनिषद मे भरा पडा है।

अब यह स्वत प्रमाणित है कि यदि हमे शक्ति सतोष और सुखमय जीवन बिताना है तो सयमयुक्त रहना हमारा परम कर्त्तव्य है इसके लिए हमे अपनी अनुचित विचारो की दासता छोडनी ही पडगी क्योकि यदि हमारा मन हमारे नियत्रण मे है तो हम हमारे विचारो का सयम सरलता से कर सकते हैं। महाकवि रहीम ने मन को सयम युक्त रखने के लिए कहा है कि –

जो रहीम मन हाथ है, मनसा कहु जित जाहि।
जल मे ज्यो छाया परी, काया भीजति नाहि॥

मस्तिष्क मे अनावश्यक विचार पैदा होना भी एक जन्म है जो जय करने से नही होता। मन जय से या लय याने ध्यान करने से नियन्त्रण मे आ जाता है और विचारो का सयम सम्भव एव सरल हो जाता है अत उत्तम रीति से प्रयत्न करके मन आदि उत्तम रीति से प्रयत्न करके मुक्ति मार्ग और सासारिक कर्तव्य पालन करना चाहिए और शरीर की रक्षा हेतु सयम युक्त रहना मानव को अपना परम कर्त्तव्य समझना चाहिए।

संगति

एक बार भगवान विष्णु ने नारद से पूछा कि ससार मे सबसे खराब चीज कौनसी है। नारद सारी सृष्टि मे घूम कर आया और भगवान को उत्तर दिया कि विष्टा (पाखाना) ससार मे सबसे गदा है जो दुर्गन्ध फैलाता है। भगवान मुस्कराये और कहा कि कल फिर सोचकर आना। नारद भगवान के पास बैठ गया। भगवान ने नारद को बहुत पकवान और मिठाईया खिलाई। नारद मिठाइया खाकर भगवान के पास से चला गया किन्तु सोचता रहा कि ससार मे सबसे गदी चीज कौन सी है ?

दूसरे दिन नारद शौच करने गया। फिर उसके दिमाग मे आया कि ससार मे सबसे गदी चीज विष्ठा है। वह स्नान ध्यान कर भगवान के पास फिर गया और कहा, 'भगवान् ! ससार मे सबसे गदी चीज विष्टा है। भगवान् फिर हसे और नारद से कहा कि नारद तुम अभी तक नही समझे कि ससार मे सबसे गदी चीज कुसगति है। देखो, बढ़िया-बढ़िया मिष्ठान जिन पर हरेक का मन ललचाता है इस दुर्गन्ध पूरित शरीर की कुसगति से विष्ठा बन जाता है।

वास्तव मे जीवन का उत्थानपतन मानव के कुसग सुसग पर निर्भर करता है। दुष्टो की सगति से सज्जन और धर्मशील व्यक्तियो के चित्त मे भी विकार उत्पन्न होता है। दुष्ट दुर्योधन की सगति से धर्मशील भीष्म पितामह राजा वराट की गायें चुराने चले गये थे, महाभारत इसका साक्षी है अत दुर्जन मीठा बोलने वाला हो तो भी उसकी सगति एवं विश्वास नही करना चाहिए क्योंकि दुर्जन के "मधुतिष्ठति जिह्वाग्रे हृदि हलाहल विषम" अर्थात दुर्जन के मुह मे तो मिठास होता है किन्तु हृदय मे हलाहल विष भरा होता

है। जीवन मे विष, अग्नि, सर्प, शस्त्र आदि से इतना भय नहीं होना जितना कि दुर्जन सगति से होता है क्योंकि —

अहो दुर्जन ससर्ग मान हानि पदे पदे ।
पावकं लोहि सगेन मुदगरै रपिहन्यते ।।

अर्थात दुर्जन के साथ रहने से मानव की पग पग पर हानि होती है जैसे लोहार की भट्टी मे अग्नि लोह के साथ रहने से मार बार पीटी जाती है।

दुर्जन की सगति से न केवल पग पग पर मानहानि ही होती है बल्कि अनेक बार कुसगति विनाश का हेतु बन जाती है इसी लिए कूटनीतिज्ञ चाणक्य ने कहा है कि —

दुराचारी दुरादृष्टि दुर्वासी च दुर्जन ।
यन्मैत्री क्रियते पुम्भिर्नर शीघ्र विनश्यति ।।

अर्थात जो मनुष्य दुराचारी के साथ, कुदृष्टि रखने वाले के साथ बुरी जगह रहने वाले के साथ और दुष्ट मनुष्य की सगति करता है वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

प्रार्थना

वर्तमान मे हमारे राष्ट्र पर अनेकानेक सकटो के बादल मडरा रहे हैं। हमारी सीमाए शत्रुओ से घिरी हैं। इन सब सकट से बचना चाहते है। ससार मे मनुष्य के साथ तीन विपरीतताए आती है पहली काल विपरीतता दूसरी देव विपरीतता और तीसरी बुद्धि विपरीतता। अभी हमारे देश मे काल विपरीतता है। इस विपरीतताओ से बचने का केवल एक ही उपाय है और वो है नियमित प्रार्थना करना देश के कल्याण के लिए क्योंकि मनुष्य भोजन के बिना जीवित रह सकता है परन्तु प्रार्थना के बिना जीवन मृत्युतुल्य है। प्रार्थनासे हमे शान्ति मिलती है साहस मिलता तथा हमारी चिन्ताओ का निवारण होता है। महात्मा गाधी की प्रार्थना की शक्ति ने ही हमे स्वतत्र कराया और वह महापुरुष प्रार्थना मे इतना नियमित था कि हत्यारे नाथूराम

गोडसे ने प्रार्थना के समय मे ही उस महासत की हत्या की और इस पर भी उस सत के मुख से अतिम शब्द भी प्रार्थना का ही निकला था हे राम । काम ससार मे कोई नही कर सकता वह काम प्रार्थना द्वारा अवश्य होता है । एक कवि ने ईश्वर की प्राथना की तुलना बाघ से की है । जिस प्रकार बाघ पशुओ का भक्षण करता है उसी प्रकार प्राथना भी मनुष्यो को फसाने वाले सारे शत्रुओ का भक्षण करती है । सकटकाल मे अथवा काल विपरीतता मे प्रार्थना करने पर उसकी शीघ्र प्रतिक्रिया होती है इसीलिए तो शकराचाय जी ने कहा है "क्षुधा तृपार्ता जननी स्मरन्ति" अर्थात व्यथा मे ही तो पुत्र सर्व-शक्तिशालिनी मा को याद करता है और वह माँ जिसे हम भगवान अल्लाह, ईश्वर आदि अनेक नामो से पुकारते हैं बहुत करुणामयी माँ है बिन मागे स्तनपान कराने वाली है । यह मातृभूमि ही महा प्रकृति माँ है जो एक बार शुद्ध अन्तकरण से माँ शब्द पुकारते ही हमारी रक्षा को दौडी आती है स्वय के सत्य की, स्वय की शक्ति की खोज केवल प्रार्थना से ही सम्भव है ।

एक पाश्चात्य विद्वान इमर्सन का कथन है कि किसी राष्ट्र के लिए इसस अधिक दुर्भाग्य और क्या हो सकता है कि वहा के व्यक्तियो म उपासना और प्रार्थना का अभाव हो । तो दूसरे एक पाश्चात्य विद्वान कैल्विन कूलिज का मत है कि जब मनुष्य प्रार्थना प्रारम्भ करते हैं तभी ये प्रगति पथ पर अग्रसर होने लगते हैं । हमारे भारत के महान दार्शनिक महर्षि अरविंद का कथन है कि सकटकाल मे मनुष्य को केवल प्रार्थना ही बचा सकती है यह वस्तुत सत्य भी है क्योकि जब मनुष्य सकट मे होता है, या बीमार होता है, तो उसके मुह से माँ, । माँ ।। शब्द निकलता है जो उस महाप्रकृति याने भगवान का नाम है । बीमारी से पीडा छुडाने का प्रथम उपचार प्रार्थना ही है ।

हमारे देश मे जब वर्षा नही होती है तब हम जगह-जगह हरीकीतन करवाते हैं, यज्ञ करवाते हैं, जिसके प्रतिफल स्वरूप वर्षा भी होती है परन्तु जब हमारे देश म युद्ध के बादल मडरा रहे हो तो क्या हमारा कर्तव्य नही कि हम मातृभूमि की रक्षा के लिए शुद्ध अन्त करण से प्रार्थना कर । यह बात ध्यान मे रखने की है कि यदि आप अपने देश की रक्षा हित सच्चे अत करण से प्रार्थना करेंगे और प्राथना करते-करते यदि आंखो से अश्रुधारा बह उठेगी तो इसमे किन्चित भी सशय नही कि हमारी आंख से भूमि पर गिरा प्रार्थना युक्त एक अश्रुबिन्दु हमारे एक हजार सैनिक की रक्षा करेगा और शत्रुओं की सेना के एक हजार सैनिको को धराशायी करेगा ।

प्रार्थना का कोई निश्चित समय नही मनुष्य जिस वक्त जिस स्थान पर प्रार्थना करना चाहे कर सकता है । प्रार्थना के लिए कोई निश्चित स्तोत्र अथवा पाठ नही चाहिए क्योकि भगवान तो हिरदय की भाषा सुनना जानते है और कोई भाषा वह समझना ही नही । बालक निर्मल हृदय की पुकार सुनते ही वह दौडा आता है । सोते समय और प्रात काल उठते समय यदि प्रत्येक व्यक्ति यह प्रार्थना करना शुरू करदे कि है भारत मा तेरी जय हो विजय हो, हमारे देश का हर प्रकार का सकट शीघ्र दूर हो हम सबमे प्रेम और एकता कि भावना भरदे, हमारे देश का कल्याण हो तो यह दृढ निश्चयात्मक कहा जा सकता है कि भारत का अवश्य अद्वितीय उत्थान एव कल्याण होगा और भारत हमारे देखते ससार मे सर्वश्रेष्ठ राष्ट्र होगा ।

सत्य परमपिता परमेश्वर का ही नाम है । सृष्टि के पूर्व सत्य की उत्पति हुई है । जो शाश्वत हो अर्थात जिसका कभी नाश न हो उसे सत्य कहते है । कभी नाश न होने वाला ब्रह्म सत्यम् अर्थात ब्रह्म ही सत्य है । ऋषियो ने जिन्होने सत्य की रिसर्च (खोज) की है कहा है कि सत्य से श्रेयस्कर अन्य कोई धम नही है । रिसर्च करने वाले को ऋषि कहते हैं अत महर्षि व्यास के कथनानुसार जो सत्य है वह धर्म है, जो धर्म है वह प्रकाश है और प्रकाश हा स्वात्म ज्ञान है और इसीलिए दर्शन शास्त्र कहते है कि "सत्यं ज्ञानमनन्त ब्रह्म" अत सत्य बोलना, सत्याचरण सत्य व्यवहार, सत्य विचार, सत्य कर्म एव सत्य की खोज करना मानव का धर्म हैं, क्योकि मानव मे जो निहित सत्य है वही तो धर्म है । जब मानव सत्य छोड देता है तो नष्ट हो जाता है जैसे अग्निअपनो जलाने की शक्ति जो सत्य है छोड देती है तो राख हो जाती है उसी प्रकार मानव सत्य छोडकर खाक हो जाता है क्योकि 'सत्य ही परम बल" अर्थात् सत्य हो महान शक्ति है अत 'सत्यवद" अर्थात् सत्य बोलना सभी धर्मो मे मानव का कर्तव्य बताया है । वेद मे भी "सत्यम् जायते नाऽनृत" अर्थात् "सत्यमेव जयते" याने सत्य की सदैव विजय एव असत्य की सदैवपराजय बताई गई है ।

सचमुच मे सत्य की साधना मे सदैव रत साधक के जीवन मे शील साहिष्णुता निर्भीकता, दान, त्याग, बलिदान, एकता की शक्ति स्वत आ जाती है । हिंसात्मक प्रवृति वाला लहा शक्ति शाली सिंह भी सत्य के साधक के समक्ष कुत्ते सदृश दुम हिलाकर उसके चरणो मे लोट जाता है । क्योकि सत्य मे ऐसी विलक्षण आकर्षणशक्ति होती है कि जिसके समक्ष नत मस्तक हुए विना कोई नही रह सकता है ।

पूज्य महात्मा गांधी का जीवन इस बात का प्रत्यक्ष दिव्य उदाहरण है, जिन्होंने सत्य की शक्ति से समस्त विश्व को अपनी ओर आकर्षित कर लिया और भारत को सत्य के बल से स्वतन्त्र करा दिया। किसी ने एक बार उनसे पूछा कि बापू! क्या आप कठिन संसार की निराशाओं के बावजूद भी सत्य में विश्वास रखते हैं? तो उन्होंने दृढ निश्चय एव दृढ आत्म विश्वास से उत्तर दिया कि हां, मेरा अटूट विश्वास है कि सत्य को छोड़कर अन्य कोई ईश्वर नही है अतः मैं अन्त.करण से सत्य में श्रद्धा रखता हूं। और विश्व की कोई भी निराशा, असफलता और शक्ति मुझे मेरे इस विश्वास से विचलित नही कर सकती। क्योंकि सत्य एक विशाल वृक्ष है। उसकी ज्यों-ज्यो सेवा की जाती है, त्यों-त्यो उसमें अनेक फल नजर आते हैं, उसका अन्त नही होता। फिर निराशा कहां रहती है? बापू जब यह उत्तर दे रहे थे तो उनकी अंगुलियां उनकी पसलियों की निकली हड्डियो पर घूम रही थी। वे मुस्करा रहे थे और उन्हें अपने भौतिक शरीर मे स्थित सूक्ष्म आत्म शरीर में सत्य की शक्ति का भान हो रहा था। सचमुच मे सत्य से ही असत्य विचारो का विनाश होकर आत्म अनुशासन, स्वात्म नियंत्रण, आत्म विकास एवं आत्म विश्वास का अनुभव होता है।

बापू बाइबिल का यह सिद्धान्त जानते थे कि मानव जब सत्य को पहिचान लेता है तो सत्य उसे स्वतन्त्र बना देता है अतः बापू ने स्वतंत्रता संग्राम मे सत्याग्रह के बल पर ही सफलता पाई और डाक्टर मार्टिन लूथर किंग जिसने कि गांधी जी के सत्य सिद्धान्तों को अपने जीवन मे उतारा आज संसार से अजर-अमर हो गया। सचमुच मे सहस्रों अश्वमेघ यज्ञों से सत्य की तुलना की जाय तो सत्य ही भारी बैठेगा।

किसी बात को यथार्थरूप मे कहना सत्य बोलना कहलाता है लेकिन जिस प्रकार साहित्य में शुष्क यथार्थ पूर्ण रचना का कोई महत्व नही उसी प्रकार जीवन मे मात्र सत्य बोलना ही उपयोगी नही। महाराज मनु ने कहा है कि जो सत्य से पवित्र किया हुआ हो वही बोलना चाहिए क्योंकि सन्देह और भ्रम सदैव असत्य भाषण से उत्पन्न होता है। अतः यदि तुम असत्य बोलोगे तो तुम्हारे जन्म भर के लिये पुण्य कर्म कृत्तों को प्राप्त हो जायेंगे क्योंकि जो पुरुष असत्य भाषण करता है वह पापी अधोशिर हो बहुत अंधेरे नर्क में जाता है। जो न्यायालय में प्रलोभनवश असत्य बोलता है—वह दारुण विपत्ति पाता है क्योंकि असत्य से सहस्रपुश्त कलंकित हो जाते हैं लेकिन

सचमुच सत्य बडी कटु होती है । महाभारत मे इसीलिए महर्षि व्यास ने लिखा है —

सत्य ब्रूयात्प्रिय ब्रूयात् न ब्रूयात्सत्यम्ऽप्रिय ।
प्रिय च नानृत ब्रूयात एष धर्म सनातन ।।

अर्थात ऐसा सत्य कहो जो प्रिय हो । अप्रिय सत्य न कहो और न प्रिय असत्य ही कहो । यही सनातन धर्म है । जहा सत्य भाषण से किसी का हनन होता हो वहा, असत्य भाषण सत्य से उत्तम है । महाभारत मे सत्य की जगह-जगह महिमा बताकर भी सत्यासत्य का निर्णय करने हेतु लिखा है कि सत्य बोलना अच्छा है परन्तु सत्य से भी अधिक ऐसा बोलना अच्छा है जिसमे सब प्राणियो का हित हो क्योकि जिससे प्राणियो का अत्यन्त हित होता हो वही हमारे मत से सत्य है । जो सत्य प्राणियो का नाश करादे ऐसा सत्य महान पाप है इसका एक उदाहरण देखिये —

एक साधु जगल मे तपस्या करता था । वह सदा सत्य बोलता था । पास ही एक नगर था । एक दिन डाकुओ ने नगर निवासियो को चेतावनी दी कि कल हम सारा नगर लूट लगे । सिर पर सकट आया देखकर नगर निवासियो ने सोचा कि अपने कीमती गहने आदि लेकर जगल मे छिप जाय । उन्होने वैसा ही किया और जहा वह साधु तपस्याकर रहा था उस जगह जाकर जगल की खानो मे छिप गये । डाकू जब नगर मे लूटमार करने आये और उन्हें कुछ भी नही मिला तो वे निराश होकर उसी जगल से वापिस लौटने लगे कि एकाएक डाकुओ के सरदार की निगाह उस साधु पर पडी । उसने सोचा कि यह साधु अवश्य ही सत्य बोलता होगा । शायद इसे मालूम भी होगा कि नगर वासी कहा गये है ।

उसने साधु से जाकर पूछा कि बताओ नगरवासी किधर गये है । साधु मुह से तो कुछ भी नही बोला लेकिन हाथ से इशारा कर के बता दिया कि नगरवासी इसी जगल मे छिपे है । फलस्वरूप सारे लोग डाकुओ से मारे गये । भगवान साधु के सत्य पर बहुत नाराज हुए और इतनी तपस्या के बावजूद भी जब वह साधु मरा तो उसे गिरगिट की योनि मे पटका । धर्म और नीतिशास्त्र का अन्योन्य सबन्ध है । नीतिशास्त्र इसीलिए कहते हैं कि हसी मे, स्त्रियो के साथ, विवाह के समय, जब प्राण सकट मे हो, और सपत्ति की रक्षा

के लिए झूठ बोलना पाप नहीं है । आचार्य बृहस्पति ने भी लिखा है कि अपनी आय को सत्य रूप मे पत्नी को पूर्णतः नही बतानी चाहिए और आय का पच्चीस प्रतिशत भाग छिपाकर रखना चाहिए । इसका अर्थ यह नही कि सदा ही नीति की आड़ लेकर असत्य ही बोला जाय क्योंकि मृदुवाणी बोलना, हितकर बातकरना, किसी को नुकसान न पहुचाना, किसी का दिल न दुखाना किसी को धोखा न देना सत्य व्यवहार करना, सत्य व्यापार करना वास्तविक सत्य है । इसके विपरीत जिन सत्य वचनो से किसी को कलेश होता हो, जिस सत्य बोलने से किसी व्यक्ति व समाज का अहित होता हो वह सत्य होते हुए भी असत्य है । मुह से उच्चारण करने मात्र से कोई बात सत्य अथवा असत्य नही होती अपितु सत्यता एव असत्यता बोलने एवं व्यवहार करने वाले के हृदय के भाव और उसके होने वाले प्रतिफल पर आधारित होती है । असत्य का व्यवहार मजाक मे अधिक करने से भी वही होता है जो उस गडरिये के साथ हुआ जो मजाक में रोज कहता था, "भेडिया आया । भेडिया आया" और उसकी चिल्लाहट पर सारे गड़रिये इकठ्ठे हो जाते थे और वह उनसे कहता था कि मैं तो मजाक कर रहा था । और एक दिन जब सचमुच में भेडिया आया और वह चिल्लाया तो लोगो ने उसके सत्य को परिहास समझा । फलस्वरूप वह मारा गया । अतः स्वतः प्रमाणित हैं कि सत्य का नाश छदम्, दंभ, वाह्य प्रदर्शन एव अधिक परिहास मे हो जाता है । जो लोग स्वार्थ-पदार्थ के लिये मजाक मे भी झूठ नही बोलते उन्ही को स्वर्ग की प्राप्ति होती है । अतः विवेक का सहारा लेकर सत्य बोलना मानव का कर्त्तव्य है । विवेकहीन ही सत्यानाश करना मानव का कर्त्तव्य नही । भर्तृहरि ने लिखा है कि तेजस्वी पुरुष आनन्द से अपनी जान भी दे देंगे परन्तु वे सत्य प्रतिज्ञा का कभी भी त्याग नही करेंगे राजा हरिश्चन्द्र जिसने सत्य की रक्षा-हित अपनी पत्नी व पुत्र को बेच दिया । महाराणा प्रताप के हाथ से जब सूखी घास की रोटी वन बिलाव ले भागा और बालक अमर सिंह भूख से चीख पडा तो भी उन्होंने सत्य को नहीं त्यागा । नचिकेता के सत्य बोलने पर पिता ने यमराज को सौंप दिया तो भी उसने सत्य नहीं त्यागा । हिरणकश्यप के अत्याचारो का डटकर विरोध करना सत्य के उपासक भक्त प्रह्लाद ने अपना परम कर्त्तव्य समझा । गुरु गोविन्दसिंह ने सत्य की रक्षा हेतु अपने दोनो बच्चो को दीवार मे जिन्दा चुनवा दिया क्यों कि वे जानते थे कि सांच को आंच नही आती और सत्य की सदैव विजय होती है । परन्तु इस हेतु मानव के जीवन मे मन वचन एवं कर्म से सत्य का पालन आवश्यक है । इसका एक उदाहरण देखिये :—

एक राजा मन, वचन और कर्म से सत्य का पालन करता था। एक बार उसने अपने नगर में एक हाट लगवाई और यह घोषणा की कि यदि किसी व्यापारी का समान सन्ध्या तक कोई नही खरीदेगा तो उसे मैं खरीद लूंगा। एक दिन एक व्यापारी शनिश्चर की एक मूर्ति वेचने आया। उसे किसी ने नही खरीदा तो सन्ध्या को वह व्यापारी उस मूर्ति को लेकर राजा के पास गया राजा ने उस मूर्ति की कीमत और गुण पूछें। व्यापारी ने उत्तर दिया कि महाराज इस मूर्ति की कीमत पाच हजार रुपये है और शनिश्चर जहा पर यह रहता है वहा सब कुछ नाश हो जाता है। धन धर्म, लक्ष्मी, और सत्य सब छोड जाते है। राजा ने मन्त्री को आज्ञा दी कि यह मूर्ति खरीद ली जाय। राजा का यह आदेश सुनकर मन्त्री चकित रह गया और मूर्ति खरीदने का विरोध किया लेकिन राजा नही माना और उस मूर्ति को खरीद ली। रात को जब राजा भोजन करके सोया तो स्वप्न मे एक आदमी आया और बोला कि राजन! मैं धर्म हू। तुमने शनि की मूर्ति खरीद ली है अत मे जाता हू। राजा ने उसे जाने की आज्ञा दे दी। फिर धन पुरुष रूप मे आया और बोला राजा मैं जाता हू। राजा ने उसे भी जाने की आज्ञा दे दी। फिर लक्ष्मी आई और बोली कि राजा मैं भी जाती हू। राजा ने उसे भी आज्ञा दे दी। अत मे सत्य आया और बोला कि राजन। मे भी जाता हू तो राजा ने उठकर उसके पाव पकड लिये और कहा कि भगवान् सत्य आपको रखने के लिये ही तो मैंने शनि की मूर्ति खरीदी। यदि आप ही चले जायेंगे तो मेरा रक्षक कौन है? सत्य ने जब देखा कि राजा सत्य पर दृढ है तो वह नही गया जब राजा के सत्य की विजय हो गई और सत्य नही गया तो धन-धर्म लक्ष्मी को भी वापिस लौट आना पडा। इसी लिए राजस्थानी अज्ञात कवि ने कहा है कि.

सत मत्त छोड सूरमा, सत छोडया पत जाय।
सत की वाधी लिछमी, फेर मिलेली आय।।

अर्थात् सत्य को कभी नही छोडना चाहिए यदि जीवन मे सत्य पालन मानव का कर्त्तव्य बन जाता है तो लक्ष्मी उसके पास अवश्य आती है।

क्योकि जहा सत्य धम है वही धन और जय का भी अचल निवास है। जहा सत्य नही, वहा कभी लक्ष्मी कैसे रह सकती हैं। सत्य से विमुख होने पर लक्ष्मी नही रह सकती जैसे प्रकाश की ओर पीठ कर लेने पर छाया सदा

आगे ही आगे भागती है, उसे पकड नही सकते लेकिन प्रकाश की ओर मुह फेर देने पर छाया पीछे पीछे चलती है यही बात लक्ष्मी की भी है अत मानव का प्रधान कर्त्तव्य यही है कि सत्य से विमुख न हो अन्यथा विजन श्री उसके पास नही रह सकेगी अत सदैव स्मरण रखिये कि —

जान जाये हाथ से, जाये न सत ।
है यही एक बात, हर मजहब का तत ॥

सत्य असत्य मे कितना अन्तर है वह एक लोक कहावत से सिद्ध होता है कि "आखो देखी परसराम कभी न झूठी होय" अर्थात् जो आखो से दिखाई दे वह सत्य और कानो से जो सुने वह असत्य होता है—क्योकि परात्पर ज्ञान परायो की बातो से ही आता है । जो सत्य नही होता । आत्मज्ञान जो स्वय मानव आखो से देखता हैं वही सत्य है । जब भौतिक जगत जो कि ऋणानुबन्ध है मे जीव यह विचार करता है कि मुझे यहा किसने लाकर डाला है । यह बार-बार जन्म लेना बार-बार मरना क्या है ? सत्य क्या है तो उसको उसकी अन्तरमा उत्तर देती है कि "ब्रह्म सत्य जगत्मिथ्या" है अर्थात ब्रह्म ही सत्य है और जगत असत्य है अत उस परम सत्य को दिव्य चक्षुओ से ही देखा जाना सम्भव है क्योकि सत्य ज्ञान अनन्त है, वह ब्रह्म है सत्य का आदि अत नही है । यह मान्यता केवल भारतीय दर्शन शास्त्रियो की ही नही अपितु पाश्चात्य विद्वानो की भी है । पाश्चात्य पडित कैम्पवैल के कथानुसार सृष्टि के आदि से ही सत्य चिर सुन्दर रहा है, आततायियो का वह शत्रु अवश्य है, किन्तु मानव का मित्र ही है अत अब प्रश्न यह है कि उस मानव के मित्र 'सत्य' को पहिचानने हेतु मानव का क्या कर्त्तव्य है , करे जिससे उसे सत्य के दर्शन हो । क्या सत्य की प्राप्ति हेतु कर्म करना छोड दें ? तो निश्चय ही उत्तर होगा कि ऐसा करना नितान्त मूर्खता है । सत्य तो कर्त्तव्य की आधार शिलापर आधारित है । ज्ञानवान स्थिति मे भी कर्म करना ही मानव का कर्त्तव्य है । विदेहात्मा जनक, रामकृष्ण, याज्ञवल्क्य आदि ने ससार मे रहकर कर्म ही किये है । धर्म-कर्मका कभी त्याग नही करते हुए कर्म से ही सत्य की प्राप्ति की है । सत्य की प्राप्ति हेतु विचार परिशीलन करना आवश्यक है । परिशीलन का अर्थ है—अविरल रूप से अभ्यास करना । विचार परिशीलन से ही मानव शीलवान, गुणवान, विचारवान, विद्वान, चरित्रवान एव सत्यवान बनता है क्योकि जब विचार जिज्ञासा के रूप मे परिवर्तित हो जाता है तो परिशीलन होता है । सत्य का दर्शन कर्म छोडकर भागने से नही होता ।

तर्क वितर्क-कुतर्क से भी सत्य का ज्ञान नही होता क्योकि —

फलसफी को बहस के अन्दर खुदा मिलता नही ।
डोर को सुलाझा रहा है पर सिरा मिलता नही ।।

अत सत्य ज्ञान की प्राप्ति तो सशय का नाश, वासना का त्याग, माया का त्याग एव यह नियम द्वारा ही सम्भव है । सत्यवान और सावित्री की कथा मे सत्य प्राप्ति का ही रहस्य है । सावित्री ने वासना का त्याग कर अपने पति सत्यवान को यमराज से छुडाया । सावित्री कहते है मनुष्य म निहित अग्नि शक्ति को जो मनुष्य के मूलाधार (मणिपूर) चक्र म निहित है । वह यदि भौतिक वासनाओ मे ही प्रयोग की जाती रहे तो मनुष्य मृत्यु की ओर जाता है और यदि वह यम नियम पूर्वक परिशीलन मे प्रयोग की जाती है तो मानव अमरता प्राप्त करता है । सत्यवान मृत्यु से बच जाता है असत्यवान मृत्यु को प्राप्त होता है क्योकि उस सहस्रो सूर्य सदृश सत्य ज्योति की एक किरण मात्र भी दृष्टि गोचर हो जाने पर मानव अमरता प्राप्त कर लेता है । क्योकि वह परम सत्य न तो मूर्ति पूजा मे मिलता है न वाह्य पूजा से । उसके दर्शन हेतु विचार परिशीलन अर्थात् मानसिक उपासना ही करनी पडती है क्योकि सत्य को न तो सूर्य प्रकाशित कर सकता है और न चन्द्रमा व तारे और न ही कोई अन्य शक्ति उस आख से देख सकती है न वाणी स उसका वर्णन होता है, अन्य इन्द्रियो से भी उसका ज्ञान नही हो सकता, तप और कर्म से भी उसे प्राप्त नही किया जा सकता । वह तो —

प्रणवो धनु शरो ह्यात्मा ब्रह्मतल्लक्ष्यमुच्यते ।
अप्रमत्तेन वेद्धव्य शरवत्तन्मयो भवेत ।।

अर्थात् श्रवण, मनन, निदिध्यासन से, धृति, क्षमा, दम अस्तेय, शौच, इन्द्रिय निग्रह कर कर्मजीत हो प्रणव (ॐ) ज्ञानरूपी महास्त्र धनुष को धारण कर विचार परिशीलन द्वारा अपने आत्मारूपी वाण को तेजकर तत्पश्चात उसका सधान करके समाहित चित्त से समता विचार युक्त प्रमाद रहित होकर अमृत तत्व परम सत्य लक्ष्य का भेदन करके —

विद्यते हृदय
क्षीयन्ते च

अर्थात् हृदय ग्रन्थि को भेदकर विवेक से अपने पापो की होली जलाकर हृदय मे सत्य स्वरूप के विचारो को चयन कर आत्मशक्ति को बढाकर सत्य का दर्शन किया जा सकता है और वही स्वात्मज्ञान है क्योकि आत्मा और ॐ के घर्षण से ही ज्ञानगित विद्युत किरण (इलेक्ट्रोन्स) की अनुभूति होती है। विचार परिशीलन का अर्थ है तन्मयता अत सत्य की अनुभूति हेतु एकान्त मे विचार लीन हो विचारो को उन्नत कर सत्य की प्राप्ति करना मानव का परम कर्तव्य है क्योकि अन्तकरण की उन्मुखता ही सत्य प्राप्ति का हेतु है। मन की निम्नावस्था ही असत्य की ओर अग्रसर करती है । इसका उदाहरण देखिये। उत्तान पाद राजा के दो रानिया थी । एक का नाम सुरुचि था दूसरी का नाम सुनीति सुनीति का पुत्र ध्रुव था। राजा सुनीति को प्यार नही करता था और न ही बालक ध्रुव को । उत्तान पाद का अर्थ है ऊँचे पाव अर्थात् मन-मन मे ऊँचे ही पाव होते हैं। मन सदा सुरुचि (वासनात्मक बुद्धि) को प्यार करता है। सुनीति (सुबुद्धि) उसे अच्छी नही लगती अत ध्रुव याने सत्य उससे दूर चला जाता है। ध्रुव दृढता युक्त विचार परिशीलन से ध्रुव सत्य को प्राप्त करता है। आज हमारी दशा राजा उत्तानपाद जैसी ही है हमारे व्यवहार मे वाणी मे, व्यापार मे, सेवा मे सत्यपालन नही रहा है क्योकि लोगो की यह धारणा बन गई है कि सत्य से पेट नही भरता। हम नित्य सत्य नारायण की कथा पढते हैं पर उसे समझते नही। सत्यनारायण की कथा मे असत्य बोलने के कारण ही साधुवैश्य की नाव दडी स्वामी ने शाप देकर लतापत्र बनादी थी। सत्यनारायण की कथा मे यह रहस्य है कि जीवन मे तीन विपरीतताए मानव मे आती है । पहली बुद्धि विपरीतता, दूसरी काल विपरीता, तीसरी देव विपरीतता अत जो नारायण सत्य स्वरूप है उसका ध्यान करने पर मानव सदैव सकट से बचता है और मन वाछित फल पाता है। सचमुच मे जीवन मे सुख हेतु कल्याण हेतु विचार पूर्वक देखा जाय तो सत्याचरण की ही नितान्त आवश्यकता है। सत्य की उपासना, सत्य की खोज सत्या-सत्य का ज्ञान, सत्य का दर्शन करना हो जीवन मे मानव का परम-कर्तव्य है। यथा सत्य पालन प्रालन प्रारम्भ मे कुछ कष्ट साध्य होता है और प्रकृति सत्य को कर्तव्य पथ से डिगाने हेतु कठिनाइया भी देती है पर अत मे सत्य की ही विजय होती है और इसीलिए "सत्यमेवजयते" का पाठ हमारे ऋषियो ने हमे पढाया है। सत्य पर चलना तलवारो की तीखी नोक पर चलने सदृश है परन्तु सत्य की साधना से जब मानव सदचित आनन्द स्वरूप स्वय बन जाता है तो फिर आनन्द ही नही जीवन मे परमानन्द आ जाता है

अत आओ हम सब सत्य की प्रतिज्ञा एव प्रार्थना करें कि —

सत्यव्रत सत्यपरं त्रिसत्य सत्यस्य योनि निहित च सत्ये ।
सत्यस्य सत्य ऋतसत्यनेत्र सत्यात्मक त्वा शरण प्रपन्ना ।।

अर्थात् हमारा व्रत सत्य हो, हम सत्य से कर्म करने वाले बनें, तीनो कालो मे हमारा व्रत सत्यवा हो सत्य के अन्दर ही सत्य निहित हो, सत्य, सत्य ही रहे, हमारा सत्य पूर्णत सत्य ही हो, सत्य से परिपूर्ण हमारी आत्मा सत्यदेव आपकी शरण मे आई है। हम सब सभी ऊपर उठें सर्व सम्मत महान सत्य का पालन करे। अत अपने जीवन को सत्य का अन्वेषण बनने दो। यही एक महान जीवन होगा क्योकि सत्य को जब हम पा जाते है तब सम्पूर्ण अभावो और पूर्णताओ के रहते हुए भी वह हमारी आत्मा को तृप्ति देता है, तब उसे मिथ्या द्वारा सजाने की हमारी इच्छा ही नही होती।

स्मरण शक्ति

प्राय विद्यार्थीगण यह कहते पाये जाते है कि हमारी स्मरण शक्ति बहुत कमजोर है। हमे सबक याद नही होता। इसका कारण यह बताया जाता है कि उन्हे अच्छी खुराक नही मिलती। परन्तु यह उनका केवल भ्रम है क्योकि अधिक खाने से विद्या नही आती विद्यार्थी के लक्षणो पर विचार करें तो विदित होगा कि विद्यार्थी मे पाच लक्षणो का होना चाहिए वो है —

काक चेष्टा वक ध्यान श्वान निद्रा तथैवच ।
अल्पाहारी गृह त्यागी विद्यार्थी पच लक्षणम ।।

अर्थात् विद्यार्थी को कौवे कीभाति चेष्टावाला, बगले की भाति एकाग्रचित वाला, कम भोजन करने वाला, गृह त्यागी अर्थात् एकान्त मे अध्ययन करने वाला, कुत्ते की सी निद्रावाला याने कम सोने वाला होना चाहिए। यहा अन्नाहार पर थोडा विचार करना जरूरी हैं क्योकि विद्यार्थी ब्रह्मचारी होता है भोजन के विषय मे शास्त्रो का एक और

भी मत हैं कि —

अष्ट ग्रासन्तु सन्यासो षडस्तु वानप्रस्थिनाम् ।
द्वात्रिंशस्तु गृहस्थीणाम् यथेष्ठम ब्रह्मचारीणाम ।।

अर्थात् आठ ग्रास भोजन सन्यासी को, सोलहग्रास भोजन वानप्रस्थी को बत्तीस ग्रास गृहस्थी को खाना चाहिए परन्तु ब्रह्मचारी जितनी इच्छा हो उतना खाये अत विद्यार्थी को अल्पाहारी होने का तात्पर्य यह है कि वह सन्ध्या को भोजन कम करें जिससे उसे निद्रा कम आयेगी और साथ ही हल्का भोजन हो जो सरलता से पच सके और पेट के विकार पैदा न हो । विद्यार्थी को सात्विक भोजन करना चाहिए क्योकि सात्विक भोजन से ही सात्विक बुद्धि रहती है अन्यथा जैसा अन्न वैसा मन और फिर वैसी ही बुद्धि होती है ।

कुछ विद्यार्थी यह भी कहते है कि हम याद तो बहुत करते हैं परन्तु फिर भी पाठ याद नही होता । यह भी बात गलत है क्योंकि यदि हमे कोई गाली देता है तो वह हमे कैसे याद हो जाती है ? इसीलिए कि हम उसे याद रखते हैं, गाली देने वाले से बदला भी लेना चाहते हैं । जब गाली याद रह सकती है किसी की दी हुई, तो गुरूजी का पढाया हुआ पाठ कैसे याद नही रह सकता है ? जबकि करत-करत अभ्यास के जडमति होत सुजान ।

हमारी भारतीय सस्कृति मे पाच तरह के यज्ञ होते है (1) ज्ञान यज्ञ, (2) तपोयज्ञ (3) द्रव्ययज्ञ (4) स्वाध्याय यज्ञ (5) अतिथि यज्ञ अर्थात् अतिथि सेवा विद्यार्थियो का सबध मुख्यत ज्ञानयज्ञ व स्वाध्याय यज्ञ से विशेषरूप से हैं । ज्ञानयज्ञ से तात्पर्य यह है कि अपने अध्यापको मे पूर्णत श्रद्धा होनी चाहिए क्योकि 'श्रद्धावाल्लभते' ज्ञान, जिन विद्यार्थियो के हृदय मे अपने गुरु के प्रति श्रद्धा नही होती आदर व सेवा की भावना नही होती वह ज्ञानवान नही बन सकता श्रद्धावान ही ज्ञानवान बनने का अधिकारी होता है । दूसरा ज्ञान यज्ञ का अर्थ है कि अविरल रूप से अध्ययन मे रत रहना चाहिए क्योकि अविरल रूप से चलने वाले कार्य को यज्ञ कहते हैं 'पठता नास्ति मूर्खत्व" अर्थात् अविरल रूप से अध्ययन शील विद्यार्थी ही मूर्खता पर विजय प्राप्त करता हैं ।

अब स्वाध्याय यज्ञ लीजिये । प्राय लोग स्वाध्याय का अर्थ अच्छे-अच्छे ग्रथ पढना लगाते है सो वो तो ठीक ही है परन्तु स्वाध्याय का अर्थ है स्वय का

अध्ययन करना स्वय का आत्म निरीक्षण करना कि मे कैसा हू मुभ मे राग-द्वेष, क्रोध, भय प्रतिशोध आदि तो नही हैं क्योकि जब तक ये वस्तुए हमारे भीतर घर किये रहेगी तब तक हमारी स्मरण शक्ति नही बढ सकती क्योकि ये हमारी मनोवृति को अशान्त करती हैं । अशान्त मन मे माता सरस्वती नही आती । जैसे हमारे घर कोई महमान आने वाला है तो उसके लिए हम घर को साफ करते है सुन्दर ढग से सजाते है, उसी प्रकार विद्यामाता जो हमारे जीवन, समाज एव राष्ट्र का निर्माण करती है को हमारे मन मन्दिर मे हम बुलाना चाहते है तो हमे मन शुद्ध रखना ही होगा । हमे एक कागज पर यदि सरस्वती का चित्र उतारना है तो पूर्व हम उस कागज को रबड से साफ करते है फिर उस पर रेखाए खीचते है फिर रेखा चित्र बनाते है फिर रेखाए खीचते है फिर रेखा चित्र बनाते है फिर उसमे रग भरते है तब चित्र तैयार होकर दूसरे का आकर्षण करता है ठीक उसी प्रकार विद्यारूपी चित्र हमारे अन्तर मे उतारने के लिए हमे सर्व प्रथम अपने मन को साफ करना होगा फिर समस्त गुणो को धारण करते हुए अध्ययन के नियमो का पालन करते हुए हम अपने आप को मेधावी बना सकते है क्योकि इस भौतिक जगत मे जीने के लिए बौद्धिक स्तर (इन्टेलेक्चूअल हाईट) एव चारित्रिक स्तर (मोरल हाईट) दोनो की ही परमावश्यकता है यदि इन दोनो मे से एक की भी कभी हमारे मे रही तो हमारा जीवन पूर्णत विकसित नही हो पायेगा ।

तीसरा अर्थ स्वाध्याय का है कि विद्यार्थी स्वय पढना सीखे । इसे अग्रजी मे सेल्फकल्चर कहते है जिसका अर्थ है विद्या जो हम स्वय के प्रयत्नो से सीखते है तथा दूसरो पर निर्भर नही रहते क्योकि स्कूल, कालेज, अध्यापक, आदि केवल हमारे दिमाग को अध्ययन मे नियमित बनाते है तथा हम जहा रूक जाते है वहा हमारा मार्ग प्रदर्शन करते है । हमारे यहा तीन प्रकार का ज्ञान हैं । पहिला सायतज्ञान जो अध्यापक गण पढाते है दूसरा सचिवायत ज्ञान जो हम स्वय प्राप्त करते है तथा जो हमारी स्थाई खजाना है । इसे ही स्वाध्याय याने सेल्फकलचर कहते है । तीसरा स्वात्मज्ञान है जो हमारे अन्तर से स्वत निकलता हैं । समस्त ज्ञान हमारे भीतर ही है पर हम भूल गये है ज्ञान आदि से अब तक वैसा ही है । जैसे गायो की नस्ले बदल गई है पर दूध वैसा ही है जैसा आदि मे था । यह स्वात्मज्ञान योगाभ्यास से अर्थात् कन्सन्ट्रेशन से मिलता है । योग सस्कृत के युज्ज धातु से बना है जिसका अर्थ काम मे लग जाना है अग्रजी मे एक शब्द योक (yoke) मिलता है जिसका अर्थ भी कठिन कार्य मे लगना है । विद्यार्थी को स्मरण शक्ति बढाने के लिए

ध्यान (कन्सन्ट्रेशन) करना परमावश्यक है । ध्यान का अर्थ है धी याने बुद्धि और यान का अर्थ है नियंत्रण अर्थात् बुद्धि के नियंत्रण को ध्यान कहते है अतः प्रातः काल और सन्ध्या काल मे एकान्त स्थान मे एक निश्चित स्थान से निश्चित समय मे कम से कम आधा घंटा ध्यान करने से स्मरण शक्ति तीव्र होती है।

जो पाठ स्कूल मे पढाया जाने वाला हो उसे पूर्व घर में पढ कर जाना चाहिए जो समझ मे न आया हो वहां निशान लगा लेना चाहिए । जब अध्यापक जी वह पाठ बढायेगे तो वह मुश्किल स्वतः हल हो जायेगी तथा जो बात समझ मे न आई हो उसे नि.संकोच अपने अध्यापक से पूछना चाहिए । फिर उस पढे हुए पाठ को घर पर आकर पुनः पढना चाहिए और पढते समय खास-खास बातो को नोट रखने के लिए अपने पास नोट बुक रखना चाहिए । इस प्रकार पढने से पाठ जल्दी याद हो जायगा और कभी भी स्मृति पटल से नही जायगा । इसी प्रकार सोने से पूर्व विद्यार्थी को कम से कम तीन घंटे पढना चाहिए । सोते समय हाथ मुंह व पैर धोकर सोना चाहिए जिससे अनावश्यक स्वप्न नही होते । फिर विस्तर मे लेटे-लेटे विद्यार्थी को सुबह से लेकर सोने तक जो भी कार्य किये है उनकी स्मृति पटल पर लाना चाहिए । फिर जो सोने के पूर्व पढा है उसका स्मृति पटल पर लाना चाहिए कि मैंने क्या-क्या पढा । फिर प्रार्थना करनी चाहिए कि भगवान मुझे सद्‌बुद्धि दो और मुझ से वे वस्तुएं दूर कर दो जो मेरे लिए हानिकारक हैं । हे प्रभो आनन्द दाता ज्ञान हमको दीजिए । वाली प्रार्थना बहुत ही अच्छी है । फिर रात को पढे हुए पाठ को ब्रह्म मुहूर्त मे दोहराना चाहिए । इस प्रकार करने से स्मरण शक्ति अवश्य बढेगी और विद्यार्थी गण अनुत्तीर्ण नही रहेगे । यहा स्मरण रखना आवश्यक है कि रात्रि को देर तक चार घंटे पढना बराबर है प्रात.काल एक घंटे पढने के इसलिए विद्यार्थी को जल्दी सोना और जल्दी उठना आवश्यक है । इसका वैज्ञानिक कारण भी हैं । प्रात.काल वायुमंडल मे सात्विक परमाणु व्याप्त रहते है जो स्मरण शक्ति को बढ़ाते है अत. सूर्योदय पूर्व पढना स्मरण शक्ति के लिए परमोपयोगी है । सूर्य निकलने के पूर्व आकाश मे अरुणाभा रहती है । उसको कुछ काल एक टक देखने से भी स्मरण शक्ति बढ़ती है और नेत्र ज्योति भी बढती है ।

ग्रीष्म ऋतु मे सूर्योदय काल मे दोब (दूर्वा) पर नंगे पाव घूमने से भी स्मरण शक्ति बढ़ती है तथा पेट के अनेक रोग भी नष्ट होते है । प्रात.काल घी

और काली मिर्च पीने से भी स्मरण शक्ति बढती है। तथा दो बादाम रात को भिगो कर सुबह घिस कर चाटने से भी स्मरण शक्ति बढती हैं। आधा तोला ब्रह्मरसायन पाव भर दूध से सुबह लेने से भी स्मरण शक्ति बढती हैं। ग्रीष्म ऋति मे शुद्ध ब्रह्मी बू टी की ठडाई पीने से भी स्मरण शक्ति बढती है। अनेक विधार्थी स्मरण शक्ति बढाने के लिए शीर्षासन भी करते हैं परन्तु इससे लिए प्रत्येक विधार्थी को परामर्श देना मैं उपयुक्त नही समझता क्योंकि यदि किसी के लिए शीर्षासिन उपयोगी न पडे तो शरीर मे उष्णता भी बढती है तथा नेत्र ज्योति भी कमजोर हो जाती हैं। इससे तो उत्तम है शरीर पर सरसो के तेल की मालिश करके घूमा जाय या व्यायाम किया जाय। मौन रखने वाले को मुनि कहा जाता है अत मौन रखने से कम बोलने से हमारी शक्ति का ह्रास कम होता है तथा स्मरण शक्ति बढती है क्योंकि इससे दिमाग को शाति रहती है जो स्मरण शक्ति के लिए आवश्यक है।

प्राय विधार्थी उद्देश्य रहित पढते है और अनेक बार तो ऐसा होता है कि उनकी अभिरुचि विज्ञान पढने की होती है परन्तु माता पिता उन्हे कला के विषयो की कक्षा मे भर्ती करा देते है इससे भी स्मरण शक्ति पर आघात पहुचता है अत विधार्थी को चाहिए कि जिस ध्येय तक उसे पहुचना हो उसे निश्चित करके फिर विधाध्ययन करें। बाल्यावस्था मे बालक को चमकाने और मारने पीटने से भी बालक की स्मरण शक्ति समाप्त हो जाती है।

अत मे हमारे विचार सुन्दर होने चाहिए क्योंकि विचारो की शक्ति बडी चमत्कारी होती है। विचारो के एकीकरण मे ही शक्ति होती है अतः जब महान विचार कार्यरूप मे मे परिणत हो जाता है तो हम महान बन जाते हे। मानसिक पापक्ष दृष्टि दोष भी हमारी स्मरण शक्ति का नाश करती है इसीलिए हमारे पूवज सादा जीवन और उच्च विचार का पाठ हमे सदा से पढाते आये हैं। अधिक मित्रता भी हानि कारक होती है जो समय नष्ट करती है। अधिक फैशन भी विधार्थी हेतु उपयोगी नही होती। अच्छा योग्य विवेक शील विद्वान मित्र अपने गुरु के अलावा अन्य कोई नही हो सकता जो सर्वदा विधार्थी के विकास की कल्पना करता हैं और उसी की ही सगति हमारे जीवन का निर्माण करती है। समय का सदुपयोग करने के लिए समय सारिणी (टाइम टेबिल) बनाकर दिनचर्याविताना उपयुक्त रहता है। ज्ञान प्राप्ति के लिए लगन (जिज्ञासा) बोध, आचरण और प्रचरण (पालन करना) परमा-वश्यक, है। यदि एक विधार्थी भी सुधर जायगा तो उसे देखकर अन्य विधार्थी

भी सुधरेंगे। इसमे किन्चित भी सशय नही। ज्ञान की पियासा वाले को ज्ञान अवश्य मिलता है। राजस्थानी मे विधार्थियो के लिए एक दाहा मिलता है :—

खागे खाटो चरपरो सुपारी अर पान।
जो थू विधा पढणी चावे या सू दुश्मणो ठाण ॥

यदि विधार्थीगण स्वय के भाग्य निर्माण स्वय ही है यह समझ कर इन बातो का पालन करेंगे तो इनसे उनका तो कल्याण अवश्यमेव होगा ही साथ ही समाज एव राष्ट्र कल्याण भी सुनिश्चित रुप से होगा। जिस कर्म से हम विकासोन्मुख होते हैं उसे व्यायाम कहते है। शरीर के व्यायाम से शारीरिक शक्ति का विकास होता है सभी जानते हैं कि स्वस्थ्य शरीर मे स्वस्थ्य मस्तिष्क रहता है मन के व्यायाम (उपासना) से आत्मिक बल एव इच्छा शक्ति बढती है तथा मस्तिष्क के व्यायाम अर्थात ध्यान (कन्सन्ट्रेशन) से स्मरण शक्ति बढती है। विधार्थियो का धर्म शारीरिक, मानसिक एव आत्मिक विकाश की ओर अग्रसर होना है तभी ज्ञानोदय सम्भव है।

आज का दिन छोटा सा जीवन है

जीवन मे सर्वांगीण सफलता प्राप्त करने के लिए आने वाले कल की चिन्ता त्याग कर आज के दिन को सफल बनाना मानव का परम कर्त्तव्य है क्योकि मानव मे सुषुप्ति अवस्था का दूसरा नाम ही आलस्य है जो मानव का महान शत्रु है तथा मानव को आज का काम कल पर टालने की प्रेरणा देता रहता है, जिससे मानव के पथ पर अग्रसर नही हो पाता तथा वह जीवन मे पिछड जाता है परन्तु यदि मानव चेतना युक्त (आत्म सात्) होकर आज के दिन को सफल बनाने हेतु दृढ सकल्प हो जाता है तो प्रगति स्वय उसके चरण चूमने को तत्पर रहती है और इसलिए कवी रवीन्द्र ने कहा है कि जो व्यक्ति सत्य के साथ कर्मव्य परायणता मे लीन रह कर आज के दिन को सफल बनाता है उसके मार्ग मे बाधक होना कोई सरल काम नही है। अग्रेंजी मे एक कहावत है 'टूमारो नेवर कम्स "अर्थात् कल कभी नही आता तो राजस्थानी मे भी एक लोक कहावत है "काल रे नांव रो वाला मूर्डो" अर्थात् जो कुछ करना है आज ही करलो अत जीवन के की, [illegible] आपको [illegible] करना

है उसे यदि आप आज ही कर सकते है तो उसे कल पर न टाल कर आज अवश्य कर ही लीजिए क्योंकि सत कबीर दासजी ने भी अपने एक भजन मे उपदेश दिया है कि "या जग मे खबर नही पल की" इस पक्ति मे मानव जाति के कल्याण का सदेश है कि अपना भला बुरा सोच कर जो मनुष्य यथा समय काय का आज को सफल बनाता है वही दुनिया मे महान काय कर सकता है और इसलिए भक्त कबीर दासजी ने मानव जाति को सवदा जाग्रतिजागृतावस्था मे रहने हेतु एक दोहा भी कहा है कि —

काल करे सो आज कर, आज करे सो अब्ब ।
पल मे परले होयगी, बहुरि करेगो कब्ब ।।

ईसाइयो के धर्म ग्रन्थ बाईबिल मे भी प्रभु ईसामसीह ने कहा है कि स्वय को कल पर आश्वस्त मत कर क्योकि मुझे नही मालूम कि कल का दिवस तेरे लिए क्या लायेगा । विदेशी विद्वान फ्रेंकलिन का भी कथन है कि जो तुम आज कर सकते हो उसे कल पर मत छोडो । वस्तुत यदि गभीरता पूर्वक विचार किया जाय तो हमे हमारा अत करण (आत्मा) स्पष्ट कहेगा कि कल उठने की आज्ञा मे सोया हुआ कोई भी आज तक नही जाग सका क्योकि जेरिमी टेलर के मतानुसार आलस्य जीवित व्यक्ति की मृत्यु है । हमारे भारत के प्राचीन कथाग्रथ हितोपदेश मे भी हमारे हित के लिए यह उपदेश दिया गया है कि हमे आलस्य का त्याग कर छोटे मोटे सभी काम आज के आज करने चाहिए,क्योकि छोटी-छोटी वस्तुओ के सगठन से ही कार्य सिद्धि होती है । महा मानव सुकुरात का कथन भी यही है कि जो कुछ भी नही करता है केवल वही आलसी नही है, आलसी वह भी है जो अपने से अच्छा काम पा सकता था आज के दिन का सदुपयोग करके सचमुच मे आलस्य ही दरिद्रता का मूल है । आलस्य एव प्रमाद मे पडे रहकर जो समय जो कि अमूल्य वस्तु है तथा खोया समय वापिस लाख रुपैया देने पर भी नही आता को जो नष्ट करता है तो समय उस व्यक्ति को ही नष्ट कर देता है । ज्योतिषशास्त्र मे भगवान को काल नाम का पर्यायवाची शब्द दिया है अत जो आज के काम को कल पर टालता है वह स्वय के पावो पर ही कुल्हाडी मारता है क्योकि थियोडोर पाकर के मतानुसार जो अपना कतव्य आज के दिन करने मे चूकता है वह स्वय को महान लाभ से वचित रखता है । हमारा जीवन अनेक आज के दिनो का समूह होता है अत आज के दिन को कदापि तुच्छ दृष्टि से न देखना चाहिए परन्तु वह अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि आज का दिन यदि हमने व्यर्थ मे खो दिया तो कल बडी

खरावी होगी। जैसे कल का बीता हुआ दिन हमारे लिए वापिस आज नही आ सकता वैसे ही आज का दिन यदि बीत गया तो वह फिर कल कभी नही आयगा अत: आने वाली कल और जाने वाली कल की चिन्ता छोड कर यदि हमने आज के दिन को सुन्दरतायुक्त सावधानी से व्यतीत कर दिया तो आने वाला कल जो आज में कुछ घटों बाद परिवर्तित हो जायगा, सुन्दर एव प्रसन्नतायुक्त बन जायगा। यदि हमने आज के दिन को सफल बनाने की कला सीख ली तो प्रत्येक आने वाला दिन निश्चित रूपेण नित नूतन उल्हास लिए हमारे जीवन मे आयगा और हमारा भाग्य सितारा अवश्य पूर्ण इन्दु सम मुस्कायेगा क्योंकि आज का दिन गुजरे हुए कल पर आधारित होता है तथा आने वाला कल आज पर गर्भावित होता है अत. स्वय सिद्ध है कि जो आज के दिन को सफल बनाते है उनका ही जीवन भली भांति व्यतीत होता है। एक विद्वान का कथन है कि मनुष्य का आज का दिन उसका छोटा सा जीवन है। जाग कर मनुष्य जन्म लेता है वह प्रातः काल, मध्यान्ह और सायकाल को अपना वचपन अपनी जवानी व बुढापे के समान विताता है। रात मे गहरी नीद मे सो जाता है यही आज के छोटे से जीवन का अत है। ऐसे ही नित्य होती है सुबह और शाम चली जाती है। यू आते जाते बुझती जीवन बाती है अत: आज का दिन वृथा खोना पाप है। भगवान कृष्ण ने भी गीता मे आज को पूर्णत. सफल बनाने के लिए कहा है कि बुद्धिमान पुरुष गुजरी हुई बात पर विचार नही करते तथा भविष्य की भी व्यर्थ चिन्ता नही करते लेकिन वर्तमान मे ही वे सम्भल कर चलते है। भगवान कृष्ण के इस उपदेश मे भी हमे आज का काम आज ही करने की शिक्षा मिलती है। उर्दू शायरी मे भी एक शायर ने कहा है कि

फिक्र यातिन मे तेरे ये गुल्फगु जेबा नही।
आरिफो को जिन्दगी और मौत की परवाह नही।

अर्थात हमें अपने जीवन को सफल बनाने के लिए आज के दिन की योजना गत रात्रि मे सोते समय ही बना लेनी चाहिए तथा दूसरे दिन उसे क्रियान्वित करनी चाहिए। योजनाबद्ध सुव्यवस्थित ढंग से आज का काम आज ही निपटाने से मनुष्य को अपार शान्ति एवं सन्तोष की अनुभूति होती हैं।

वस्तुत. आज का काम आज और अच्छे से अच्छा करना यह भी एक बड़ी देश सेवा है क्योकि विद्वान वेट्रूज के मतानुसार आज नही कल, कल यही आलसी व्यक्तियों का गान है और पूज्य वापू ने इसीलिए कहा है कि जो अपना काम आज किये बिना जो भोजन करता है वह घोर पापी है। अत:

भारत के सुप्रसिद्ध विद्वान श्री जैनेन्द्र कुमार का यह वाक्य "आज का काम आज और अभी नही हो सकता तो फिर कभी नही हो सकता" सर्वदा याद रखना चाहिए तथा यह सर्वदा ख्याल रखना चाहिए कि हमे आज के दिन कोई न कोई ऐसा काय जरूर करना चाहिए कि जिससे हमारा और हमारे देश का कल्याण हो। अन्यथा स्वामी विवेकानन्द की आत्मा स्वर्ग से भी हमे धिक्कारेगी कि तुम्हे एक कर्महीन जीवन व्यतीत करते देख मुझे अपार दुःख की अनुभूति होती है।

अत हमारा कर्तव्य यह नही है कि हम बाते बनावें गप्पे लगावे और वक्त गवाव क्योकि बात बनाना गप्पे लडाना वक्त गवाना बहुत बुरा है अपितु हमारा परम कर्तव्य यह है कि हम आज का काम आज और अच्छे से अच्छा करें।

नारियों के कर्त्तव्य

नारी को वेदो मे शक्ति कहा है। शास्त्रो का मत है कि पुरुष मे शक्ति ही नारी की हानी है इसलिए व्याकरणाचार्यो ने नारी की परिभाषा इस प्रकार की है न+अरि अर्थात जो हमारा शत्रु नही अपितु परम मित्र है वह है नारी। वस्तुत नारी शक्ति का साक्षात रूप है त्याग की प्रतिमा, क्षमा की मूर्ति और धैर्य तथा साहस का सागर होती है। पुरुष को सकटकाल मे सुपुप्तावस्था से जाग्रति जागृतावस्था मे लाने वाली सकट से बचाने वाली और सकट मे धैर्य और साहस प्रदान कराने वाली प्रकृति अर्थात नारी ही है इसीलिए विदेशी विद्वान बोवी का कथन है कि ईश्वर के पश्चात हम सर्वाधिक ऋणि नारी के हैं प्रथम तो जीवन के लिए पुनश्च इसको जीने योग्य बनाने के लिए। हमारे भारत के महान तपस्वी महर्षि रमण का कथन है कि पति के लिए चरित्र, सतान के लिए ममता, समाज के लिए शील, विश्व के लिए दया तथा जीव मात्र के लिए करुणा सजोने वाली महाप्रकृति का नाम नारी है। कुछ लोगो ने नारी की परिभाषा न्यारी अर्थात अलग रखने योग्य की है। इस परिभाषा के जन्मदाता आदि गुरू शकराचार्य जो परन्तु उनका मानमर्दन मडन मिश्र की धर्मपत्नी उभय भारती ने शास्त्रार्थ मे किया और उसको बताया कि नारी सृष्टि की परम सौंदर्यमयी सर्व श्रेष्ठ कृति है सृजन के आदि से विश्व उसकी गोद मे क्रीडा करता आया है उसकी मधुमति मुस्कान मे महानिर्माण के स्वप्न हैं और भ्रूभग मे विनाश और प्रलयकारी घटाए।

सचमुच मे घर की उचित व्यवस्था करके पति, परिवार, पडोसी और समाज के मन मे प्रेम उत्साह, उमग भर कर मानवजाति को प्रगतिपथ पर अग्रसर करने मे तथा देश एव समाज को सकटकालीन परिस्थिति से बचाने में यदि योगदान किसी का है तो वह नारी का ही है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि सकटकाल में समाज व राष्ट्र को सर्वदा नारिया ने ही बचाया है महिषपुर जिसे आजकल हम मैसूर कहते हैं वहा के क्रूर शासक महिषासुर का बध नारीशक्ति अर्थात चडी ने ही किया। पद्मनी की कुर्बानिया अलाउद्दीन ने देखी हैं। रानी दुर्गावती, कर्णावती आदि की कहानिया आज किससे छिपी है? पन्ना दाई का त्याग आज कौन नही जानता? इस विलक्षण भूमि में भारत मे अनेक विलक्षण नारियां, महान सतिया विदूषिया हुई हैं। मत्रेयी, गार्गी आदि ब्रह्मलीन प्रात स्मरणीय नारियो से लेकर स्वतन्त्रता सग्राम की बिगुल बजाने वाली महारानी झासी लक्ष्मी बाई तक अनेक पूजनीय नारियों के नाम इतिहास में स्वर्णाक्षरा मे लिखे हुए है। जिन्होने मातृभूमि की बलि-वेदी पर अपनी आहुति देकर हमे स्वतन्तता प्राप्त कराई। हमे स्वतन्त्रता मिली और आज हमारी स्वतन्त्रता को छीनने हमारी सीमा पर चील (चीन) और गिद्ध (पाक) मडरा रहे हैं। इस स्वतनता की रक्षा के लिए आज देश को पुनः नारिया सहयोग की परमावश्यकता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि किस प्रकार नारिया सकटकाल मे अपना सहयोग दे सकती है? तो इसके उत्तर मे कहना होगा कि प्रथम तो भारत की प्रत्येक नारी को कुछ न कुछ धन पैदा करने योग्य बनाना चाहिए क्योकि गृहस्थरूपी गाडी के दो पहिये पति और पत्नी जब तक समान नही चलते जीवन विकास-शील नही होता है और इसलिए गोल्डस्मिथ ने कहा है "गरीब से गरीब घर को गुणवान नारी घर की आय मे से बचत करके स्वर्ग बना देती है।" दूसरी बात यह है कि एक पुरुष मे बत्तीस गुण होते हैं जिसमे से अट्ठाइस गुण माता के तथा चार गुण पिता के होते हैं इसी कारण वेदो मे सर्व प्रथम मातृ देवो-भव फिर पितृ देवा भवः फिर आचार्य देवोभव आता है अतः माता सबसे बडी होती है। बालक मे माता जो बचपन मे सस्कार डाल देती है उन्ही के आधार पर बालक का निर्माण होता है अत. माताओ को चाहिए कि वे बालक बालिकाओ मे सुसस्कार डाले। उन्हे सुन्दर बोलने वाला सुन्दर सुनने वाला बनावें तथा उनमे देश प्रेम, एकता, सगठन एव सहयोग की भावनाए भरें। जीजाबाई ने शिवाजी मे, मातास्वरूप रानी ने नेहरू जी मे, ही महानता के, वीरता के बीज बोये कि वे लोग आज अजर अमर हैं

भारत के सुप्रसिद्ध विद्वान श्री जैनेन्द्र कुमार का यह वाक्य "आज का काम आज और अभी नही हो सकता तो फिर कभी नही हो सकता" सर्वदा याद रखना चाहिए तथा यह सर्वदा ख्याल रखना चाहिए कि हमे आज के दिन कोई न कोई ऐसा काय जरूर करना चाहिए कि जिससे हमारा और हमारे देश का कल्याण हो। अन्यथा स्वामी विवेकानन्द की आत्मा स्वर्ग से भी हमे धिक्कारेगी कि तुम्हे एक कर्महीन जीवन व्यतीत करते देख मुझे अपार दुख की अनुभूति होती है।

अत हमारा कर्तव्य यह नही है कि हम बाते बनावें गप्पे लगावे और वक्त गवावें क्योकि बात बनाना गप्पे लडाना वक्त गवाना बहुत बुरा है अपितु हमारा परम कर्तव्य यह है कि हम आज का काम आज और अच्छे से अच्छा करें।

नारियों के कर्त्तव्य

नारी को वेदो मे शक्ति कहा है। शास्त्रो का मत है कि पुरुष मे शक्ति ही नारी की होती है इसालिए व्याकरणाचार्यो ने नारी की परिभाषा इस प्रकार की है न+अरि अर्थात जो हमारा शत्रु नही अपितु परम मित्र है वह है नारी। वस्तुत नारी शक्ति का साक्षात रूप है त्याग की प्रतिमा क्षमा की मूर्ति और धैर्य तथा साहस का सागर होती है। पुरुष को सकटकाल मे सुषुप्तावस्था से जाग्रति जागृनावस्था मे लाने वाली सकट से बचाने वाली और सकट मे धैर्य और साहस प्रदान कराने वाली प्रकृति अर्थात नारी ही है इसीलिए विदेशी विद्वान बोबी का कथन है कि ईश्वर के पश्चात हम सर्वाधिक ऋणि नारी के है प्रथम तो जीवन के लिए पुनश्च इसको जीने योग्य बनाने के लिए। हमारे भारत के महान तपस्वी महर्षि रमण का कथन है कि पति के लिए चरित्र, सतान के लिए ममता, समाज के लिए शील, विश्व के लिए दया तथा जीव मात्र के लिए करुणा सजोने वाली महाप्रकृति का नाम नारी है। कुछ लोगो ने नारी की परिभाषा न्यारी अर्थात अलग रखने योग्य की है। इस परिभाषा के जन्मदाता आदि गुरू शकराचार्य जी परन्तु उनका मानमर्दन मडन मिश्र की धर्मपत्नी उभय भारती ने शास्त्रार्थ मे किया और उसको बताया कि नारी सृष्टि की परम सौंदर्यमयी सर्व श्रेष्ठ कृति है सृजन के आदि से विश्व उसकी गोद मे क्रीडा करता आया है उसकी मधुमति मुस्कान मे महानिर्माण के स्वप्न हैं और भ्रू भग मे विनाश और प्रलयकारी घटाए।

सचमुच मे घर की उचित व्यवस्था करके पति, परिवार, पडौसी और समाज के मन मे प्रेम उत्साह, उमग भर कर मानवजाति को प्रगतिपथ पर अग्रसर करने मे तथा देश एव समाज को सकटकालीन परिस्थिति से बचाने में यदि योगदान किसी का है तो वह नारी का ही है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि सकटकाल म समाज व राष्ट्र को सर्वदा नारियो ने ही बचाया है महिषपुर जिसे आजकल हम मैसूर कहते हैं वहा के क्रूर शासक महिषासुर का वध नारीशक्ति अर्थात चडी ने ही किया। पद्मनी की कुर्बानिया बलाउद्दीन न देखी हैं। रानी दुर्गावती, कर्णावती आदि की कहानिया आज किससे छिपी है? पन्ना दाई का त्याग आज कौन नही जानता? इस विलक्षण भूमि मे भारत मे अनेक विलक्षण नारिया, महान सतिया विदूषिया हुई हैं। मत्रेयी, गार्गी आदि कहालीन प्रात स्मरणीय नारियो से लेकर स्वतन्त्रता सग्राम की बिगुल बजाने वाली महारानी झासी लक्ष्मी बाई तक अनेक पूजनीय नारियो के नाम इतिहास मे स्वर्णाक्षरा मे लिखे हुए है। जिन्होंने मातृभूमि की बलि-वेदी पर अपनी आहुति देकर हमे स्वतत्रता प्राप्त कराई। हमे स्वतन्त्रता मिली और आज हमारी स्वतन्त्रता को छीनने हमारी सीमा पर चील (चीन) और गिद्ध (पाक) मडरा रहे हैं। इस स्वतत्रता की रक्षा के लिए आज देश को पुन नारिया सहयोग की परमावश्यकता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि किस प्रकार नारिया सकटकाल मे अपना सहयोग दे सकती है? तो इसके उत्तर म कहना होगा कि प्रथम तो भारत की प्रत्येक नारी को कुछ न कुछ धन पैदा करने योग्य बनाना चाहिए क्योंकि गृहस्थरूपी गाडी के दो पहिये पति और पत्नी जब तक समान नही चलते जीवन विकास शील नही होता है और इसलिए गोल्डस्मिथ ने कहा है "गरीब से गरीब घर को गुणवान नारी घर की आय मे से बचत करके स्वर्ग बना देती है।" दूसरी बात यह है कि एक पुरुष म बत्तीस गुण होते हैं जिसमे से अट्ठारह गुण माता के तथा चार गुण पिता के होते हैं इसी कारण वेदा मे सर्व प्रथम मातृ देवो भव फिर पितृ देवा भव. फिर आचार्य देवोभव आता है अत. माता सब बडी होती है। बालक मे माता जो बचपन मे सस्कार डाल देती है उन्ही आधार पर बालक का निर्माण होना है अत माताओ को चाहिए कि बालक बालिकाओ मे सुसस्कार डाले। उन्हे सुन्दर बोलने वाला सुन्दर मुख वाला बनावें तथा उनमें देश प्रेम, एकता, सगठन एव सहयोग की भावना भरें। जीजाबाई ने शिवाजी मे, मातास्वरूप रानी ने नेहरू जी मे, बचपन ही महानता के, वीरता के बीज बोये कि वे नाम आज अजर अमर हो गये

पूज्य बापू ने कहा है कि जीवन मे जो कुछ पवित्र और धार्मिक है नारियां उसकी विशेष सरक्षिकाए है अत आत्म नियत्रण सदृश श्रेष्ठ परिवा नियोजन कोई नही है। परम हंस स्वामी रामकृष्ण का भी यही कहना है कि जो नारी पुरुष के साथ रहते हुए सयम एव ब्रह्मचर्य युक्त रहती है वह साक्षात उमा होती है अत नारियो को स्वय सयम से रहना तथा पुरुषो को सयमयुक्त रखना श्रेयस्कर होगा। बढती हुई आबादी को रोकने मे परिवार नियोज का सहारा लेकर नारियां बढती हुई आबादी को रोकने में अपना पूर्ण सहयोग दे सकती है क्योकि अत्यधिक जनसख्या की वृद्धि होना भी देश के लिए का प्रकार का सकट प्रमाणित होता है। फैशन एव आरामदेय वस्तुओ के खरी मे कम खर्चा करके, अल्प बचत योजना मे नारियां ही सहयोग दे सकती है क्योकि नारियो मे बचत करने की जन्म जात शक्ति होती है। आभूषण दान देकर, स्वर्ण बाड खरीदकर नारियां देश को वर्तमान सकट से बचाने में अपना सहयोग दे सकती हैं। देश में आज खाद्य समस्या भी बडी विकट है अत. अनेक व्रतादि करके अन्न की बचत करना भी नारियो का परम कर्तव्य है। सुशिक्षित बहने नागरिक सुरक्षा का प्रशिक्षण प्राप्त करके तथा सेना मे नर्सों आदि का प्रशिक्षण लेकर देश की सेवा करने के लिए अपनी सेवाए समर्पित करके अपना सहयोग दे सकती है।

समाज के आचरण को बनाना, घर, का प्रबन्ध करना तथा कोमलता, प्रेम, सहनशीलता से जीवन की विषम और कठिन यात्रा को सरल और सुखद बनाना नारियो का ही कर्तव्य है और आज भारत मा मेरी समस्त माताओं बहिनों को इस आजादी की रक्षा के लिए आवाह्न कर रही है और कह रही है भारत की सन्नारियो जाग उठो और नया इतिहास बनादो, जिससे तुम्हारे भी गीत उसी प्रकार गाए जाय जिस प्रकार महारानी झासी के गीत बुन्देल खण्ड मे घर घर गाये जाते है - "खूब लडी मर्दानी ओ तो झासी वाली रानी थी।"